Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वरंग

अंतर्राष्ट्रीय विश्वरंग परिवार की त्रैमासिक पत्रिका

अंक 1 · जनवरी-मार्च 2021 / गाँधी स्मरण विशेषांक

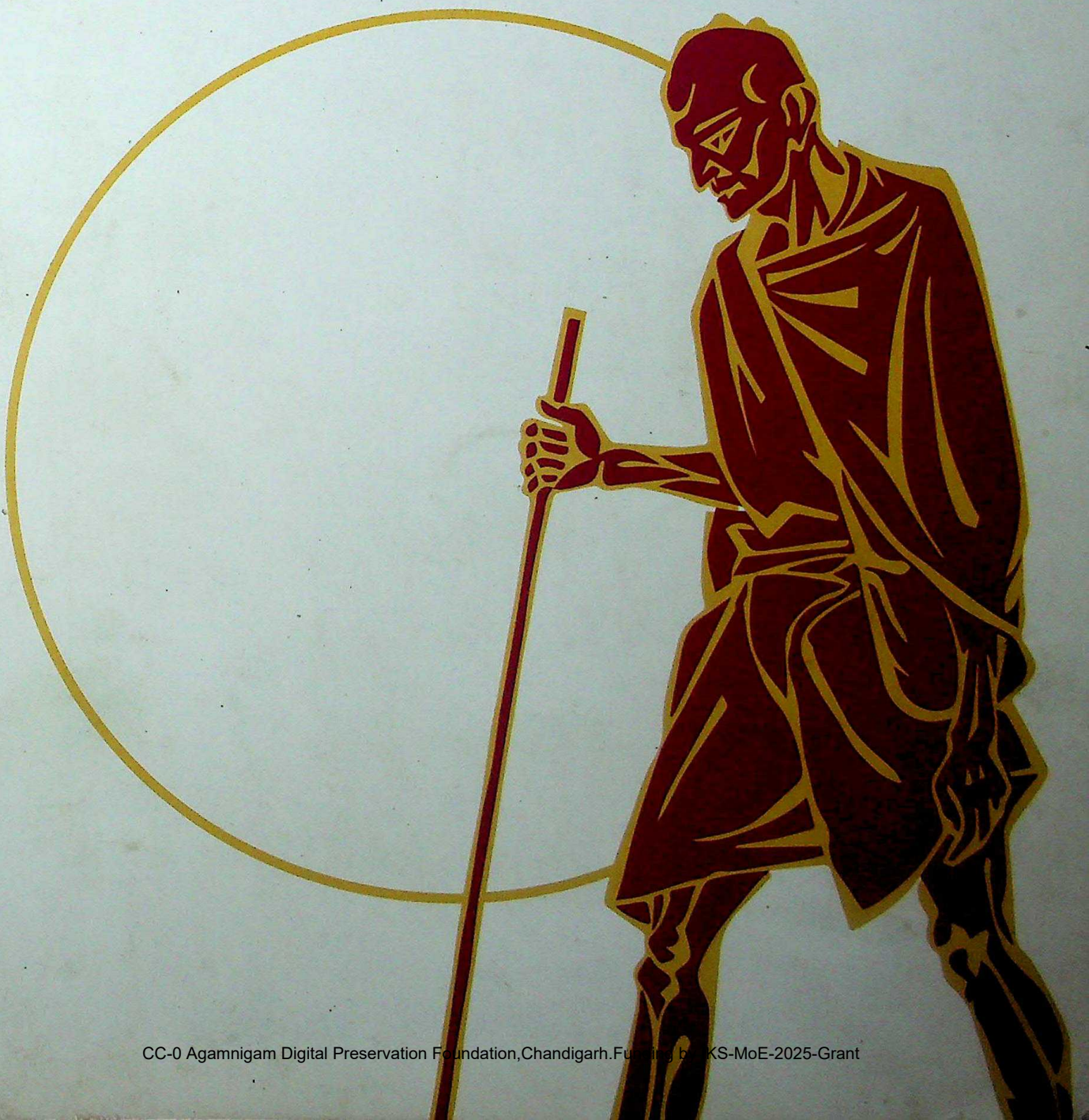

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by MoE-IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारत के पहले कौशल विश्वविद्यालय के रूप में उभरता 'रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय'

भारत के पहले नोबेल विजेता रबीन्द्रनाथ टैगोर के नाम पर स्थापित रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय (आरएनटीयू) आईसेक्ट ग्रुप ऑफ़ यूनिवर्सिटीज के तत्वावधान में संचालित एक प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थान है।

विश्वविद्यालय के मिशन और विजन पर प्रकाश डालते हुए, आरएनटीयू के चांसलर श्री संतोष कुमार चौबे कहते हैं, ''आरएनटीयू का उद्देश्य कौशल आधारित शिक्षा प्रदान करना है जिससे ऐसे पेशेवर युवाओं को तैयार किया जा सके जो इस प्रतिस्पर्धा की दुनिया में स्वयं के तरीके अपनाकर करियर का मार्ग प्रशस्त कर सकें। विवि द्वारा बड़ी संख्या में विभिन्न विषयों में स्पेशलाइजेशन कोर्स कराए जा रहे हैं, जिससे छात्र रुचि अनुसार विषयों का चयन कर सकें। विवि प्रयास करता है कि छात्रों को सही मार्गदर्शन मिले ताकि वे स्वयं को बेहतर बना सकें और एक लीडर के तौर पर उभर सकें।''

विश्वविद्यालय को बड़ी संख्या में राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाजा गया है जो इसकी शिक्षा की गुणवत्ता और सफलता को दर्शाते हैं। इनमें शिक्षा उत्कृष्टता पुरस्कार 2019, मप्र गौरव सम्मान 2019, एसोचैम इंडिया-एक्सीलेंस इन एजुकेशन अवॉर्ड 2018 इत्यादि प्रमुख हैं। आरएनटीयू लगातार दूसरे वर्ष एनआईआरएफ 2020 रैंकिंग में विश्वविद्यालय श्रेणी के रैंक बैंड 151-200 में भी शामिल रहा है।

आरएनटीयू की पहल पर विश्वरंग-टैगोर अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव का आयोजन भी किया गया जिसमें साहित्य, कला, शिक्षा, सिनेमा, संस्कृति, विज्ञान आदि से जुड़ी 30 देशों की 400 से अधिक हस्तियां शामिल हुईं। इसमें ज्ञानपीठ, पद्म एवं साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता, लेखक, कवि, रंगकर्मी आदि के साथ प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों के प्रोफेसर्स एवं छात्रों ने बड़ी संख्या में शिरकत की।

आरएनटीयू भारत का पहला कौशल विवि है जो आरएनटीयू-एनएसडीसी अकादमियों के माध्यम से 32 कौशल पाठ्यक्रम प्रदान कर रहा है। यूजीसी और नैक (एनएएसी) से मान्यता प्राप्त आरएनटीयू एआईयू और एसीयू का सदस्य है। यहां इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी, कॉमर्स, मैनेजमेंट, पैरामेडिकल साइंस, आर्ट्स, एग्रीकल्चर, साइंस, एजुकेशन, कंप्यूटर साइंस और आईटी, नर्सिंग, जनसंचार एवं पत्रकारिता और कानून सहित 12 संकायों में 80 से अधिक स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट पाठ्यक्रम प्रदान किए जाते हैं। आरएनटीयू ने आर्ट्स एवं कल्चर, अर्थ एवं स्पेस साइंस, एंवायरमेंटल साइंस, एग्रीकल्चर, रिन्यूवेबल एनर्जी, एडवांस्ड मटेरियल, इंटरनेट ऑफ थिंग्स में नवाचार, साइंस और कम्यूनिकेशन, इंक्यूबेशन एंटरप्रेन्योरशिप और स्टार्ट-अप में 9 सेंटर ऑफ एक्सीलेंस स्थापित किए हैं। आरएनटीयू को एआईसीटीई, एनसीटीई, बीसीआई, आईएनसी, एमपी पैरामेडिकल काउंसिल और डीईबी (यूजीसी) द्वारा अनुमोदित किया गया है। आरएनटीयू द्वारा छात्रों को 300 से अधिक कम्पनियों में प्लेसमेंट कराया गया है जो कि अपने आप में एक रिकार्ड है।

India's first Skills University 'Rabindranath Tagore University'

The Rabindranath Tagore University (RNTU), which is under the aegis of the prestigious AISECT Group of Universities, is named after the first Nobel laureate of India.

Highlighting the mission and vision of the University, Mr. Santosh Kumar Choubey, Chancellor, RNTU said, "The prime focus of our University remains imparting skills-based education that can create a cadre of professionals who are skilled enough to pave their own way through this competitive world. With a range of specializations offered, students can select subject areas that interest them and through the right guidance, they can carve a better life for themselves and emerge as leaders of tomorrow."

Various awards that the university has received are a testimony to the quality and success of its pedagogy, to name a few Education Excellence Award 2019, Madhya Pradesh Gaurav Sammaan 2019, ASSOCHAM India-Excellence in Education Award 2018 etc. In the NIRF 2020 Ranking, RNTU is in the Rank Band 151-200 in University Category for the second consecutive year.

RNTU organized 'VISHWRANG' - Tagore International Literature and Arts Festival, a festival of Literature and Arts in Hindi and Indian Languages where authors, poets, theatre and film artists, technicians and more than 400 personalities from over 30 nationalities Participated. The winners of Gyan Peeth and Padma Awards, Professors and Students from various Universities & Schools from around the world also participated.

RNTU is India's first skills university offering 32 skill courses through RNTU-NSDC Skill Academies. The UGC recognized and NAAC accredited university is a member of AIU and ACU and offers more than 80 undergraduate, postgraduate and doctoral courses under 12 faculties, including Engineering & Technology, Commerce, Management, Paramedical Science, Arts, Agriculture, Science, Education, Computer Science & IT, Nursing, Mass Communication & Journalism and Law. RNTU has set up 9 Centers of Excellence in Art & Culture, Earth & Space Sciences, Environmental Science, Agriculture, Renewable Energy, Advanced Material, Innovation in IoT, Science & Communication and Incubation, Entrepreneurship & Start-ups. RNTU is approved by AICTE, NCTE, BCI, INC, MP Paramedical Council and DEB (UGC) and holds an impeccable placement record with over 300 placement partners.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्व रंग

प्रधान संपादक
संतोष चौबे

संपादक
लीलाधर मंडलोई

सहायक संपादक
राकी गर्ग

अग्निशेखर और वामा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संतोष चौबे
निदेशक विश्व रंग

प्रधान संपादक
संतोष चौबे

संपादक
लीलाधर मंडलोई

सहायक संपादक
राकी गर्ग

विश्व रंग
(अनियतकालिक, अवैतनिक व आंतरिक वितरण हेतु)
प्रकाशक
रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय,
भोपाल

Vishwa Rang
(Non Time, Unpaid Magazine and for Internal distribustion only)
Published by
Rabindranath Tagore University,
Bhopal (M.P.)

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री के विचार से प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। समस्त विवाद भोपाल न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय ।

आवरण चित्र : नंदलाल बोस भीतरी रेखांकन : सुभाष केकरे, लीलाधर मंडलोई साज सज्जा : संजय
मुद्रक : विकास कंप्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, ई-33 से.-ए 5/6 ट्रोनिका सिटी, यूपीएसआईडीसी इंडस्ट्रीयल ऐरिया, लोनी, गाजियाबाद-201102

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रधान संपादकीय:
संतोष चौबे/5

संपादकीय:
लीलाधर मंडलोई /7

सभ्यता :
महात्मा गांधी /9

आधुनिकता और गांधी प्रासंगिकता:
डॉ. धनंजय वर्मा/12

गांधी व टैगोर की विरासत और लोकतन्त्र :
नंदकिशोर आचार्य/17

अर्थशास्त्र अनर्थ नहीं :
कनक तिवारी /24

राष्ट्रपिता का राष्ट्रवाद :
अरविंद मोहन / 35

हिन्दी कहानियों में महात्मा गांधी का प्रभाव :
महेश दर्पण/38

गांधी केन्द्रित कहानियाँ
1. नमक का दरोगा: प्रेमचन्द्र /42
2. संध्या : उमादेवी/47
3. राजघाट में गांधीजी की समाधि पर: कन्हैयालाल मिश्र/57
4. मेरा वतन: विष्णु प्रभाकर/60
5. बीच प्रेम में गांधी : संतोष चौबे/65
6. गांधी की तलाश में हत्यारे : प्रदीप पंत/68

गांधी और राम :
ध्रुव शुक्ल /71

गांधी का अस्पृश्यता चिंतन :
जयप्रकाश कर्दम/74

गांधी, गांधीवाद और भारतीय संविधान :
धीरंजन मालवे/81

गांधी और स्वाधीनता आंदोलन के कुछ ऐतिहासिक संदर्भ :
रश्मि चौधरी/87

कविताएँ :
सुमन पोखरेल,/91
बसंत त्रिपाठी /95
कमल वोरा, अनुवाद: बिन्दु भट्ट /98
अल्मोग बेहार, अनुवाद: राजेश झा/100

कोरोना काल में गाँव गांधी और वाम दक्षिण वगैरह :
महेश कटारे/103

एक तितली मनोहर होगी
कुमार अनुपम/109

गांधी अहिंसा और आलोचना का जाग्रत विवेक:
अच्युतानंद मिश्र/117

कर्मयोगी का कलानुराग :
विनय उपाध्याय/121

ग़ज़लें और रेखाकंन :
जयंत परमार/124

गांधी और मैं - संवाद :
धनंजय वर्मा/126

महात्मा गांधी डॉक्युमेंट्री में :
विजय शर्मा /130

गांधी और सिनेमा कुछ अंतर्कथाएँ :
दिलीप शाक्य/136

गांधी से महात्मा तक :
(सन्दर्भ: श्याम बेनेगल की फिल्म - 'द मेकिंग ऑफ महात्मा')
मनोज मल्हार /142

ये गांधी स्मरण क्यों :
रवीन्द्र त्रिपाठी/ 146

विज्ञान और प्रौद्योगिकी: गांधी की दृष्टि में
शुकदेव प्रसाद /149

महात्मा गांधी और चित्रकला:
अशोक भौमिक /153

गांधी के परस्पर विरोधी विचार :
अनुवाद, प्रांजल धर/ 162

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

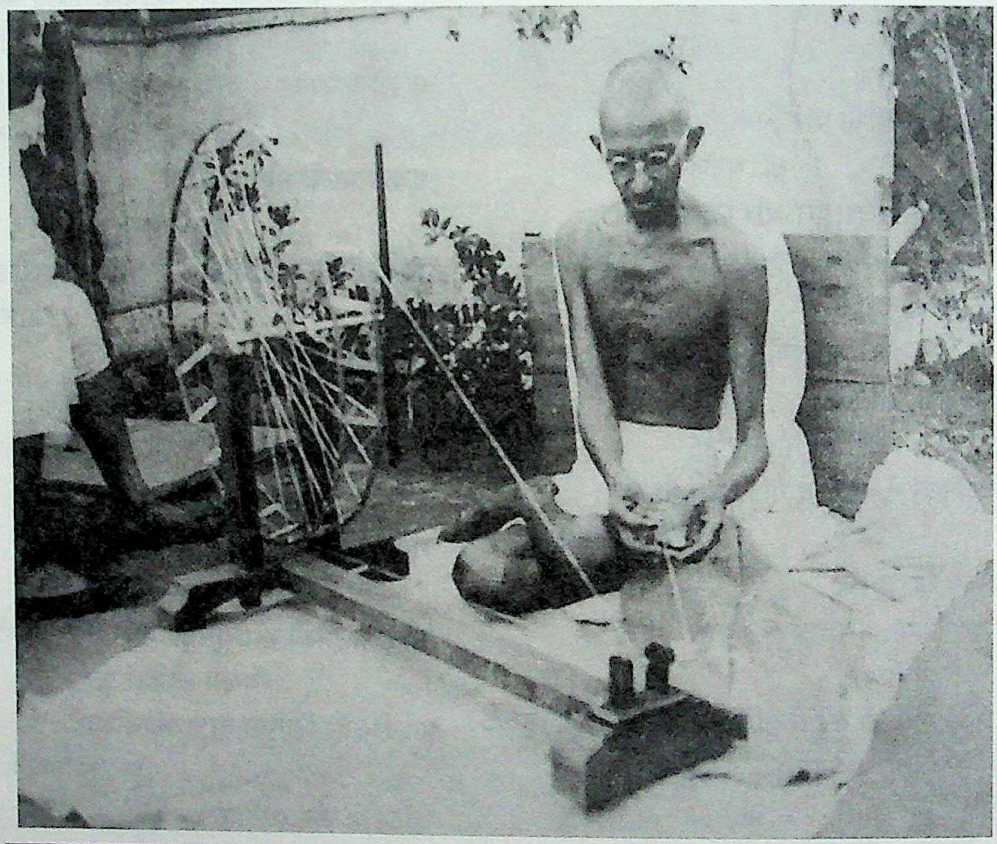

अहिंसा मानवता के लिए सबसे बड़ी ताकत है। यह आदमी द्वारा तैयार विनाश के ताकतवर हथियार से अधिक शक्तिशाली है।

महात्मा गांधी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे'

महात्मा गांधी की 150वीं जयंती देश में सभी सरकारी गैरसरकारी संस्थाओं ने अपने-अपने तरीके से मनाई। विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने उनके ऊपर विशेषांक या एकाग्र निकालकर उन्हें याद किया। फिर भी ऐसा लगता है कि बहुत कुछ छूट गया है। अभी भी हम उन्हें उचित ढंग से याद नहीं कर पाये हैं और श्रद्धांजलि नहीं अर्पित कर पाए हैं, जबकि वे एक ऐसे युग पुरुष रहे हैं जिन पर सबसे ज्यादा लिखा गया है। इसके जो कारण मेरी समझ में आते हैं, वह ये हैं कि गांधी जितने सरल हैं उतने ही कठिन भी हैं और उनकी दुरूहता एक ऐसी सरलता, सत्य और अहिंसा की माँग करती है जो साधारणजन के वश की बात नहीं है, क्योंकि लोभ-मोह स्वार्थ और असत्य से बचकर एक सामाजिक, राजनीतिक और समन्वित जीवन जीना एक काँटों भरा रास्ता है जिस पर चलकर सबसे पहले अपने पैरों की चिंता छोड़नी पड़ती है। इसीलिए संत नरसी मेहता द्वारा रचित भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे, पीर पराई जाने रे' गांधी आश्रम की नित्य की प्रार्थनाओं में सम्मिलित था और इसी में उनके राम-राज्य की अवधारणा भी छिपी थी। गांधी कभी भी अप्रासंगिक नहीं हो सकते। सत्य और अहिंसा उनके ऐसे प्रयोग हैं जो विश्व के किसी भी कोने में और किसी भी समय में अप्रासंगिक नहीं हो सकते।

'विश्वरंग' की मूल स्थापनाओं में ही यह बात शामिल है कि 'विकास' का जो रास्ता हमने अपनाया है वह वास्तव में हमें विनाश की ओर ले जा रहा है और इस पर विचार करने तथा उसे बदलने की जरूरत है। असल में पूरी बीसवीं शताब्दी, उन्नीसवीं सदी में पैदा हुये विचारों तथा विचारधाराओं से संचालित रही है और अगर हमें विकास की इस धारा को बदलना है तो हमें उन्नीसवीं सदी के उन विचारों से मुक्ति पानी होगी जिन्होंने पूरी दुनिया में एक विभ्रम की स्थिति उत्पन्न की।

बीसवीं शताब्दी में अगर किसी ने नया विचार पैदा किया तो वे गांधी थे। उन्होंने समग्र मनुष्य की बात की, मनुष्य केंद्रित विकास की बात की और भारतीय परंपरा में जाकर प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन तथा अविचारित औद्योगिकीकरण का विरोध किया। प्रकृति के साथ सामंजस्य, ग्राम स्वराज्य की अवधारणा तथा अहिंसक प्रतिरोध जैसे कई विचार 'गांधीवाद' के प्रमुख स्तंभों में गिने जाते हैं। गांधीवाद ने कई देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों तथा उनके विचारकों को प्रभावित किया तथा लौट-लौटकर गांधी के विचार आज भी बहस के केंद्र में आ जाते हैं। बीसवीं सदी में मनुष्य की 'स्वायत्तता' के सबसे बड़े हिमायती गांधी थे।

गांधी हमारी वैचारिक स्वतंर्तता के सवाल को सीधे-सीधे भाषाई स्वतंर्तता के सवाल से जोड़कर देखते थे। सन् 1921 में उन्होंने कहा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''राममोहन रॉय और बड़े परिवर्तनकारी होते, लोकमान्य तिलक और बड़े विद्वान होते, अगर उन्हें अंग्रेजी में सोचना, समझना और अपने विचारों का प्रसार न करना पड़ता। इसमें कोई शक नहीं कि उन्हें अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान से लाभ मिला लेकिन ये बातें वे अपनी भाषा में भी समझ सकते थे। मैं ऐसा नहीं मानता कि अगर राममोहन रॉय या तिलक को अंग्रेजी नहीं आती तो वे उन विचारों को नहीं सोच पाते जो उन्होंने सोचे। भारत में जितने तरह के अंधविश्वास हैं, उनमें इस बात से बड़ा अंधविश्वास कोई नहीं है कि बगैर अंग्रेजी जाने स्वतंत्रता को समझना संभव नहीं है और उससे जुड़े विचारों में खरापन नहीं आ सकता है। अंग्रेजी शासक तो देशी शिक्षा प्रणाली को खराब नहीं बल्कि बेकार समझते थे। इसका विकास भी सही नहीं हुआ। क्योंकि इसका मकसद था भारतीयों के तन, मन और आत्मा को कुंद करना।''

'विश्वरंग' भाषा के इस सवाल को भी बहुत प्रभावशाली ढंग से उठाता रहा है। हमारा मानना है कि हिंदी और भारतीय भाषाओं के सामने न सिर्फ अपने देश के भीतर ज्ञान विज्ञान को विकसित करने की चुनौती है बल्कि आज की परिस्थितियों में यह संभावना भी बनी है कि वे अपना वैश्विक विस्तार कर सकें। इस पर गंभीरता से काम किया जाना चाहिये। इन संदर्भों में भी गांधी और टैगोर हमारे लिये महत्वपूर्ण संदर्भ बन जाते हैं।

आज कोविड 19 के बाद की दुनिया में भी, जिसमें इस महामारी से बचने के लिए स्वदेशी, स्वच्छता तथा आत्मनिर्भरता जैसे दृष्टिकोण की गहन आवश्यकता पड़ी, गांधी को याद करना आवश्यक है। गांधी हिन्द स्वराज में एक स्थान पर कहते हैं कि, ''प्रकृति ने इतना सीधा रास्ता बनाया ही नहीं कि हम जिस चीज को चाहें वह हमें तुरंत मिल जाये।'' मशीनों को हम इस रूप में देखते हैं कि तुरंत काम हो जाएगा पर इसके भावी परिणाम घातक होंगे। कहने की जरूरत नहीं कि आज विश्व दो संकटों, महामारी और विस्थापन से सबसे अधिक जूझ रहा है। तथाकथित औद्योगिक विकास, जिसके गांधीजी विरोधी थे, दुनिया के सामने अनेक संकट उत्पन्न कर रहा है जिसमें जलवायु परिवर्तन भी है।

अल्बर्ट आईंस्टाइन जैसे वैज्ञानिक भी उनके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित थे कि सन् 1944 में महात्मा गांधी के जन्मदिन पर उन्होंने कहा था, ''आने वाली पीढ़ियाँ शायद मुश्किल से ही विश्वास कर सकेंगी कि हाड़-मांस से बना हुआ ऐसा कोई व्यक्ति भी धरती पर चलता-फिरता था।'' अल्बर्ट आईंस्टाइन, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला, जार्ज बर्नाड शॉ, ई.एफ शूमाकर, स्टीव जॉब्स, बराक ओबामा आदि भी उस सूची में शामिल हैं जिन्होंने गांधी से प्रेरणा ली।

क्या ऐसा नहीं लगता कि आज गांधी को सिर्फ इसलिए याद करना कि भारत को उन्होंने आजादी दिलाई थी, से ज्यादा जरूरी है इसलिये याद करना कि उनके विचार शायद पृथ्वी को युद्ध और विनाश से बचाने में उपयोगी साबित हों, जिसमें पूरा विश्व भागीदार है। आज पूरे विश्व को उन्हें समझने की जरूरत है। अभी भी इतनी देर नहीं हुई है कि 'सत्य के प्रयोगों' को आत्मसात करके हम अपना आज ही नहीं कल भी कुछ बेहतर न कर सकें।

गांधी जी के विषय क्षेत्र बहुत व्यापक थे। भोजन, सभ्यता, राजनीति, धर्म आदि सभी को उन्होंने जाना और समझा था। यह उचित ही है कि 'विश्वरंग' पत्रिका का प्रवेशांक गांधी को समर्पित है। 'विश्वरंग' पत्रिका में गांधी स्मरण अंक के अंतर्गत गांधी जी के मूल्यों और विश्वासों और उनसे जुड़े विविध पहलुओं को विभिन्न साहित्यकारों की दृष्टि से, जिनमें वरिष्ठ लेखकों के साथ युवा साहित्यकार भी सम्मिलित हैं, याद करने का प्रयास किया गया है। साथ ही साहित्य और कला की दृष्टि से भी उन पर चर्चा है। फिर भी बतौर प्रधान संपादक मैं अपनी बात गांधी जी के ही कथन से समाप्त करना चाहूँगा कि, ''जिसे भी मानवीय हाथ छूते हैं वह चीजें अपूर्ण होती हैं।'' इस अपूर्णता बोध के साथ बापू की स्मृति को नमन।

नया वर्ष हम सबके लिये बेहतर साबित होगा, ऐसी शुभकामनाएं।

संतोष चौबे
प्रधान संपादक
विश्वरंग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जोग लिखी

जितने अपने कर्म और विचार में बचे हो, बाहर हो, यहाँ तो अर्थविहीन उत्सव हैं
खुद तुम्हारी अपनी पार्टी तुम्हे कितना समझ सकी
अब तुम्हारी उपस्थिति, विरोधी खेमों के अवसर का रूपक हो गयी है

इधर जबकि लाखों-लाख लोग गांव- क़स्बों की तरफ
हाल-बेहाल जान बचाकर भाग रहे थे
तुम ही थे, अपनी लंगोटी में सबसे आगे
अब भी ग्राम स्वराज का अपना चिर सपन संभाले

यह समय अब पूँजीवादी प्रयोगों का अंधा समय है
जिन पूँजीपतियों को रखा था साथ अपने और माना कि
वे देंगे अपना लहू भी इस देश को बनाने में
उनके ही उत्तराधिकारियों ने
चूस लिया रक्त सारा और पिंजर भी चाहिए उन्हे

अब कोई अनुयायी होगा तो वह होगा तुम्हारी छायाओं में
कि नहीं है उसके लिए कोई और रास्ता
और उसका भरोसा इतना अटूट है कि वो किसी गांव में
सूत कातते, कुंआ गहरा करते या तालाब खोदते होगा चुपचाप

लेकिन जो खा रहे गांधी के नाम का
वे वहीं हैं, जिनकी कृपा से देशी की जगह सब कुछ विदेशी है
और यहाँ असहयोग आंदोलन नहीं, सहयोग ही सहयोग
अहिंसा नहीं, हिंसा का लोकतंत्र है

आपके अपने घर की माटी से खूनी इतिहास की धार फूटी है
और कोई सत्याग्रह नहीं, कोई उपवास,कोई भूख हड़ताल नहीं
अब अनैतिक होने को मान लिया गया है नैतिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अधर्म अब राजनीतिक धर्म है, राम अब वोट बैंक और
राम राज्य आधुनिक रावण की लंका में छटपटा कर दम तोड़ चुका है

एक और आज़ादी की लड़ाई की दरकार है और कोई गांधी सा भी नहीं
कोई नहीं, जो खड़ा हो दलितों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों के पक्ष में
और किसान और मजदूरों के बारे में सोचता
देश गौण और सत्ता प्रमुख होने की इबारतें
जो अदृश्य आकार ले रहीं थीं तुम्हारी जीवन संध्या में, वे अध्यादेश की शक़्ल में हैं

अपने जन्मदिन पर 1947 में यही कहा था न
–'मेरे लिए यह मातम मनाने का दिन है'
और तुम्हे भूलकर एक जश्न जो शुरु हुआ था,चल रहा दुगनी शानो–शौक़त से
और तुम्हारा यह भरोसा भी कितना झूठा साबित हुआ
कि– 'पीछे याद किया करोगे कि बूढ़ा जो कहता था वह सही बात थी '

हाँ! अब भी दुनिया–जहान में तुम्हारे दर्शन के विचारों में टिमकते–चमकते लोग हैं
और वे कुछ ही संवेदनशील दुनिया में खड़े हैं विकल्प खोजते
कोई आश्चर्य नहीं, हो कहीं और एक गांधी, पीर पराई समझकर दौड़ता
एक उम्मीद कहीं चुपचाप पल रही हो
एक और आज़ादी के लिए तैयार हो रही हो जनता चुपचाप
याद हो अगर यह बात, उस बूढ़े की
कि– 'जो मैंने किया, कोई साधारण व्यक्ति कर सकता है।'

मैं साधारण में असाधारण गांधी के उदय को लेकर नाउम्मीद नहीं हूँ
हम सब में थोड़े–थोड़े गांधी हैं जो आकार लेंगे एक विराट गांधी में.....एक दिन

लीलाधर मंडलोई
संपादक
मो. 9315305643

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभ्यता

महात्मा गांधी

पाठक: अब तो आपको सभ्यता की भी बात करनी होगी। आपके हिसाब से तो यह सभ्यता बिगाड़ करने वाली है।

संपादक: मेरे हिसाब से ही नहीं, बल्कि अंग्रेज लेखकों के हिसाब से भी यह सभ्यता बिगाड़ करने वाली है। उसके बारे में बहुत किताबें लिखी गई हैं। वहाँ इस सभ्यता के खिलाफ मंडल भी कायम हो रहे हैं। एक लेखक ने 'सभ्यता उसके कारण और उसकी दवा' नाम की किताब लिखी है। उसमें उसने यह साबित किया है कि यह सभ्यता एक तरह का रोग है।

पाठक: यह सब हम क्यों नहीं जानते ?

संपादक: इसका कारण तो साफ है। कोई भी आदमी अपने खिलाफ जाने वाली बात करे ऐसा शायद ही होता है। आज की सभ्यता के मोह में फँसे हुए लोग उसके खिलाफ नहीं लिखेंगे, उल्टे उसको सहारा मिले ऐसी ही बातें और दलीलें ढूँढ़ निकालेंगे। यह वे जान-बूझकर करते हैं ऐसा भी नहीं है। वे जो लिखते हैं उसे खुद सच मानते हैं। नींद में आदमी जो सपना देखता है, उसे वह सही मानता है। जब उसकी नींद खुलती है तभी उसे अपनी गलती मालूम होती है। ऐसी ही दशा सभ्यता के मोह में फँसे आदमी की होती है। हम जो बातें पढ़ते हैं वे सभ्यता की हिमायत करने वालों की लिखी बातें होती हैं। उनमें बहुत होशियार और भले आदमी हैं। उनके लेखों से हम चौंधिया जाते

> हिन्द स्वराज्य की सच्ची खुमारी उसी को हो सकती है, जो आत्मबल अनुभव करके शरीर बल से नहीं दबेगा और निडर रहेगा तथा सपने में भी तोप बल का उपयोग करने की बात नहीं सोचेगा।

है। यों एक के बाद दूसरा आदमी उसमें फँसता जाता है।

पाठक: यह बात आपने ठीक कही। अब आपने जो कुछ पढ़ा और सोचा है, उसका ख़्याल मुझे दीजिए।

संपादक: पहले तो हम यह सोचें कि सभ्यता किस हालात का नाम है। इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी दुनिया की खोजों में और शरीर के सुख में धन्यता, सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं। इसकी कुछ मिसालें लें। सौ साल पहले यूरोप के लोग जैसे घरों में रहते थे उनसे ज़्यादा अच्छे घरों में आज वे रहते हैं यह सभ्यता की निशानी मानी जाती हैं। इससे शरीर के सुख की बात है। इसके पहले लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे और भालों का इस्तेमाल करते थे। अब वे लंबे पतलून पहनते हैं और शरीर को सजाने के लिए तरह-तरह के कपड़े बनवाते हैं और भाले के बदले एक के बाद एक पाँच गोलियाँ छोड़ सके ऐसी चक्कर वाली बन्दूक इस्तेमाल करते हैं। यह सभ्यता की निशानी है। किसी मुल्क के लोग, जो जूते वगैरह नहीं पहनते हों, जब यूरोप के कपड़े पहनना सीखते हैं तो जंगली हालत में से सभ्य हालत में आए हुए माने जाते हैं।

पहले यूरोप में लोग मामूली हल की मदद से अपने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए जात-मेहनत करके जमीन जोतते थे। उनकी जगह आज भाप के यंत्रों से हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी जमीन जोत सकता है और बहुत-सा पैसा जमा कर सकता है। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग कुछ ही किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थीं। आज हर कोई चाहे जो लिखता छपवाता और लोगों के मन को भरमाता है। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ी से रोज बारह कोस की मंजिल तय करते थे। आज रेलगाड़ी से चार सौ कोस की मंजिल मारते हैं

यह तो सभ्यता की चोटी मानी गयी है। यह सभ्यता जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे यह सोचा जाता है कि लोग हवाई जहाज से सफर करेंगे और थोड़े ही घंटों में दुनिया के किसी भी भाग में जा पहुँचेंगे। लोगों को हाथ-पैर हिलाने की जरूरत नहीं रहेगी। एक बटन दबाया कि आदमी के सामने पहनने की पोशाक हाज़िर हो जाएगी, दूसरा बटन दबाया कि उसे अख़बार मिल जाएँगे, तीसरा दबाया कि उसके लिए गाड़ी तैयार हो जाएगी, हमेशा नये भोजन मिलेंगे, हाथ -पैर का काम ही नहीं पड़ेगा, सारा काम कल (यंत्र) से ही किया जायेगा। पहले लोग जब लड़ना चाहते थे, तो एक दूसरे के शरीर बल आज़माते थे। आज तो तोप के एक गोले से हजारों जानें ली जा सकती हैं। यह सभ्यता की निशानी है।

पहले लोग खुली हवा में अपने को ठीक लगे उतना काम स्वतंत्रता से करते थे। अब हजारों आदमी अपने गुज़ारे के लिए इकट्ठा होकर बड़े कारखानों में या खानों में काम करते हैं। उनकी हलात जानवर से भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसे वगैरह

सभ्यता के हिमायती साफ कहते हैं कि उनका काम लोगों को धर्म सिखाने का नहीं है। धर्म तो ढ़ोंग है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग धर्म का दंभ भरते हैं, नीति की बातें भी करते हैं। फिर भी मैं आपसे बीस बरस के अनुभव के बाद कहता हूँ कि नीति के नाम पर अनीति सिखलाई जाती है।

के कारखानों में जान को ज़ोखिम में डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगों को मिलता है। पहले लोगों को मार-पीट कर गुलाम बनाया जाता था, आज लोगों को पैसे का ओर भोग का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है। पहले जैसे रोग नहीं थे वैसे रोग आज लोगों में पैदा हो गये हैं और उसके साथ डॉक्टर खोज करने लगे हैं कि ये रोग कैसे मिटाए जाएँ। ऐसा करने से अस्पताल बढ़े हैं। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग पत्र लिखते थे तब खास क़ासिद उसे ले जाता था और उसके लिए काफी खर्च लगता था। आज मुझे किसी को गालियाँ देने के लिए पत्र लिखना हो, तो एक पैसे में मैं गालियाँ दे सकता हूँ। किसी को मुझे मुबारकबाद देना हो तो भी मैं उसी दाम में पत्र भेज सकता हूँ, यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग दो या तीन बार खाते थे और वह भी खुद हाथ से पकाई हुई

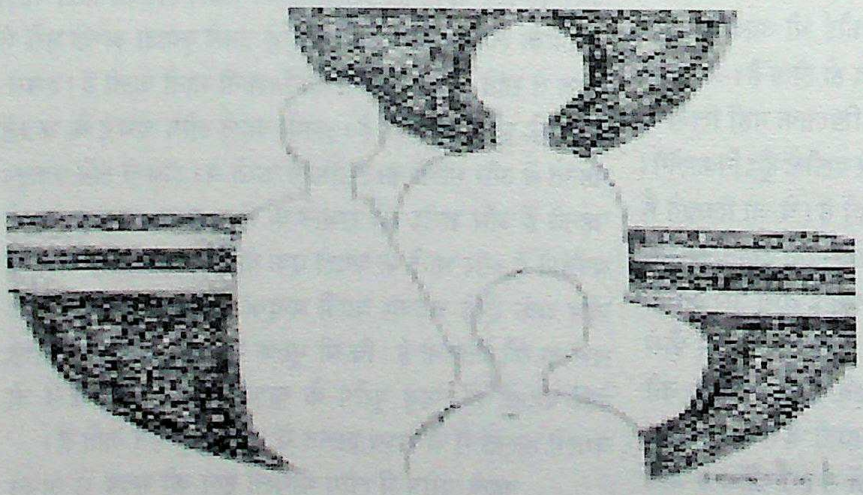

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पैगम्बर मोहम्मद साहब की सीख के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिन्दू धर्म इसे निरा कलयुग कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यता का हूबहू चित्र नहीं खींच सकता। यह मेरी शक्ति के बाहर है, लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद नाशवान है।

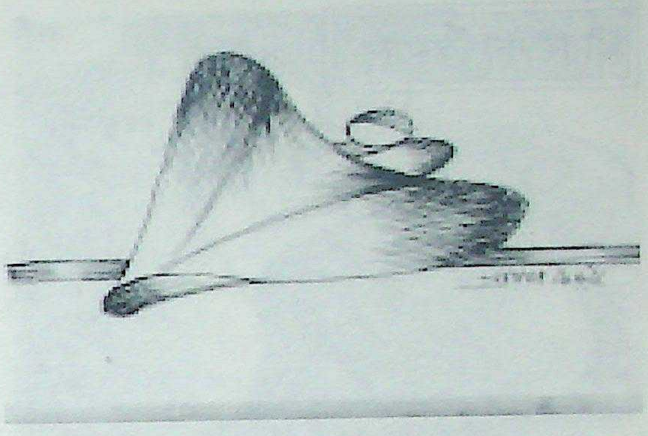

रोटी और थोड़ी तरकारी। अब तो हर दो घंटे पर खाना चाहिए और वह यहाँ तक कि लोगों को खाने से फुरसत ही नहीं मिलती और कितना कहूँ? यह सब आप किसी भी पुस्तक में पढ़ सकते हैं। ये सब सभ्यता की सच्ची निशानियाँ मानी जाती हैं और अगर कोई भी इससे भिन्न बात समझाए, तो वह भोला है ऐसा निश्चय ही मानिये। सभ्यता तो मैंने जो बतायी वही मानी जाती है। उसमें नीति या धर्म की बात ही नहीं है। सभ्यता के हिमायती साफ कहते हैं कि उनका काम लोगों को धर्म सिखाने का नहीं है। धर्म तो ढोंग हैं, ऐसा कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग धर्म का दंभ भरते है, नीति की बातें भी करते है। फिर भी मैं आपसे बीस बरस के अनुभव के बाद कहता हूँ कि नीति के नाम से अनीति सिखलाई जाती है। ऊपर की बातों में नीति हो ही नहीं सकती, यह कोई बच्चा भी समझ सकता है। शरीर का सुख कैसे मिले, यही आज की सभ्यता ढूँढती है और यही देने की वह कोशिश करती है, परंतु वह सुख भी नहीं मिल पाता।

यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोप में इतने दरजे तक फैल गयी है कि वहाँ के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते है। उनमें सच्ची कुव्वत नहीं है, वे नशा करके अपनी ताक़त कायम रखते हैं। एकान्त में वे बैठ ही नहीं सकते। जो स्त्रियाँ घर की रानियाँ होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या कोई मजदूरी करनी पड़ती है। इंग्लैड में ही चालीस लाख गरीब औरतों को पेट के लिए सख्त मजदूरी करनी पड़ती है और आजकल इसके कारण 'सफ्रीजेट' (महिला मताधिकार) कर आन्दोलन चल रहा है।

यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज धरकर बैठे रहेंगे, तो सभ्यता की चपेट में आए हुए लोग खुद की जलायी हुई आग में जल मरेंगे। पैगम्बर मोहम्मद साहब की सीख के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिन्दू धर्म इसे निरा 'कलयुग' कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यता का हूबहू चित्र नहीं खींच सकता यह मेरी शक्ति के बाहर है, लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद नाशवान है। इससे दूर रहना चाहिए और इसीलिए ब्रिटिश और दूसरी पार्लियामेन्ट बेकार हो गई हैं । ब्रिटिश पार्लियामेन्ट अंग्रेज प्रजा की गुलामी की निशानी है, यह पक्की बात है। आप पढ़ेंगे और सोचेंगे तो आपको भी ऐसा ही लगेगा। इससें आप अंग्रेजों का दोष न निकालें। उन पर तो हमें दया आनी चाहिए। वे काबिल प्रजा हैं इसीलिए किसी दिन उस जाल से निकल जाएँगे ऐसा मैं मानता हूँ। वे साहसी और मेहनती हैं। मूल में उनके विचार अनीति भरे नहीं हैं, इसीलिए उनके बारे में मेरे मन में उत्तम ख़्याल ही है। उनका दिल बुरा नहीं है। यह सभ्यता उनके लिए कोई अमिट रोग नहीं है, लेकिन अभी वे उस रोग में फँसे हुए हैं, यह तो हमें भूलना ही नहीं चाहिए।

('**हिन्द स्वराज**' कृति से)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधुनिकता और गांधी प्रासंगिकता

धनंजय वर्मा
(सुप्रसिद्ध आलोचक, गद्यकार व कवि)

मेरी चेतना पर तीस जनवरी की छाया मँडरा रही है: तीस जनवरी, जिस दिन पहली बार गांधी की हत्या हुई थी और उसके बाद गांधी की हत्याओं का एक लम्बा सिलसिला है। .....इतिहास कहता है कि तीस जनवरी को एक पागल आदमी ने गांधी की हत्या की थी- लेकिन उसके बाद गांधी की हत्याओं का एक क्रम चला। इस बार गांधी का हत्यारा कोई एक व्यक्ति नहीं था। गांधी को राजघाट पहुँचाकर ही लोगों ने दम नहीं लिया बल्कि अपार्थिव रूप में जहाँ-जहाँ भी गांधी जीवित था या है, वहीं-वहीं इनका षडयंत्र सक्रिय रहा है। साधारण आदमी तो एक बार मरकर मर जाता है लेकिन गांधी... ? ''ईसा को सूली पर टाँग कर ही लोगों ने दम नहीं लिया..... पॉल ने जीसस की शिक्षाओं को ही बदल दिया.... '' और बुद्ध को तो देश से निकाल कर ही हमने चैन लिया।

हमारा देश महान् है हम मौत की पूजा करते हैं और जीवन का तिरस्कार! इस मृत्युपूजक देश में हर प्रासंगिक और सार्थक व्यक्ति के जल्दी से जल्दी स्मारक खड़े कर, उसकी मूर्ति स्थापित कर दी जाती है और उसे पूजा की वेदी पर बिठा कर जीवन से अलग कर दिया जाता है। सुबह-शाम या जब मौका मिले उसका नामोच्चार हो जाता है, और फिर अपनी राह, और अवसर की तलाश। गांधी का उचित स्थान, पूजा की वेदी नहीं, जीवन की कर्मभूमि है। कर्म से बढ़कर कर्ता की यादगार और क्या हो सकती है..... ? हमने गाँधी को देवालयों में तो प्रतिष्ठित किया लेकिन जीवन से बहिष्कृत कर दिया।

मेरी थोड़ी-सी भावुकता के लिए मुझे क्षमा करें लेकिन मैं क्या करूँ कि वास्तविकता मुझे उद्वेलित कर गई है। और आज सवाल पूछा जा रहा है कि वर्तमान समय में गांधीवाद की सार्थकता क्या है? यानी गांधी की सार्थकता पर शंका होने लगी है। सवाल की क्या यह एक ध्वनि नहीं है कि बीते ज़माने में तो गांधीवाद की सार्थकता थी, शायद भविष्य में कभी हो लेकिन वर्तमान समय में भी क्या वह सार्थक है?..... मुझे नेहरूजी की आत्मकथा के कुछ शब्द याद आ रहे हैं। गांधी जी के विषय में वे कहते हैं-

'' वे बहुत मुश्किल व्यक्ति थे, कभी-कभी तो उनकी भाषा एक औसत आधुनिक आदमी की समझ के बाहर की होती थी। ... अक्सर हम लोग आपस में उनकी सनक और विलक्षणताओं की चर्चा किया करते थे और मजाक में कहा करते थे कि स्वराज के बाद उनकी इन सनकों को भी प्रोत्साहन न दिया जाय।..... ''

स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रतिभा और बुद्धिजीवी में यह भ्रम बढ़ते-बढ़ते अब विश्वास की शक्ल अख़्तियार कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चुका है कि जो कुछ भारतीय है वह त्याज्य है, पिछड़ा हुआ है, अन-आधुनिक है। ... मुझे कहने दीजिए कि 1947 में हमने राजनीतिक स्वतंत्रता तो पाई लेकिन उसी दिन से हमारी मानसिक दासता का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पहले रूढ़ि की गुलामी थी, अब आधुनिकता की भी रूढ़ियाँ बन गई हैं।

गांधी ने जिस स्वदेशी ढंग की अर्थनीति, राजनीति और समाजनीति का प्रारूप हमारे सामने रखा और जिस स्वाभाविक ढंग से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को विकसित और निर्देशित करने की चेष्टा की, वह आरोपित और आयातित आधुनिकता के मोह में हमें पिछड़ापन लगा। नेहरू के शब्द फिर याद आते हैं। वे कहते हैं-

''सैद्धान्तिक और वैचारिक दृष्टि से वे कभी-कभी अचम्भे की हद तक पिछड़े हुए थे।'' वे यानी गांधी।

इस वाक्य से ज़िरह करने की मेरी मंशा नहीं है, मैं मान लेता हूँ कि गांधी के सिद्धांत पिछड़े हुए थे, मगर उसका कारण यही था कि वे इस पिछड़े देश की ज़मीन और आदमी से निकले थे, बने थे। उन्होंने देश को आगे बढ़ाने के लिए सिद्धांतों का आयात नहीं किया न उन्हें उधार लिया। ..... संवाद की यह अनिवार्य शर्त हैं, आप उसे विवशता भी कह सकते हैं, कि यदि सामने वाला आपकी भाषा नहीं समझता तो आपको उसकी भाषा में ही उससे संवाद करना होगा और भाषा से मेरा मतलब कोरे शब्दों से नहीं है, अस्तित्व से जुड़े शब्दों से है। शब्द तो वायवीय हैं, उन्हें कोई नहीं समझता जब तक कि वे अस्तित्व से, व्यवहार से न जुड़े हों और गांधी ने अपने देश के आदमी से उसकी भाषा में ही संवाद किया और सार्थक संवाद किया। ....

आप इस देश के आदमी से संवाद करते हुए धर्म को नहीं भुला सकते, इतिहास की इबारत नहीं मिटा सकते। परम्परा को ठोकर नहीं लगा सकते, परम्परा का मतलब अतीत नहीं, अतीत की अनुभूति है जो निरन्तर विकासमय है, गतिशील है और इतिहास की शिक्षा का सत्य है- और यदि धर्म गलत हाथों में चला गया है, गलत अर्थ ले चुका है तो उसे सही सन्दर्भ देकर ही आप भारतीय जन को, साधारण को अपने साथ लेकर चल सकते हैं, जिसके बिना कोई भी नेतृत्व कोरा दम्भ है, छलावा है और बेमानी है और यहाँ धर्म से मेरा मतलब 'रिलीजन' नहीं है, धर्म ही है, जिसका अनुवाद किसी भी दूसरी भाषा में नहीं हो सकता। उसका अनुवाद केवल एक भाषा में हो सकता है- वह

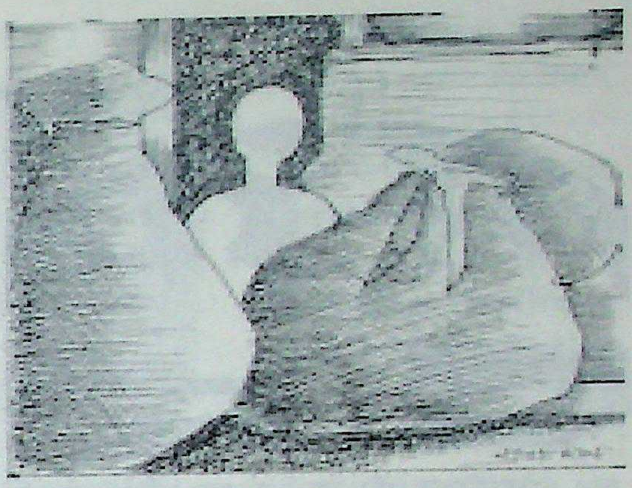

है, जीवन, कर्म, और व्यवहार। लेकिन शायद सदा से हमने यही किया है और अब तो हमारी आदत हो गई है कि शब्द को अस्तित्व से, आचार को विचार से और व्यवहार को सिद्धांत से अलग और बरखिलाफ रखा जाय। .... वरना क्या कारण है कि यह देश जो बापू का देश कहलाता है, जिसने यहाँ जातिविहीन, वर्गविहीन समाज का सपना देखा था, अपने धर्म-जाति-वर्ण-लिंग-निरपेक्ष लोक कल्याणकारी राज्य में अपने बच्चों से स्कूल के प्रवेश में और युवकों को नौकरी की दरख़ास्तों में धर्म और जाति के कॉलम भरवाता है? जाति, सम्प्रदाय और मज़हब को शोषण कर चुनाव लड़ता है और देश की धर्मभीरू जनता का इस्तेमाल करता है। 'वर्ग- वार' कॉलोनी बसाता है।

मैं बात आधुनिकीकरण की कर रहा था। आधुनिकता भी एक दौड़ है जिसमें सब अव्वल आना चाहते हैं। सभी आज इस भीड़ में शामिल हैं, दौड़-दौड़ कर आधुनिकता का रंग-रोगन लगा लेने को चिंतित हैं कि कहीं पुराने न घोषित कर दिये जाएँ। मुश्किल तो यह है कि जो भारतीयता को दकियानूस समझते हैं, उसके विश्वासों और मान्यताओं, मूल्यों और प्रतिमानों को अन-आधुनिक मानते हैं और शायद इसीलिए गांधी के सत्याग्रह और अहिंसा आदि को भी पिछड़ेपन के खाते में टाँकना चाहते हैं, वही यूरोप और अमरीका की हर बकवास को आधुनिकता का जरूरी जुज मानते हैं, और ऐसी अन्धश्रद्धा से उनका अनुसरण करते हैं कि कोई पोंगापंथी भी किसी शालिग्राम से क्या माथा रगड़ेगा। हम चाहे गांधी पर चर्चा करें या सार्त्र-कामू या काफ्का पर, जब तक इस दिमागी गुलामी से छुट्टी ही मिलती है तब तक हमारी सारी आधुनिकता ऊपरी है, फैशन है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

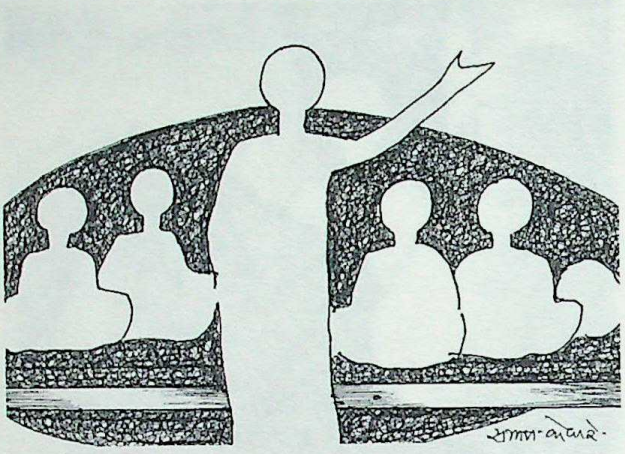

आधुनिकता और आधुनिकीकरण सुविधा की चीजें नहीं हैं और न वेश-भूषा है। वह स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया है और हमारा समग्र व्यक्तित्व और प्रकृति उसके रूपान्तरण से जुड़ी हैं । वह देश काल से नियमित और शासित होती है। इस सत्य की जितनी गहरी चेतना गांधी में थी उतनी शायद और किसी में नहीं। नेहरू-युग, आधुनिकता के प्रति मोहाविष्टता का युग रहा है। वह यूरोप और अमरीका की आधुनिकता के प्रति अभिभूत मानसिकता का युग रहा है! लेकिन गांधी ने आधुनिकीकरण और आधुनिकता को समाज वैज्ञानिक सन्दर्भ दिया था। उसे केवल चिन्तन का प्रत्यय नहीं बनाया, जीवन का मुहावरा दिया।

नेहरू समर्पण की आधुनिकता में विश्वास करते नजर आते हैं, गांधी चुनौती की आधुनिकता में। उनकी चेष्टा आधुनिकता का विकास करने की थी न कि उसका आयात या अनुकरण करने की, वे कहते है-

''परिश्रमी सभ्यता के प्रति मेरा प्रतिरोध दरअसल उसके अविवेकपूर्ण और विचारहीन अनुकरण का प्रतिरोध है। यह अनुकरण इस अनुमान पर आधारित है कि एशियावासी पश्चिम से आने वाली हर चीज की नकल करने के काबिल है।''

विचार और विवेक-चुनाव की स्वतंत्रता देते हैं, और जब तक चुनाव की स्वतंत्रता नहीं है कोई भी स्वतंत्रता झूठी है। जब गांधी कहते हैं - ''हम लोग एक ग्रामीण सभ्यता के वारिस हैं, हमारे देश का विस्तार, जनसंख्या की विपुलता, देश की जलवायु और स्थिति को देखते हुए, मेरे विचार से, एक ग्रामीण सभ्यता उसकी नियति है।...'' ग्रामीण सभ्यता को नियति आप चाहे न मानें लेकिन क्या यह स्थिति का सीधा साक्षात्कार है? यथार्थ की सहज स्वीकृति है। इसे भूलकर हमने तेजी और अनियोजित और अस्वाभविक ढंग से शहरीकरण और औद्योगिकीकरण किया है, उसने ने केवल आधुनिकीकरण को अस्त-व्यस्त किया है, बल्कि हमारी सारी चेतना और सम्वेदना में संकट पैदा कर दिया है। आप गौर करें तो मूल्यों का यह संकट और ह्रास और युवा पीढ़ी का यह सारा मोहभंग और आक्रोश इसी अस्वाभाविकता और अस्त-व्यस्तता का परिणाम है। मूल्य-चेतना जीवन के साथ विकास करती है। और विकास का मतलब परिवर्तन तो हो सकता है, असम्बद्ध और आकस्मिक स्थानान्तरण नहीं। उसका मतलब आरोपण और बलात् थोपना तो कतई नहीं है। आप कह सकते हैं कि क्रान्ति तो असम्बद्ध और आकस्मिक ही होती है, तो मेरा निवेदन है कि क्रान्तियाँ असम्बद्ध और आकस्मिक लगती जरूर हैं, होती नहीं हैं। उनके बहुत सारे कारण धीरे-धीरे जमा होते रहते हैं। कहीं हमारी दृष्टि से ओझल, कहीं हमसे सीधे टकराते हुए और फिर एक दिन उभर पड़ते हैं- ज्वालामुखियों की प्रक्रिया से तो आप सब वाकिफ हैं ही। ..... आप इस बात को स्वीकार न भी करें तो एक बात पर गौर जरूर करें कि ऐसी क्रान्तियाँ कितनी स्थायी होती है, उनका प्रभाव, उनकी सिद्धि क्या होती है? फ्रांस अपनी राज्य क्रान्ति के इतने लम्बे अन्तराल के बाद भी स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व को सिद्ध कर पाया क्या? मेरा मतलब क्रान्ति की आवश्यकता और उपयोगिता पर प्रश्न-चिह्न लगाना नहीं है वरन् क्रान्ति की बायलॉजी को समझना है और गांधी ने क्रान्ति की नीति ही नहीं दी उसकी जैविकी को भी समझने-समझाने की कोशिश की है। सत्याग्रह और अहिंसा-क्रान्ति का नीतिशास्त्र ही नहीं, क्रान्ति की जैविकी भी है।.... उनसे हमारा मतभेद हो सकता है- उनके कार्यक्रम में भी काफी रद्दोबदल की गुंजाइश है लेकिन उसके इरादों और नीयत पर शक की गुंजाइश नहीं है।

जरा गौर कीजिए कि क्यों गांधी ने कहा था कि - ''भारतीय अर्थशास्त्र का विचार गाँवों की दृष्टि से किया गया हो, उसमें खेती और उद्योग का परस्पर निकट सम्बन्ध हो। दोनों सामान्य रूप से एक ही छप्पर के नीचे रह सकते हैं।'' और उन्होंने नीतिधर्म की बातें भी कहीं हैं, जिन्हें मैं फिलहाल छोड़ता हूँ क्योंकि आधुनिकतावादियों को इनसे परहेज है -तो मैं अपनी छोटी-सी बुद्धि से जो समझ पाया हूँ, वह यही कि गाँव और खेत और उद्योग के परस्पर सम्बन्ध की बात गांधी ने इसीलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं कही थी कि वे प्रगति का चक्र रोककर पीछे ले जाना चाहते थे, या देश का आधुनिकीकरण नहीं चाहते थे, वरन् इसीलिए कि यूरोप और अमरीका को आदर्श मानकर और बिना उसके आधुनिकीकरण की पूरी प्रक्रिया को समझे, यदि हमने, 'बिगलीप' लिया तो कहीं ऐसा न हो कि हम मुँह के बल गिरें।

.....

आप मानें या ना माने आधुनिकीकरण की दौड़ और कूद में जल्द से जल्द अव्वल आने की बेताबी में हमारा यही हस्र हुआ। हम मुँह के बल गिरे हैं और धूल चाट रहे हैं।...आप पश्चिमी आधुनिकीकरण को बेमिसाल मानते हैं - मैं उसी की मिसाल देता हूँ। पश्चिम ने गाँवों को शहर की ओर ले जाने में तुग़लक का पैटर्न नहीं अपनाया। उसने गाँवों का रूपान्तरण किया और उनका शहरीकरण या औद्योगिकरण चरणों में हुआ, किस्तों में हुआ, स्वाभाविक गति से हुआ, और ग्राम से शहर की शिफ़्ट की स्वरलिपियाँ हार्ड़ी से इलियट तक यात्रा में मिल जायेंगी लेकिन इसको भूलकर हमने गाँवों को उठा-उठाकर शहरों (और शहर भी कैसे ठेठ न्यूयार्क और लन्दन की टू कॉपी) में रखने की कोशिश की और परिणाम हुआ कि गाँव तो उखड़े ही शहर भी न बस सके- न खुदा ही मिला, न विसाले सनम, न घर के रहे न घाट के, दोनों दीन से गये। न पुराने मूल्य बचे न नये विकसित हुए। आप गौर कीजिए, ये गाँव और शहर केवल रहन-सहन से नहीं जुड़े। ये मूल्यदृष्टि से भी जुड़ते हैं, खेती और उद्योग जीवनयापन के साधन ही नहीं हैं, संस्कृति और मूल्य-पद्धति के प्रतीक भी है और कोई भी संस्कृति अपने केन्द्र को भूलकर शून्य में छलाँग नहीं लगाती- वह विकास करती हैं। एक पैर खड़ा रहता है, तभी दूसरा चलने के लिए उठता है।

गाँव और शहर के बीच इस संशय और दुविधा संकट और अस्त-व्यस्तता का सीधा असर, मूल्य संक्रान्ति और विघटन, मूल्यहीनता और भीड़ है।

गांधी का चरखा, खादी और ग्रामोद्योग न्यूनतम आर्थिक आधार देने की वह कोशिश थी जिसके चलते हमारे पाँव के नीचे से जमीन न सरकती और हम आधुनिकीकरण के 'टेक ऑफ' की तैयारी कर सकते थे! लेकिन- औद्योगिकीकरण की दौड़ में देखते-देखते यूरोप और अमरीका के समकक्ष आने की बेताबी में जो क़र्ज की मय हमने पी, उसकी फाकामस्ती को रंग लाते, हम अब देख रहे हैं।

कुछ लोग इसे चारित्रिक शून्यता कहते हैं। भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, आक्रोश, दिशाहीनता आदि को वे आदर्शविहीनता और चरित्रहास कहकर छुट्टी पा लेते हैं, लेकिन आदर्शविहीनता और चारित्रिक शून्य रोग के लक्षण हैं, स्वयं रोग नहीं।..... मुझे कोई समझाए कि चरित्र, क्या शून्य में बन जाता है? आदर्श क्या हवा में खड़े हो जाते हैं? क्या उनका ज़िन्दगी की रोजमर्रा की जरूरतों और दबावों से कुछ भी लेना देना नहीं हैं? चरित्र और नैतिकता रगों-रेशों से ज़िन्दगी के 'अर्थ' और 'आर्थिकता' से जुड़े हैं। आर्थिक आधार हटाकर चरित्रबल और नैतिकता नहीं पाये जा सकते। भूखे, असन्तुष्ट और विपन्न को आदर्श पढ़ाना आदर्श का ही नहीं, उसका भी अपमान है। ....

गांधी का चरखा, खादी और ग्रामोद्योग न्यूनतम आर्थिक आधार देने की वह कोशिश थी जिसके चलते हमारे पाँव के नीचे से जमीन न सरकती और हम आधुनिकीकरण के 'टेक ऑफ' की तैयारी कर सकते थे! लेकिन-औद्योगिकीकरण की दौड़ में देखते-देखते यूरोप और अमरीका के समकक्ष आने की बेताबी में जो क़र्ज की मय हमने पी, उसकी फाकामस्ती को रंग लाते, हम अब देख रहे हैं। उससे हमारा आर्थिक ढाँचा ही नहीं चरमराया वरन् एक ऐसी व्यवस्था के हाथ निरन्तर मजबूत हुए हैं जिसके रहते हुए न तो स्वतंत्रता, प्रजातंत्र का अर्थ है और न समानता और बन्धुत्व का।

उसने देश की योजना और निर्माण में युवावर्ग के पार्टीसिपेशन की सम्भावना भी निरन्तर धुँधली की है। युवा-पीढ़ी का असन्तोष और विक्षोभ इसी आर्थिक असुरक्षा सामजिक असन्तुलन और सांस्कृतिक संकट का परिणाम है और वह जो अचानक हिंसात्मक और आक्रामक हो जाता है उसका कारण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह नहीं है कि वह दिशाहीन विद्रोह और अराजकता को पसन्द करता है, उसका मूल कारण यह है कि इन वर्षों में देश का सारा नेतृत्व निरन्तर बेअसर और हास्यास्पद होता गया है। उसने नेतृत्व की साधारण-से -साधारण और न्यूनतम जरूरतों और शर्तो को भी पूरा नहीं किया है। न उसे भारतीय जनमानस की सही समझ है, न देश या राष्ट्र की चिन्ता। वह तो जातियों, प्रान्तों, भाषाओं और स्थानीय स्वार्थो में मग्न है। गांधीवाद का तर्जुमा उसने अवसरवाद किया है और अहिंसा को अपनी निष्क्रियता का कवच बना लिया है।....

आज गांधी की आवाज भटक रही है - '' यदि गांधीवाद का मतलब कोई भ्रम है तो उसे खत्म हो जाने दो। यदि गांधीवाद साम्प्रदायिकता का दूसरा नाम है तो वह समाप्त हो जाने योग्य है... कोई भी यह न कहे कि वह गांधी का अनुयायी है।'' यह आवाज किसी चिड़चिड़ाहट से नहीं निकली थी! बल्कि एक चुनौती और चेतावनी थी। लुई फिशर ने ''जीसस की शिक्षाओं को पाल में बदल दिया'' के सन्दर्भ में जब अपनी शंका गांधी के सामने रखी थी - ''क्या आपके बाद भी लोग यही करेंगे ?'' तब गांधी ने कहा था- '' इस सम्भावना का ज़िक्र करने वाले आप पहले व्यक्ति नहीं हैं। .... मैं इनके पार देख सकता हूँ। हाँ, मैं जानता हूँ, उनकी कोशिश यही होगी।'' मैं गांधी के इस स्वर को आगे बढ़ाने की अनुमति चाहता हूँ- हाँ बापू तुम्हारे अनुयायियों ने तुम्हारे सिद्धांतों को बदल दिया है, पूरी तरह बदल दिया है। आज गांधी मजबूरी है और विद्यार्थी गांधी डिवीजन के पास होकर ही अपनी बला टाल लेता है।

''नैतिक अशुद्धि का विषाक्त वाष्प आज हमारे स्कूली बच्चों में फैल चुका है और एक गुप्त महामारी की तरह उनमें तबाही बरपा कर रहा है।'' — यह बात गांधी ने सन् 29 में कहीं थी। वह कल जितनी सच थी, उतनी ही आज भी सही है, बल्कि ज्यादा सही है। लेकिन इसके लिए जिम्मेदार कौन है ? क्या अब भी बताने की जरूरत है ?... मेरी मंशा भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, दिशाहीनता आदि का औचित्य सिद्ध करना नहीं है, वरन् उसके कारणों का विश्लेषण है और जब हम कारणों और स्थितियों का जायजा लेते हैं तो युवावर्ग का असन्तोष और विक्षोभ, आक्रोश और विद्रोह पर तार्किक परिणति लगता है। आखिर गांधी ने ही तो कहा था, ''न्यायोचित उद्देश्य के लिए विद्रोह कर्तव्य है और किए गए अन्याय के अनुपात पर ही प्रतिरोध की मात्रा निर्भर करती है''-जरूरत उस असन्तोष और विक्षोभ, आक्रोश और विद्रोह को एक सार्थक दिशा देने की है, सत्याग्रह और दुराग्रह में फर्क करने की हैं। अहिंसा, निष्क्रियता और कमजोरी की ढाल नहीं, वह शक्तिशाली का अस्त्र हैं। वह एक सैद्धान्तिक विचार ही नहीं, एक व्यावहारिक कार्यक्रम भी है- वह युद्ध का नैतिक स्थानापन्न है और उसकी कीमत पर तो गांधी ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता भी गवारा नहीं की। कायरता और हिंसा में यदि चुनाव करना हो तो गांधी ने हिंसा के चुनाव की आवाज दी थी- यह गांधी का क्रान्ति दर्शन है। यह उनकी बुनियादी क्रान्ति है। और क्रान्ति, लगातार और संवरित प्रयासों की श्रृंखला है। वह किसी एक बिन्दु पर रुक नहीं जाती।

पहले इन अस्त्रों से जो कामायाबी हासिल हुई उसका एक कारण यह भी था कि दुश्मन आमने-सामने था, लुटेरा जरूर था, मगर सभ्य था। आज जिस दुश्मन से टक्कर है वह ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में छिपा बैठा है जो असभ्य भी है और बर्बर भी, और फिर वह अदृश्य है। उसकी कोशिश है कि विद्रोह अपनी सार्थक दिशा से लगातार भटकता रहे। अमूर्त बहस में बदलकर फैशन बन जाय, अधिक से अधिक साम्प्रदायिक चेहरा लेकर आत्मघाती रवैया अख़्तियार कर ले या फिर तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों में बिखर जाए।

काश! गांधी के क्रान्ति-दर्शन की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल व्याख्या की उसे आज का सन्दर्भ देने वाला कोई होता। ... मगर दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। गांधी की हत्या के बाद हम लगातार गांधीवाद की हत्या में लगे हैं।....

मो. 9425019863

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी व टैगोर की विरासत और लोकतन्त्र

नंदकिशोर आचार्य
(सुप्रसिद्ध आलोचक, कवि और विचारक)

पहला सवाल मेरे मन में उठता है कि 'विरासत' के क्या मायने हैं? खासतौर से गांधी जैसे लोगों की विरासत के क्या मायने हैं? बहुत से लोगों ने, स्वयं गांधी ने ही कहा था कि "नेहरू उत्तराधिकारी होंगे, इसका अर्थ मैं कभी नहीं समझ पाया कि इसका अर्थ यह था कि वह प्रधानमंत्री होंगे। क्योंकि देश उनकी प्रॉपर्टी नहीं थी कि वह अपने उत्तराधिकार में नेहरू को सौंप जाते। गांधी जो किसी राजसत्ता से अपने को नहीं जोड़े रखना चाहते थे। उनकी विरासत क्या हो सकती थी? एक फकीर की विरासत क्या होती है, एक क्रान्तिकारी की विरासत क्या होती है, एक विद्रोही की विरासत क्या होती है - इसी अर्थ में हमें गांधी की विरासत को समझना चाहिए और इसका तात्पर्य यह होता है कि जो काम वह करने जा रहे थे, कर रहे थे, करना चाहते थे, जो अधूरा छूट गया, उसे पूरा करना। उनकी तरफ से विरासत है कि क्या हम उस अधूरे छूट गये काम को पूरा कर सकेंगे? तो विरासत में उन्होंने एक अधूरा छूटा काम हमको दिया। अगर हम यह मानते हैं कि - हाँ... वह हमारे पूर्वज हैं और हमें कुछ विरासत में उन्होंने दिया है तो वो अधूरा छूटा हुआ काम है जो हमें करना था।

लोकतंत्र के सन्दर्भ में अगर हम देखें, तो अधूरा छूटा हुआ काम क्या था? लोकतंत्र स्थापित हो गया, कह सकते हैं; लेकिन क्या ये वही लोकतंत्र है जो गांधी स्थापित करना चाहते थे? क्या ये वही लोकतंत्र है जिसको वह सौंपना चाहते थे हमें? क्योंकि यह लोकतंत्र उनके लिए वास्तविक अर्थों में लोकतंत्र नहीं था। वह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसके माध्यम से हम वास्तविक लोकतंत्र तक आसानी से थोड़ा पहुँच सकते थे। एक विदेशी राज्य के मुकाबले में एक स्वदेशी राज्य और उसकी प्रक्रियाओं के माध्यम से हम धीमे-धीमे उस लोकतंत्र तक पहुँच सकते थे, जो गांधी चाहते थे।

गांधी ने उस लोकतंत्र को नाम दिया 'स्वराज्य'। स्वराज्य का तात्पर्य कोई अंग्रेज़ी शासन से मुक्ति मात्र नहीं था। वो एक पहला कदम था उस स्वराज्य की ओर जो गांधी चाहते थे। इस स्वराज्य की वह परिभाषा भी करते हैं, जिससे आपके सामने स्पष्ट होगा कि जिसे हम लोकतंत्र मान रहे हैं उसे वह लोकतंत्र क्यों नहीं मान रहे थे? स्वराज्य के संदर्भ में उन्हीं का कथन है- एक तरह से स्वराज का अर्थ है सरकार के नियंत्रण से मुक्ति और सरकार चाहे विदेशी हो अथवा स्वदेशी। यानी एक तरह से हम यह कह सकते हैं कि वह उन विचारकों की प्रक्रिया में, उस पंक्ति में चले जाते हैं, उनकी प्रक्रिया को अपनाते हैं जिन्हें सामान्य तौर पर दार्शनिक- मैं कभी अराजकतावादी शब्द इस्तेमाल नहीं करता- कभी-कभी आदत से हो जाता है पर मुझे ठीक शब्द

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लगता है अराज्यवादी, एक प्रकार से जिसे हम प्रबुद्ध अराज्यवादी कहते हैं, इनलाइटेनमेंट द आरटेस्ट अंग्रेज़ी में इसे कहा जाता है, वह उस पंक्ति में जुड़ते हैं।

एक तरह से एक ऐसी व्यवस्था, अहिंसक व्यवस्था, की वह कल्पना करते हैं। समाज में व्यवस्था की और उसे वो स्वराज्य का नाम देते हैं जिसमें सरकार का हस्तक्षेप कम से कम हो। न हो तो और अच्छा। पर शायद वो सम्भव नहीं रहता। इसलिए उन्होंने कहा कि जितनी दूर हम उसमें जा सकें, उतनी दूर जाने की कोशिश करें और इस काम के लिए उन्होंने जिस विकेन्द्रीकरण की बात की थी, वो विकेन्द्रीकरण नहीं है जो आज हम देख रहे हैं। अभी विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य है राज्य के द्वारा कुछ काम अन्य संस्थाओं को सौंप दिए जाएँ जो उनके निर्देशन में, उनके नियंत्रण में ही काम करें। वो वास्तविक अर्थ में विकेन्द्रीकरण नहीं है। आप फंगशन्स का कुछ हद तक विकेन्द्रीकरण कह सकते हैं, जिसका नियंत्रण केन्द्रीय है, लेकिन वास्तविक विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य होता है- प्रभुसत्ता का विकेन्द्रीकरण। राज्य की जो सॉवूरन्टि है उसको डिसेण्ट्रलाइज्ड करना। क्योंकि सॉवूरन्टि ही वो चीज है जो राज्य को हिंसक बनाती है और इसीलिए गांधी कहते भी हैं- ''स्टेट इज़ एन ऑर्गेनाइज्ड वॉयलेंस''- राज्य एक संगठित हिंसा का नाम है। क्योंकि अन्ततः उसकी प्रभुसत्ता हिंसा पर टिकी होती है, चाहे वह हिंसा हमारे द्वारा समर्थित हिंसा भी क्यों न हो। जैसा कि हम अक्सर मान लेते हैं और इसीलिए संसदीय प्रणाली को, संसदीय लोकतंत्र को वो वास्तविक अहिंसक लोकतंत्र नहीं मानते।

संसद के बारे में, ब्रिटिश संसद के सन्दर्भ में जिन शब्दों का इस्तेमाल उन्होंने किया है, उसको यहाँ दोहराया नहीं जा सकता। आप सब लोग जानते हैं लेकिन साथ ही वह यह भी मानते हैं कि किसी भी प्रकार का केन्द्रीयकरण अहिंसक संरचना के साथ में मेल नहीं खाता है और इसलिए यह भी कहते हैं कि जो लोकतांत्रिक राज्य हैं यानी संसदीय लोकतंत्र को मानने वाले जो राज्य हैं, उन्हें या तो खुल्लमखुल्ला सर्वसत्तात्मक हो जाना होगा और या फिर उनको पूरा अहिंसक हो जाना होगा। ये बीच का रास्ता नहीं चल सकता है, जिसके अन्तर्गत हम यह मानते हैं कि औपचारिक रूप से हम लोकतांत्रिक हैं लेकिन सारी सत्ता एक जगह पर केन्द्रित हो जाती है। जहाँ सत्ता केन्द्रित हो जाती है वहाँ लोकतंत्र नहीं रहता।

लेनिन ने जब नारा दिया था सेण्ट्रलाइज्ड डेमोक्रेसी का, तो खुद यूरोप के ही विचारक हँसे थे कि ये कैसे हो सकता है, डेमोक्रेसी सेण्ट्रलाइज्ड कैसे हो सकती है? लेकिन हम देखते हैं कि धीमे-धीमे सभी देशों में लोकतंत्र के नाम पर एक केन्द्रीयकरण विकसित हुआ है और ये केन्द्रीयकरण। हमारे यहाँ भी विकसित हुआ और हो रहा है। तो राज्य की शक्ति में निरन्तर वृद्धि होना लोकतंत्र के हित में नहीं है। ये गांधी हमें स्पष्ट रूप से समझाते हैं। अब वो किस तरह उसकी कल्पना करते हैं, क्यूश्चन सर्किल, पंचायत वगैरह, उसके बहुत डिटेल्स में अभी जाने का अवसर भी नहीं है। उसके साथ जाने की जरूरत नहीं है।

लेकिन मुख्य बात इस चीज को समझने की है और यह वो चीज है जो मैंने आपसे शुरू में कहा कि यूरोप के बहुत सारे जो अराज्यवादी विचारक हैं वो भी मानते हैं। आप रूसो का नाम ले सकते हैं, थोरो का नाम ले सकते हैं, ... किंग का नाम ले सकते हैं, स्वयं मार्क्स का नाम ले सकते हैं अगर चाहें तो, जो ये कहते हैं- ''ऑल पावर टु द कम्यून्स''- सारी शक्ति कम्यून्स में होनी चाहिए, ये मार्क्स का ही स्लोगन है। कम्यून्स में नहीं होकर के पार्टी में होगी, वह एक अलग बात है। कैसे हो गयी वह भी एक अलग बात है। उसके विश्लेषण की और उसको समझने की आवश्यकता है कि कैसे पार्टी जब अपने को मान लेती है कि मैं ही सारे मजदूर वर्ग की प्रतिनिधि हूँ तो वहाँ कम्यून नहीं रहता है, पार्टी हो जाती है और एक प्रकार का सेण्ट्रलाइज़ेशन! और 'पार्टी में होता क्या है? पार्टी के नाम पर हम कह सकते हैं एक सेण्ट्रल कमेटी होती है, उस सेण्ट्रल कमेटी में एक सेक्रेटरी जनरल होता है और वो सेक्रेटरी जनरल सब कुछ है। इसी कारण आप देखेंगे कि चाहे पहले लेनिन रहे हों, उसके बाद स्टालिन रहे हों, चाहे ख्रुशचेव रहे हों, एक लम्बी परम्परा हम देखते हैं। इसी सेक्रेटरी जनरल को महत्त्व मिलता है।

मुझे याद है, मैं बच्चा ही था उस समय, शायद नौवीं-दसवीं कक्षा में पढ़ रहा होऊँगा, जब बुल्गेनियन और ख्रुशचेव दोनों भारत आये थे। जब दोनों भारत आये, हम लोग तो प्रधानमंत्री को महत्त्वपूर्ण मानते थे, हमारे यहाँ तो सिस्टम में यही था कि प्रधानमंत्री सबसे महत्त्वपूर्ण है। लेकिन वहाँ मैंने देखा- अख़बारों में जो न्यूज़ वगैरह छपती थी उसमें राज्य की तरफ से जो महत्त्व दिया जा रहा था वो बुल्गेनियन से अधिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुशचेव को दिया जा रहा था, क्योंकि खुशचेव सेक्रेटरी जनरल थे। वास्तव में बड़ा पद तो पार्टियों का सेक्रेटरी जनरल होना था। खैर, बाद में वह प्रधानमंत्री भी हुए।

एक प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि ये सारी सत्ता का एक कमेटी में और उस कमेटी का एक व्यक्ति में केन्द्रित हो जाना। क्योंकि केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति है कि फिर वो निरन्तर बढ़ता चली जाती है। आप अपने देश में भी बहुत से नेताओं के उसमें देख सकते हैं कि कैसे उनमें शक्ति का केन्द्रीयकरण होता चला गया। एक प्रकार से हम यह कहेंगे कि ये एक इस तरह की व्यवस्था थी।

पहली विरासत जो मैं समझता हूँ कि गांधी हमें सौंपते हैं वो है- इस अधूरे छूट गये काम को जिसे वह करना चाहते थे, पूरा करने का प्रयत्न करना। तो स्वराज्य का लक्ष्य हमारी विरासत में था। वो उन्होंने हमें सौंपा जो उनसे अधूरा छूट गया था, लेकिन लगातार जिसे वह प्राप्त करना चाहते थे। हम कहाँ तक उस दिशा में बढ़ पाये हैं, ये तो आपके तय करने की बात है।

दूसरी बात जो महत्त्वपूर्ण है, खासतौर से जब हम टैगोर के सन्दर्भ में उनको देखते हैं, यह उठती है- थोड़ा विवाद था दोनों के बीच में। जैसे कल भी बात हुई थी मित्रता थी, घनिष्ठता थी लेकिन विचार के स्तर पर थोड़ा-सा विवाद था। और विवाद किस बात को लेकर था? मुख्य बात जो थी और मुझे यह कहने की इजाजत दीजिए, कभी-कभी टैगोर ने थोड़ा कठोर व्यंग्य भी उन पर किया है। जब 'असहयोग आन्दोलन' चल रहा था, उसमें विदेशी माल के बहिष्कार की नीति पर हम चल रहे थे उस आन्दोलन में टैगोर उसे पसन्द नहीं कर रहे थे। उनका यह मानना था कि एक प्रकार की संकीर्णता है और पूरे विश्व के विचारों को हमको स्वीकार करना चाहिए बल्कि उनकी तो यहाँ तक मान्यता थी उस काल में, कि विदेशी विचारों को अपनाकर ही हम विकास कर सकते हैं।

जब हिन्दुस्तान लौटे तो उन्होंने कालिदास नाग को एक पत्र लिखा। मुझे आप उस पत्र का एक अंश पढ़ने की इजाजत दीजिए, कि उस पत्र में वो क्या लिखते हैं। उस पत्र में वह लिखते हैं कालिदास नाग को- ''भारत पहुँचने पर मुझे लगा कि गांधी ने भले ही उनके उद्देश्य उच्च रहे हों, अपने महान आदर्श को भारतीय राजनीति के तंग दायरे में सीमित कर दिया है।'' इस पंक्ति पर मैं गौर चाहूँगा- ''मेरा विश्वास रहा है कि देश केवल बाहर से लिये गये विचारों के आधारों पर ऊँचा उठ सकता है किन्तु नेताओं का आग्रह है- नाम नहीं ले रहे हैं यहाँ पर लेकिन स्पष्ट है- कि पहले हमारा आदर्श स्वदेश होना चाहिए, तभी विश्व-बन्धुत्व का आदर्श सिद्ध किया जा सकता है।'' फिर थोड़ा व्यंग्य करते हैं- ''किसी दिन ये विचारक कहने लगेंगे, जबकि बेचारे पाश्चात्य लोगों के लिए पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमती है, ईश्वर के भेजे गये जन-समुदाय के लिए पृथ्वी वासुकि नाग के फन पर स्थित है।''

यह एक व्यंग्य है कि फिर गांधी जैसे लोग ऐसा मानने लग जायेंगे, जो शायद मेरी तरह से अन्यायपूर्ण व्यंग्य है उनके प्रति। क्योंकि विज्ञान की बहुत सारी चीजों को गांधी स्वीकार करते हैं और उनके आधार पर भी अपने हिंसा के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हैं। लेकिन फिर हम देखते हैं कि धीरे-धीरे टैगोर के विचारों में कुछ परिवर्तन होता है।

कई लोग कहते हैं कि गांधी तो राष्ट्रवादी थे और टैगोर मानवतावादी, विश्व-मानवतावादी या अन्तरराष्ट्रीयतावादी, जो भी नाम आप देना चाहें, लेकिन उनके विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन होता है। 1941 में अपने लिखे एक निबन्ध में वह यह बात कहते हैं कि ''पश्चिम ने ही हमारे सामाजिक स्वराज्य का सत्यानाश किया है।''

मेरी तरफ देखिए, पहले तो कह रहे हैं विदेशी विचारों के आधार पर ही हम ऊँचा उठ सकते हैं। पर उसके बाद में वह यह कहते हैं कि पाश्चात्य शासन ने भारत में गाँव-गाँव में व्याप्त सामाजिक स्वराज्य को नष्ट कर दिया। फिर यह कह रहे हैं इसी

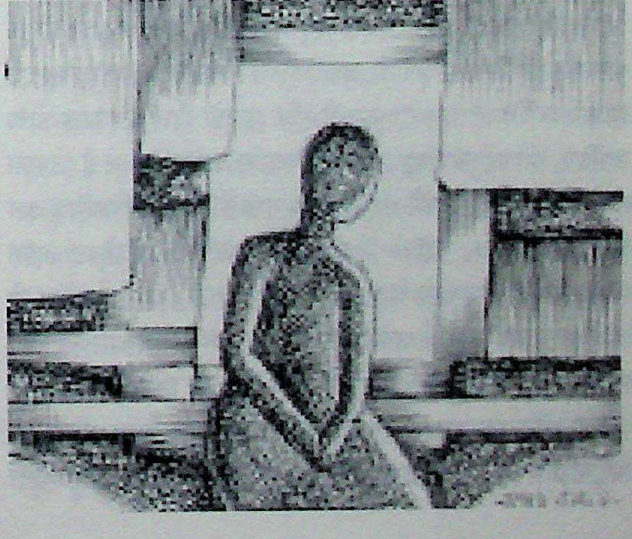

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेख में कि ''यह विदेशी सभ्यता, यदि इसे सभ्यता कहा जाए, हमसे क्या कुछ छीन चुकी है। हम जानते हैं कि पाश्चात्य जातियों को अपनी सभ्यता पर जो गर्व है, उसके प्रति श्रद्धा रखना अब असम्भव हो गया है। यह सभ्यता हमें अपना शक्ति रूप दिखा चुकी है लेकिन मुक्ति-रूप नहीं दिखा सकी। '' मनुष्य का मनुष्य के साथ वह सम्बन्ध जो सबसे अधिक मूल्यवान है, जिसे वास्तव में सभ्यता कहा जा सकता है, यहाँ नहीं मिलता। यही बात तो गांधी कह रहे हैं जिनके लिए सभ्यता का अर्थ ही सदाचार या सदाचरण है और इसी व्याख्यान में टैगोर आगे कहते हैं- '' जीवन के प्रथम भाग में मेरा विश्वास था कि सभ्यता दान ही यूरोप की आन्तरिक सम्पत्ति है- जिसे यूरोपीय साम्राज्यवाद ने व्हाइट मेन्स वर्डन ने कहा था- वही हमारी आन्तरिक सम्पत्ति है।'' अब वह कहते हैं- ''आज जब जीवन से विदा होने का दिन समीप आ रहा है, मेरे इस विश्वास का दिवाला निकल चुका है। अब वह पूर्वी सभ्यता से ही परित्राण की उम्मीद करते हैं।''

यहाँ पूर्वी और पश्चिमी का सवाल नहीं है। इसको भौगोलिक दृष्टि से देखने की जरूरत नहीं है। उनके कैटेगरीज को समझने की आवश्यकता है जिसमें हम उनको लेते हैं। वो यह है कि जिसे हम आधुनिकतावादी सभ्यता कहते हैं, जिसका गांधी जी बहुत अच्छा विश्लेषण 'हिन्दी स्वराज' में करते हैं और भी बहुत से, पश्चिम के भी बहुत से विचारकों ने उस सभ्यता का विश्लेषण किया है और दूसरी तरफ वो सभ्यता है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्ध को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है।

एक प्रकार से जहाँ मनुष्य विकास का अगर आधुनिक भाषा का इस्तेमाल करें तो जहाँ मनुष्य विकास का माध्यम नहीं है बल्कि विकास का लक्ष्य है, कि उसके लिए विकास होना चाहिए, जो संयुक्त राष्ट्र संघ का विकास का अधिकार है, उनका जो घोषणापत्र है, उसमें भी यह कहा गया है कि ''इण्डिविजुअल इज़ दि सब्जेक्ट ऑफ डेवलपमेंट, नॉट दि ऑब्जेक्ट ऑफ डेवलपमेंट।'' उन्होंने ये बड़ी स्पष्ट बात कही। ये एक प्रकार से उसका कर्ता, उसका उपभोक्ता है, वो उसका माध्यम नहीं है, उसके लिए वस्तु नहीं है। एक प्रकार से गांधी इसी बात को कह रहे होते हैं। एक तरह से हम यह कह सकते हैं कि टैगोर और गांधी के बीच में जो दूरी है वो इस व्याख्यान के बाद, यद्यपि टैगोर ज्यादा समय नहीं रहे, पर वो कम होती हुई दिखाई देती है।

अब दूसरा सवाल इस बात का उठता है कि क्या सामाजिक स्वराज्य जिसे टैगोर कहते हैं और गांधी जिसे स्वराज और ग्राम स्वराज्य कहते हैं, उनके बीच क्या कोई तारतम्य है? क्या गांधी के ग्राम स्वराज्य की अवधारणा लगभग उसी व्यवस्था पर केन्द्रित नहीं है जिसे टैगोर ने सामाजिक स्वराज्य कहा है। तो सामाजिक स्वराज्य कहें या ग्राम स्वराज्य कहें या व्यक्ति का स्वराज्य कहें- मूल उद्देश्य है व्यक्ति की स्वतंत्रता को, उसकी सृजनात्मकता को और उसकी भावनाओं को एक नैतिक स्तर देना।

ये जो नैतिक स्तर देने की बात है, इस बात को टैगोर भी मानते हैं कि वो नहीं रही, पाश्चात्य सभ्यता के आक्रमण की वजह से। पाश्चात्य का मतलब जो आधुनिक सभ्यता है उसके आक्रमण की वजह से।

और अगर सामाजिक स्वराज्य या ग्राम स्वराज्य की बात हमको करनी है, मुझे लगता है कि ये दोनों अवधारणाएँ काफी निकट हैं। तो आपको किस तरह की टेक्नोलॉजी चाहिए, यह सवाल भी उठता है। क्या वो टेक्नोलॉजी चाहिए जो केन्द्रीयकरण की ओर ले जाती है या वो टेक्नोलॉजी चाहिए जो अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण की ओर ले जाती है? यह माना जाता है बल्कि आर्ग्यूमेण्ट दिया जाता है अक्सर, कि नहीं-नहीं, प्रोडक्शन बढ़ता है आधुनिक टेक्नोलॉजी के अपनाने से, बढ़ा है। 1950 से लेकर 2000 के बीच में अगर आप देखें, सात गुना प्रोडक्शन बढ़ा है दुनिया का। उसके बाद का मुझे पता नहीं। लेकिन सात गुना प्रोडक्शन बढ़ा है पर समस्याएँ हल नहीं हुई हैं। एक प्रकार से आप यह देखें, लेकिन हो क्या रहा है? जिसे हम एडवांस टेक्नोलॉजी कहते हैं, ख़ासतौर से प्रोडक्शन के क्षेत्र में, वो है क्या और क्यों कैपिटलिज़्म उस टेक्नोलॉजी को अपनाना चाहता है? वो एक ऐसी टेक्नोलॉजी है जिसमें ह्यूमन इण्टरवेंशन कम से कम हो। यानी वो टेक्नोलॉजी सबसे अधिक एडवांस मानी जाती है, सबसे अधिक प्रगतिशील मानी जाती है जिसमें मानवीय हस्तक्षेप कम से कम करना पड़े। यानी ऑटोमेशन अधिक से अधिक हो।

अब अगर ऑटोमेशन अधिक से अधिक होगा और मानवीय हस्तक्षेप की जरूरत नहीं पड़ेगी तो आप रोजगार कहाँ से देंगे? और अगर रोजगार नहीं है- विचार करिये- जो माल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रोड्यूस हो रहा है, जो उत्पादन हो रहा है, ये बढ़ा उत्पादन, इसका उपभोक्ता, इसका खरीदार कौन होगा ? अगर उसके पास जॉब ही नहीं है, उसके पास काम ही नहीं है, उसके पास रोजगार ही नहीं है तो उसकी क्रय-शक्ति क्या रहेगी ? तब उस बीच में कभी-कभी सरकारें, दुनियाभर की सरकारें, वेलफेयर के काम करने की कोशिश करती हैं- पैसा बाज़ार में फेंकने की। अभी हमारे यहाँ भी हो रहा है। पैसा बाज़ार में फेंकने की कोशिश करती है जिससे कि लोग कुछ खरीद सकें, ताकि वो जो कम्पनियाँ माल बना रही हैं वो थोड़ा बिक सके, नहीं तो कौलेप्स हो जाएँगी।

और एक हम बड़े विचित्र ढंग के शिकार होते हैं वह है- जीडीपी का भ्रम। इस देश की जीडीपी अभी इतनी कम हो रही है, इतनी ज्यादा हो रही है, 0.1 प्रतिशत बढ़ गयी है, घट गयी है, इस पर हल्ला मचता रहता है। जीडीपी के बढ़ने का तात्पर्य लोगों के कष्टों का दूर होना नहीं होता, इस बात को हमें ठीक तरह से समझना चाहिए। उत्पादन तो बढ़ जाता है लेकिन उसके लाभ सब तक पहुँच जाएँ, ये अनिवार्य नहीं होता। उसके लिए आप यह देखेंगे कि अगर ये जीडीपी निरन्तर बढ़ती रहती है और लोगों के पास जॉब नहीं रहता है तो ये कम्पनियाँ, ये प्रोडक्शन सिस्टम, बल्कि यह कहना चाहिए कि पूरी इकॉनॉमी कब तक चलेगी ? दो बड़ी समस्याएँ हैं, जिनका हल निकालने की पिछले बीस साल से बराबर कोशिश हो रही है। दुनियाभर के अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री आये दिन कभी जेनेरियो में, कभी कहीं कहते रहते हैं और उनसे हल निकलता नजर नहीं आता। जो हल निकलता है वह बहुत तात्कालिक यानी लक्षण को दबाने की कोशिश होती है, बीमारी को ठीक करने की कोशिश नहीं होती। दूसरी समस्या जो मैं आपसे कह रहा हूँ वो है- इकॉलॉजिकल डिसबैलेन्स की। पहली समस्या अनएम्पलॉयमेंट की जो इस टेक्नोलॉजी का परिणाम है। इकॉलॉजिकल डिसबैलेन्स, जो पर्यावरण पारिस्थितिकी का असन्तुलन हो रहा है, ये दूसरी बड़ी समस्या है, जिसकी तरफ सबका ध्यान है, लेकिन उसका कोई समाधान नहीं दिखाई देता है। इसलिए नहीं दिखाई देता है कि उसके समाधान के लिए आपको एक वैकल्पिक आर्थिक व्यवस्था को विकसित करने की जरूरत पड़ती है और अगर आप वो नहीं करते हैं तो उसका समाधान नहीं निकल सकता है। पीछे आप देखें, हर पाँच-दस साल में एक संकट पैदा होता है, कुछ तात्कालिक रूप से उसको हल करने की कोशिश की जाती है, पाँच-दस साल में फिर पैदा हो जाता है। ये प्रक्रिया इसलिए चलती है क्योंकि आप केवल लक्षण को दबाते हैं, उस बीमारी के कारणों को समझकर, कारणों को मिटाने की कोशिश नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि लगातार क्राइम बढ़ता है। मुझे कई बार लगता है जो लिंचिंग वगैरह हो रही है। ये ठीक है कि इसके पीछे साम्प्रदायिक उत्तेजना भी काम करती है, लेकिन इतनी ही महत्त्वपूर्ण है उन लोगों की बेरोजगारी। अगर आप गौर करेंगे, कभी इस बात का सर्वे करेंगे, जो लोग ये लिंचिंग कर रहे हैं, जो भीड़ इकट्ठा हो रही है वो किन लोगों की है ? उनमें से ज्यादातर लोग आपको बेरोजगार मिलेंगे। क्योंकि जो काम में लगा हुआ है उसको फुर्सत नहीं है। वह अपनी दुकान चलायेगा, वह अपनी नौकरी पर जायेगा कि वो लिंचिंग करता फिरेगा। इस बात को समझिये कि यह एक आसान तरीका है, जिससे लोगों की भावनाओं को उत्तेजित करके ये करवाते रहिये, जिससे कि लोगों का ध्यान अर्थव्यवस्था को ठीक करने की तरफ न जाए या वो मूल समस्या न समझें। पूरी दुनिया में अभी आप देखेंगे, बड़े-बड़े देशों की जो जीडीपी

अब अगर ऑटोमेशन अधिक से अधिक होगा और मानवीय हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं पड़ेगी तो आप रोजगार कहाँ से देंगे ? और अगर रोजगार नहीं है- विचार करिये जो माल प्रोड्यूस हो रहा है, जो उत्पादन हो रहा है, ये बढ़ा उत्पादन, इसका उपभोक्ता, इसका खरीदार कौन होगा ? अगर उसके पास जॉब ही नहीं है, उसके पास काम ही नहीं है, उसके पास रोजगार ही नहीं है तो उसकी क्रय-शक्ति क्या रहेगी ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बढ़ी हुई है, उसमें सर्वाधिक भूमिका किस इण्डस्ट्रीज की है? दो इण्डस्ट्रीज बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। एक है वेपनरी, जो बहुत महत्त्वपूर्ण रोल प्ले कर रही है बड़े राष्ट्रों की जीडीपी में और दूसरा है कॉस्मेटिक्स, जिनकी हमें वास्तव में जरूरत नहीं है और फिर उसके विज्ञापन। वाहनों वगैरह को भी उसी में शामिल करता हूँ क्योंकि वो भी बिना जरूरत के ही अधिकांश इस्तेमाल किये जाते हैं। एक प्रकार से ये कॉस्मेटिक्स और वेपनरी दोनों की ही मनुष्य के जीवन में कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन एक भय का वातावरण पैदा करिये, एक डर का वातावरण पैदा करिये।

कभी-कभी मुझे लगता है, मैं कई मित्रों से पूछ चुका हूँ कि ये जो टेरेरिस्ट लोगों को, आईएस को या जो-जो भी टेरेरिस्ट लोग हैं, इनके पास कोई वेपनरी की फैक्टरी तो है नहीं। तो इनको कौन देता है? उनको कहाँ से बड़े-बड़े शस्त्र, मिसाइल्स मिल जाती हैं? उनके पास कोई फैक्टरी नहीं है। ये जो मिसाइल्स इनको मिल जाती हैं, ये देने वाले लोग कौन हैं? जो बनाते हैं वो ही तो दे रहे होंगे न! आपको-मुझे अगर छोटे-छोटे तमंचे की भी जरूरत हो तो हमको एक लम्बी-चौड़ी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है और तब जाकर मिलता है कि नहीं मिलता है, पता नहीं। लेकिन उनको मिसाइल्स मिल रही हैं। आप जानते हैं कि कोई देश किसी दूसरे देश से अगर मिलिट्री वेपन लेता है तो उसमें उस देश की सरकार बीच में होती है। तो ये कैसे हो रहा है? ये सारी चीजें ऐसी हैं जो एक प्रकार से हमें सोचने की हैं।

ये सारा जो औद्योगिकीकरण है या टेक्नोलॉजी है, यह अच्छी भी हो सकती है। जो हर व्यक्ति के लिए उपलब्ध हो, वो कुछ उत्पादन अपना कर सके, अपना काम चला सके। लेकिन अनिवार्यता जो उस केन्द्रीयकरण की ओर ले जाने वाली टेक्नोलॉजी है वो यही नतीजे पैदा करेगी। वहाँ सत्ता का भी केन्द्रीयकरण होगा और अर्थसत्ता का भी केन्द्रीयकरण होगा और मनुष्य के जीवन के साथ में जो कुछ हो रहा है वो हम देख रहे हैं।

गांधी इसका एक विकल्प प्रस्तुत करते हैं जिसे दुर्भाग्य से माना गया कि एक संकीर्ण राष्ट्रवाद है, वो विकल्प है स्वदेशी का। 'स्वदेशी' का अर्थ गांधी जी के लिए भारत में बनी हुई चीज नहीं था। स्वदेशी का मूल अर्थ था- स्थानीय उत्पादन, स्थानीय जरूरतों को स्थानीय संसाधनों के द्वारा किये गये उत्पादनों से पूर्ति करना। ये स्वदेशी का छोटे में तात्पर्य है, लेकिन ये हम नहीं करना चाहते। और टैगोर जो बात कर रहे हैं वो भी लगभग ऐसी ही बात है। इसके बिना स्वराज्य कायम नहीं हो सकता है। दूसरा, जो गांधी की विरासत है इस पूरे सन्दर्भ में वो है स्वदेशी।

तीसरी एक और बात मैं यह कहना चाहूँगा जो बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है वो है अन्याय के सम्मुख सत्याग्रह। जहाँ भी कोई अन्याय होता हुआ दिखाई देता है, चाहे वो राज्य के द्वारा किया जा रहा हो, चाहे वो निजी संस्थाओं के द्वारा किया जा रहा हो, चाहे किसी के भी द्वारा किया जा रहा हो- अन्याय के विरुद्ध खड़ा होना ही गांधी का मैसेज है। गांधी का बड़ा प्रसिद्ध वाक्य है- 'माय लाइफ इज़ माय मैसेज'। 'माय लाइफ इज़ माय मैसेज' का अर्थ क्या है? आश्रम में रहना, वो लाइफ है गांधी की, वो भी है। सादगी से रहना, वो लाइफ है गांधी की, वो भी है। लेकिन हम भूल जाते हैं कि अन्याय के विरुद्ध विद्रोह ही गांधी की लाइफ का मर्म है जहाँ कहीं आप देखेंगे वो अन्याय होते हुए देखते हैं या कहीं अनुचित होते हुए देखते हैं, असत्य होते हुए देखते हैं- यह कहना चाहिए- उनके सन्दर्भ में शायद ज्यादा सही शब्द होगा- वहाँ उसका प्रतिरोध करना सत्य के द्वारा, यही सत्याग्रह है। तो जहाँ भी लोकतांत्रिक अधिकारों पर, जिसका अर्थ है कि जो मनुष्य को मनुष्य के रूप में जो अधिकार मिले हुए हैं, मनुष्य की गरिमा का, मनुष्य की स्वतंत्रता का, मनुष्य की समानता का, जिसको ह्यूमन राइट्स वाले भी मानते हैं। इसलिए आप कह सकते हैं गांधी पुराने होंगे, लेकिन ह्यूमन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राइट्स तो एकदम आधुनिक कॉन्सेप्ट है, उसके आधार पर भी आप देखें। जहाँ कहीं भी इसका अतिक्रमण हो रहा हो, चाहे वो सामाजिक स्तर पर हो रहा हो, हमारी समाज-व्यवस्था में हो रहा हो, राजनैतिक स्तर पर हो रहा हो, आर्थिक स्तर पर हो रहा हो, अन्तर्वैयक्तिक स्तर पर हो रहा हो, पति-पत्नी के बीच हो रहा हो, बच्चों के साथ हो रहा हो। जहाँ भी अन्याय होता हुआ दिखाई दे, गांधी उसके खिलाफ अपनी आवाज उठाने से कभी नहीं चूकते हैं। वो यह जरूर मानते हैं कि हर छोटी-मोटी बात पर कोई सत्याग्रह नहीं किया जा सकता है, लेकिन इस बात को समझ लेना जरूरी है कि अन्याय को निरन्तर बर्दाश्त करते रहने की बात गांधी कभी नहीं करते हैं। तीसरा, मैं समझता हूँ जो पॉजिटिव लैगेसी उनकी तरफ से है, वो सत्याग्रह है और उस प्रतिरोध में उनका रचनात्मक काम भी शामिल है। खाली प्रतिरोध ही नहीं करेंगे, उसके बदले एक विकल्प भी देने की कोशिश करेंगे।

एक प्रकार से ये तीन मुख्य मुद्दे हैं। और बहुत-से हो सकते हैं लेकिन ये तीन मुख्य मुद्दे हैं जो मुझे लगता है कि गांधी की विरासत है और टैगोर की भी है। शुरुआती टैगोर को अगर हम छोड़ दें, बाद में टैगोर और गांधी के बीच जो दूरी मिटती है, उनकी भी विरासत है। हमें देखना केवल यह है कि क्या हम वास्तव में इस विरासत के काबिल उत्तराधिकारी हैं, होना चाहते हैं, होने को तैयार हैं। क्योंकि गांधी जो हमें कह रहे हैं, वो आपको विरासत में अधिकार नहीं दे रहे हैं, दूसरों के अधिकारों को बचाने के लिए आपका कर्तव्य क्या है ये दे रहे हैं। भजन है- 'पीर पराई जाने रे', वो गांधी की पीर है। गांधी का पराया कोई है नहीं। 'आत्म' और 'पर' में वहाँ कोई भेद नहीं है। सत्याग्रह का भी मूल इसी चीज में है।

कई बार हमारे मित्र उनको दबाव मान लेते हैं कि उसमें एक प्रकार की हिंसा हो जाती है। मैं मानता हूँ कि वो आत्म के ही दो रूप हैं। इसलिए अगर आत्म का एक रूप कुछ गलत कर रहा है तो उसे समझाना, उसका हृदय परिवर्तन करना

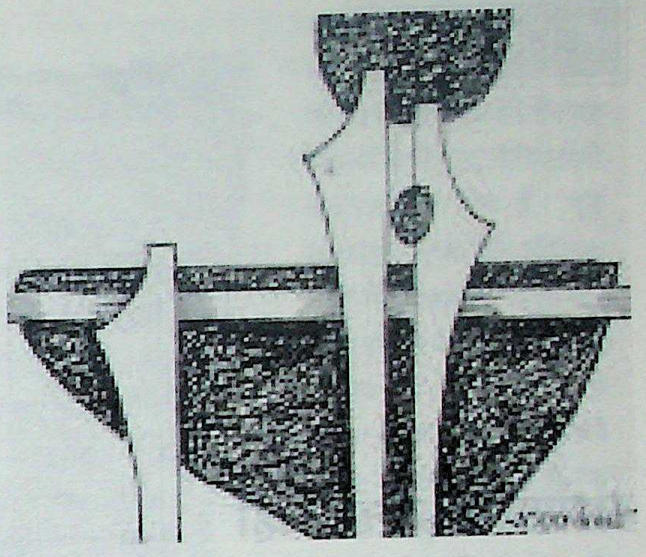

मेरा कर्तव्य है। इसलिए गांधी हमें कुछ कर्तव्य सौंपते हैं- अन्य के अधिकार को बचाने के लिए। कर्तव्य का तात्पर्य यह होता है- दूसरे के अधिकार की सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील रहना। वही कर्तव्य है। मेरा जो कर्तव्य है, दूसरे का मुझ पर अधिकार है। कर्तव्य और अधिकार में एक बुनियादी फर्क़ हमें समझ लेना चाहिए कि अधिकार आप चाहें तो छोड़ सकते हैं पर कर्तव्य आप छोड़ नहीं सकते हैं, आप उससे बँधे हैं। मैं चाहूँ तो अपने पिता की विरासत छोड़ सकता हूँ कि नहीं मुझे ये मकान नहीं चाहिए, नहीं मुझे उनका पैसा नहीं चाहिए लेकिन बीमारी में उनकी सेवा करने का जो मेरा कर्तव्य है, उसे मैं नहीं छोड़ सकता हूँ। ये हक़ मुझे नहीं है किसी भी स्थिति में। तो कर्तव्य कभी छोड़ा नहीं जा सकता है। अब आप तय करिये कि आपका कर्तव्य क्या है और क्या आप उसे छोड़ना चाहते हैं?

(विश्व रंग 2019 के दौरान भोपाल में दिया हुआ वक्तव्य)

मो. 9413381045

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अर्थशास्त्र अनर्थ नहीं

कनक तिवारी
(लब्धप्रतिष्ठ गांधीवादी चिंतक व लेखक)

गांधी ने खुद को समाजवादी घोषित किया था। विरोधाभास है कि फिर भी गांधी मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे। उनका कहना था कि अमीर अपनी निजी संपत्तियों को देश की समझकर खुद को उसका ट्रस्टी समझें। गांधी पूँजीवाद तथा निजीकरण के अंध-समर्थक नहीं थे। उनके विचार दर्शन में बड़ी सामाजिक आवश्यकताओं के सिलसिले में कई सेवाओं के राष्ट्रीयकरण का आग्रह था। अपनी क्लासिक कृति 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने शिक्षा, अस्पताल, न्यायालय, संसद और मंत्रिपरिषद आदि को सीधे जनता के प्रति प्रतिबद्ध रहने की जरूरत बताई थी। वे देसी उद्योगपतियों के मुकाबले ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कुटीर उद्योगों को प्राथमिकता देने के हिमायती थे। विदशी उद्योगपतियों के मुकाबले उन्हें देसी उद्योगपति अनुकूल थे।

कांग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है? इस सवाल का जवाब 18 सितम्बर, 1931 को ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने दे दिया था। लंदन में फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी में अपने भाषण के दौरान उन्होंने कहा था- ''कांग्रेस मूलत: भारत के सात लाख गाँवों में बसे मूक, अधभूखे करोड़ों लागों का प्रतिनिधित्व करती है-चाहे वे तथाकथित ब्रिटिश भारत या भारतीय भारत के हों। कांग्रेस यह मानती है कि उन्हीं हितों की सुरक्षा की जानी चाहिए जो इन करोड़ों मूक लोगों के हितों का साधन करते हैं। 1931 में लन्दन में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गांधी ने यहाँ तक कह दिया था, ''असल में कांग्रेस भारत के विशाल भूखंड में फैले हुए करोड़ों ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें पेट भर रोटी नहीं मिलती।.....कांग्रेस उन्हीं वर्गों के हितों की रक्षा करेगी जिनके हित में इन करोड़ों का हित है। कई बार कई हितों में टकराव देखने में आता है। अगर सचमुच टकराव हुआ तो मुझे कांग्रेस की ओर से यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी कि वह इन करोड़ों लोगों के हितों की खातिर बाकी सभी हितों को कुर्बान कर देगी।'' 1931 में सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में कांग्रेस के ऐतिहासिक कराची अधिवेशन में मूल अधिकारों के बारे में वह प्रसिद्ध प्रस्ताव पारित किया गया जिसे खुद महात्मा गांधी ने प्रस्तुत किया था। यह एक तरह से कांग्रेस की मूल-नीति की घोषणा थी और समाजवाद की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। प्रस्ताव में मांग की गई थी कि स्वराज्य मिलने के बाद देश का जो संविधान बनाया जाए, उसमें कुछ मूल अधिकार अवश्य निहित हों, जैसे अभिव्यक्ति, प्रेस और सम्मेलन करने की स्वतंत्रताएँ, नि:शुल्क प्राइमरी शिक्षा, मजदूरों का शोषण से छुटकारा, भूमि सुधार, महत्त्वपूर्ण उद्योगों, सेवाओं, खानों, रेलों, जलमार्गों, जहाजरानी आदि को राज्य के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नियंत्रण में लाना वगैरह।

समाजवाद की झिल-मिलाती भावना को अगस्त, 1942 के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव में अभिव्यक्ति मिली जिसमें साफ-साफ कहा गया था कि स्वतंत्र भारत में शासन प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसमें "सारे अधिकार मिल मजदूरों और खेतों में काम करने वाले किसानों के पास हों।" ऐसे ही एक सवाल को लेकर गांधी ने बहुत पहले कहा था, "सम्भव है यह (कांग्रेस) हमेशा अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँची हो। मुझे ऐसे किसी भी मानवीय संगठन की जानकारी नहीं है जो अपने लक्ष्य तक पहुँचा हो। मेरे ख़्याल में कांग्रेस अक्सर ही असफल रही है। यह उसके आलोचकों की जानकारी में ज्यादा ही बार नाकामयाब हुई। लेकिन इसके कटुतम आलोचक को मानना पड़ेगा, जैसा कि माना भी गया है, कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दिन प्रतिदिन बढ़ने वाली संस्था है। इसका संदेश भारत के दूरस्थ गाँवों में पहुँचता रहता है। अवसर देने पर कांग्रेस ने उन सभी लागों पर अपना प्रभाव दिखाया जो कि भारत के सात लाख गाँवों में बसते हैं।'

गांधी पूँजीवाद को औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का समर्थक और पिछलग्गू मानते हैं। लगभग ऐसे ही कथन तो कार्ल मार्क्स और लेनिन के भी हैं। गांधी पूँजीवाद को इस आधार पर त्यज्य मानते हैं कि उसका मूल उद्देश्य मशीनों का इस्तेमाल करके श्रमिकों में बेकारी, भुखमरी और काम की कमी के जरिए केवल मुनाफा कमाना है।

गांधी पूँजीवाद को औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का समर्थक और पिछलग्गू मानते हैं। लगभग ऐसे ही कथन तो कार्ल मार्क्स और लेनिन के भी हैं। गांधी पूँजीवाद को इस आधार पर त्याज्य मानते हैं कि उसका मूल उद्देश्य मशीनों का इस्तेमाल करके श्रमिकों में बेकारी, भुखमरी और काम की कमी के जरिए केवल मुनाफा कमाना है। यह भी है कि वहाँ मशीनों को मनुष्य से और इसलिए मशीनीकरण को मानवता से बेहतर समझा जाता है। यहाँ गांधी 'मशीन' के स्टैटिक (स्थितिज) भौतिकपन को एक क्रिया पद में बदलते हुए 'मशीनीकरण' शब्द के माध्यम से बहुत सी मशीनों के एक साथ चलते रहने का बोध पैदा करते हैं। उसके समानांतर एक मानव इकाई को मशीनीकरण का दंश झेलती पूरी मानवता में परिभाषित कर देते हैं। यह मशीनों के विरुद्ध नीतिशास्त्री का आरोप पत्र है। वह संभवत: गांधी की मौलिक भाषा में इतिहास ने पहली बार पढ़ा। इस अर्थ में गांधी के ठोस आरोप की जांच की जानी चाहिए। वह अतिशयोक्ति की भाषा में प्रतीत होता है कि मशीनें आधुनिक सभ्यता की मुख्य प्रतीक हैं और यह भी कि वे महान पापों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह भी सही है कि गांधी ने धीरे-धीरे मशीन के विरुद्ध दायर की गई अपनी प्राथमिकी के बाद लगातार तथ्यपरक, तार्किक अन्वेषण किया। कई मुद्दों पर गांधी मार्क्स की उपपत्तियों के समानांतर, विरोधी और पूरक भी दिखाई देते हैं। पूँजी, राज्य, समाजविमुखता, महत्त्वपूर्ण उद्योग, मानवीय गतिविधियाँ, श्रम और कला वगैरह के मुद्दों पर गांधी ने मार्क्स सहित अन्य प्रमुख पश्चिमी विचारकों की तरह चिंतन किया है और अपने मौलिक निष्कर्ष निकाले हैं। राजनीति और अर्थशास्त्र में शक्ति के सिद्धांत की बहुत अधिक अहमियत बताई गई है। शक्ति आधुनिक मशीनवाद का रक्त प्रवाह है। गांधी के पास जमीन से जुड़ी हुई हकीकतों का ऐसा जखीरा है जो पश्चिम के दार्शनिकों को उपलब्ध नहीं था। गांधी के सामने भारत के गाँव एक रोल मॉडल की तरह थे जिनकी ऐतिहासिकता में एक समुन्नत और संतुलित सामाजिक जीवन की अनुगूंज साफ-साफ सुनाई पड़ती रही है।

गांधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत बहुत लिजलिजा, अटपटा, वायवी होकर पूँजीवादपरस्त कहा गया है। आपसी सहकार के आधार पर देश की पूँजी को एक न्यास या ट्रस्ट के रूप में समझे जाने का यूटोपियाई अकादमिक आग्रह करते हैं। यह बताया जाता कि गांधी ने साफ कहा था कि वे देश की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Mahatma Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधारभूत संरचना के मुख्य उद्योगों में निजी क्षेत्र नहीं आने दिया जाए। उनका राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। उन्हें पूंजीवादियों से मानवीय आधार पर प्रेम था लेकिन पूँजीवाद की अवधारणा से नहीं। संविधान सभा के एक जीवंत सदस्य बिहार से आए समाजवादी प्रो. के. टी. शाह ने राज्य के सभी भौतिक संसाधनों, खदानों, जंगलों, पानी वगैरह के राष्ट्रीयकरण की पुरज़ोर वकालत की और संविधान की अस्पष्ट भाषा का विरोध किया। उन्होंने यहाँ तक कहा पूँजीपति और उद्योगपति जनता और गरीबों का खून पीने वाले रक्तपिपासु हैं। अन्यथा अभाव में वे अमीर हो ही नहीं सकते। सरकार समर्थित बहुमत के कारण उन्हें नहीं माना गया। यह मौजूदा कॉरपोरेटीकरण गांधी के फतवों के और संविधान की असल भावना के खिलाफ है। वह संविधान की धाराओं के द्विअर्थी अव्यक्त व्याख्याओं के लिए सुप्रीम कोर्ट पर निर्भर बना दिया गया है। यह गांधी का स्वराज नहीं स्वार्थी राज है।

उन्होंने ट्रस्टीशिप के अपने सिद्धांत के संबंध में भी दुखी होकर कोई टिप्पणी की है। साथ ही आर्थिक समानता को लेकर हिंदुस्तान में क्या कुछ हो सकता है, उस बारे में भी उनके खुदरा विचार सही लेकिन एक घनीभूत दृष्टि आर्थिक मामलों को लेकर गांधी की उजागर तो होती है। गांधी कहते हैं रचनात्मक काम का यह अंग अहिंसापूर्ण स्वराज्य की मुख्य चाबी है। आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूँजी और मजदूरों के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। इसका अर्थ यह होता है कि एक ओर से जिन मुट्ठी भर पैसे वाले लोगों के हाथ में राष्ट्र की संपत्ति का बड़ा भाग इकट्ठा हो गया है, उनकी संपत्ति को कम करना और दूसरी ओर से जो करोड़ों लोग आधा पेट खाते और नंगे रहते हैं, उनकी संपत्ति में वृद्धि करना। जब तक मुट्ठी भर धनवान और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेइंतहा अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राजव्यवस्था कायम नहीं हो सकती। आज़ाद हिंदुस्तान में देश के बड़े से बड़े धनी के हाथ में हुकूमत का जितना हिस्सा रहेगा, उतना ही गरीबों के हाथ में भी होगा और तब नई दिल्ली के महलों और उनकी बगल में बसी गरीब मजदूर बस्तियों के टूटे-फूटे झोपड़ों के बीच जो दर्दनाक फर्क़ आज नजर आता है, वह एक दिन को भी नहीं टिकेगा। अगर धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलने वाली सत्ता को खुद राजी खुशी से छोड़कर और सब के कल्याण के लिए सब के साथ

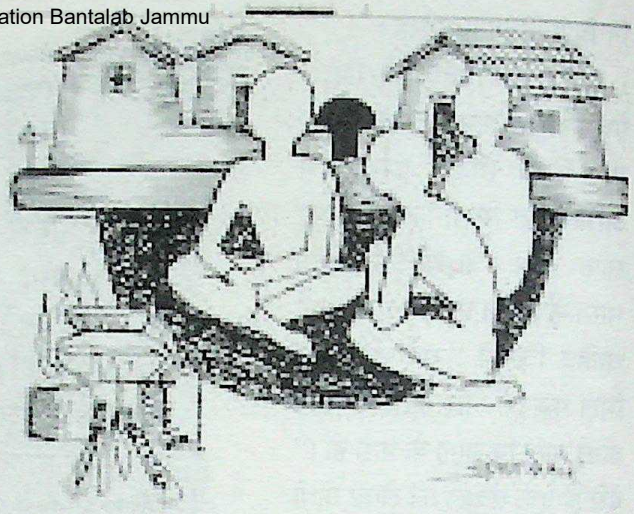

मिलकर बरतने को तैयार न होंगे, तो यह तय समझिए कि हमारे देश में हिंसक और खूंखार क्रांति हुए बिना न रहेगी। ट्रस्टीशिप या सरपरस्ती के मेरे सिद्धांत का बहुत मजाक उड़ाया गया है । फिर भी मैं इस पर कायम हूँ। यह सच है कि उस तक पहुँचने यानी उसका पूरा -पूरा अमल करने का काम कठिन है। क्या अहिंसा की भी यही हालत नहीं है ?

यह बात विवादग्रस्त लेकिन विचार योग्य है कि क्या गांधी का समतामूलक सिद्धांत साम्यवादियों से ज़्यादा परिवर्तनवादी था। इस संबंध में गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम पर दृष्टिपात करने की जरूरत है। स्त्री और पुरुष के बीच समान सुविधाओं सहित अन्य सभी तरह की बराबरी को लेकर गांधी का दृष्टिकोण पश्चिमी नहीं था जहाँ उसे वैयक्तिक आधार पर विचारित किया जाता है। गांधी वैचारिक परिवर्तन को समाज की सामूहिकता में देखते थे। वर्णाश्रम व्यवस्था को लेकर भी गांधी के विचारों में लगातार संशोधन होता गया। वे अंत में इस दृढ़ मत के हो गए कि वर्गहीन और वर्णहीन समाज ही भारत के लिए श्रेयस्कर हैं। हरिजन (17 फरवरी, 1946) में गांधी ने यही व्यक्त किया था। वे अंतरजातीय विवाहों के समर्थन में आगे आए और 7 जुलाई, 1946 के हरिजन में उन्होंने यहाँ तक लिख दिया कि अब तो केवल एक ही जाति हो जिसका नाम भंगी हो और वह एक सुधारक जाति के रूप में व्याख्यायित हो। गांधी की समता और बराबरी की समझ आधुनिक औद्योगिक समाज के लिए विकसित और लागू करना संभव नहीं है। भारत जिन नई आर्थिक नीतियों पर चल रहा है, उसके परिप्रेक्ष्य में गांधी के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपरोक्त विचारों को लागू करना लगभग नामुमकिन ही है। संविधान में तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संशोधन के द्वारा पंचायतों और नगरीय स्वायत्त संस्थाओं को सहवर्ती विधानमंडलों की तरह प्रवृत्त करने का दावा किया गया है। उक्त संविधान संशोधन सचेत होकर इतनी तकनीकी प्रकृति का बनाया गया है कि संसदीय विधायन का अधिकार इन प्राथमिक संस्थाओं को नहीं मिल पाए और वे नौकरशाही के नियंत्रण में रहकर उसी तरह कार्य करती रहें जिस तरह उनका मूल विधायन उन्हें निर्देशित करता था। ये बुनियादी संस्थाएँ आज भी राजधानियों, शहरों और सचिवालयों पर याचक की शैली में निर्भर रहने को अभिशप्त हैं। गांधी ने तो बुनियादी जनप्रतिनिधियों को रीढ़ की हड्डी पर खड़ा करने लायक बनाने की वकालत की थी।

प्रसिद्ध इतिहासकार और गांधीवादी विचारक धर्मपाल की पुस्तक 'संविधान सभा में पंचायती राज' की भूमिका में जयप्रकाश नारायण ने गांधी के विचारों की बेहतरीन व्याख्या करते लिखा 'यह संकेत देना आवश्यक है कि सामुदायिक विचार के अनुसार समुदाय, प्राथमिक समुदाय के साथ न तो शुरू होता है और न इसका उसके साथ अन्त ही होता है अर्थात् ग्राम या कस्बे के साथ! इस संबंध में समुदाय के सकेन्द्रित वृत्तों वाली गांधी जी की अवधारणा का स्मरण किया जा सकता है। सबसे बाह्य वृत्त, जिसे गांधीजी ने 'समुदाय' कहा था, में समूचे संसार के लोगों का समुदाय आ जाता है। जैसे कि प्राथमिक समुदाय में परस्पर समझ, मेल-मिलाप, समरूपता एवं सहकार ही लक्ष्य है, इसलिए समुदाय के विभिन्न वृत्तों में संबंधों को समायोजित एवं समरूप करना होता है, ताकि सभी संबंधितों के स्वार्थ सध सकें। यह उद्देश्य तथा इसे प्राप्त करने के साधनों को समाज की राज्य व्यवस्था में अभिव्यक्त होना चाहिए। प्रतिनिधि, उदाहरणार्थ राजनीतिक संस्थाएँ, इस प्रकार गठित की जानी चाहिए कि वे व्यक्तियों को नहीं, बल्कि उनके समुदायों का प्रतिनिधित्व करें। इसका प्रारम्भ प्राथमिक समुदाय से हो और बाहर की ओर जाते हुए बड़े, और बड़े वृत्तों को सम्मिलित करते जाएँ। इस प्रणाली में इस प्रकार समुदाय दल का स्थान ले लेता है-समुदायों के भीतर तथा उनके परस्पर अन्तर को समन्वित किया जाता है और हर स्तर पर समरूपता स्थापित कर ली जाती है।' भारत में और शायद एशिया तथा अफ्रीका के सभी विकासशील देशों में, फिर भी स्थिति अधिक अनुकूल है। छोटा सा प्राथमिक समुदाय, गाँव तथा कस्बे अभी भी अस्तित्व में हैं। सच है कि वर्तमान में गाँव में भी वास्तविक 'सही समुदाय' कम ही मिलते हैं, किन्तु कम से कम, समुदाय का भौतिक ढांचा तो वहाँ मौजूद है। मुख्य काम यह है कि इस ढांचे में प्राण-प्रतिष्ठा की जाए और ग्रामों तथा कस्बों को 'वास्तविक समुदायों' के रूप में प्रतिष्ठित किया जाए। किन्तु यदि गाँव में किसी प्रकार की राजनीतिक प्रणाली प्रारम्भ की जाती है, तो उससे पहले से ही बुरी तरह विघटित समुदाय और अधिक टूटेगा। इसका परिणाम समुदाय में सामंजस्य की भावना का विकास न होकर बिल्कुल उल्टा ही होगा। पंचायती राज की राज्य-व्यवस्था को 'विशाल समाज' वाली राज्य-व्यवस्था की नकल कदापि नहीं करना चाहिए। इसी कारण गांधीजी ने संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था नकार दी थी। इसे वे बहुसंख्यकों की तानाशाही कहते थे। उन्होंने ग्रामराज पर ज़ोर दिया। (जिसमें तार्किक रूप से नगरराज भी सम्मिलित हैं।) इसे ही वे स्वराज का आधार मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने निर्णय करने की क्षमता हेतु सर्वसम्मति की प्रक्रिया अपनाने की प्रशंसा की और लोक-आधारित तटस्थ नैतिक शक्ति की भूमिका पर ज़ोर दिया। यह शक्ति नि:स्वार्थ सेवा से प्राप्त होती है। इसी से उनकी अवधारणा की एकात्मक तथा सुधारात्मक लोकतान्त्रिक शक्ति का अभ्युदय होता है।

एक अन्तिम बिन्दु और है जिस पर मैं संक्षेप में प्रकाश डालना चाहूँगा। इस बात पर ज़ोर दिया जा सकता है, और ऐसा वास्तव में किया भी जा रहा है कि केन्द्रीय या सामुदायिक समाज में व्यक्ति की वैयक्तिकता, समुदाय में डूब जाने की है जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तथा गरिमा में वृद्धि हो। इसके विपरीत वह स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता है, जिसमें ऐसी राजनीतिक प्रणाली हो, जो व्यक्ति को एक इकाई माने तथा राजनीतिक संरचना व्यक्तिगत मतदान पर निर्भर हो। इससे अधिक सच्चाई से दूरी और क्या होगी! 'विशाल समाज' में ही दरअसल व्यक्ति अपने आप से विलग कर दिया जाता है और एक नामचीन इकाई बन जाता है, जिसे असत्य रूप में व्यक्ति की प्रभुसत्ता के रूप में घोषित किया जाता है। उसे राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभु शक्ति, लाभ एवं महिमा के लिए चालाकी से प्रभावित कर लेते हैं। आधुनिक समाज में कोई भी व्यक्ति सामाजिक एवं आर्थिक शिकार बन जाता है, जिस पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसका कोई नियंत्रण नहीं होता। इससे ठीक विपरीत, समुदाय में जीवन है, इसमें सामुदायिक भाव उत्पन्न हो जाता है। इसमें व्यक्ति का एक स्पष्ट व्यक्तित्व होता है। वह अन्य व्यक्तित्वों के साथ रहता है और वहाँ सम्भावनाएँ बनी रहती हैं कि वह एक इन्सान के रूप में उच्चतम विकास कर सके! जैसा कि गांधीजी ने व्यक्त किया है, किसी व्यक्ति तथा उसके समुदाय के बीच का रिश्ता इतना गहरा है कि व्यक्ति समुदाय के हितार्थ तथा समुदाय अपने सदस्य के लिए प्राणोत्सर्ग के लिए तैयार रहते हैं। जिस सीमा तक यह सुप्रवृत्ति दोनों ओर विकसित होती है, उस सीमा तक व्यक्ति का तथा समुदाय का विकास होता है। महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि श्रेष्ठतम सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं को खोजा जाए जो उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति कर सके।

तकनीकी नस्ल के ठंडे उबाऊ व्याख्यान और दो आयामी अकादेमिक शोध भी गांधी को खोज नहीं पाते। इसलिए जीवन की मर्यादाओं में बिंधकर ही गांधी के स्वराज बोध को समझने की कोशिश करना कई तकलीफदेह सूचनाएँ दे देता है। संविधान सभा की भारत में बैठकें 9 दिसंबर, 1946 से शुरू हुईं। 15 अगस्त, 1947 को देश आज़ाद हुआ। संविधान सभा इसी बीच संसद के रूप में भी कार्यरत रही। 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा की आखिरी बैठक हुई। 26 जनवरी, 1950 से भारत एक गणतंत्र घोषित हुआ। इसके पहले 30 जनवरी, 1948 को गांधी की हत्या हो चुकी थी। फिर भी शोकग्रस्त संविधान सभा में गांधी के कई मुद्दों में से दो सबसे प्रिय मुद्दों 'ग्राम स्वराज' और 'हिन्दुस्तानी भाषा' को लेकर उनके विचारों की अनावश्यक छीछालेदर और उपेक्षा तक की गई। गाँवों को सामाजिक, आर्थिक बुनियाद बनाने के नैष्ठिक आग्रह कई सदस्यों के भाषणों में विन्यस्त भी हुए। मसलन एन.जी. रंगा, हरिविष्णु कामथ, के.टी. शाह, दामोदर स्वरूप सेठ और न जाने कितने। लेकिन प्रभारी विधि सदस्य और प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर ने दृढ़ता के साथ नेहरू के समर्थन और सहमति मिलते रहने से तकरीबन सभी सुझावों और संशोधनों को खारिज किया या संशोधन वापस ले लेने को तर्क सिद्ध किया। गाँवों के वयस्क मनुष्य अर्थात नागरिक को केन्द्र में रखकर शासन का ढांचा और फलक बनाया गया। वह गाँव-समूह की केन्द्रीयता को खारिज करने के बाद ही बनाया गया।

अंबेडकर ने कटाक्ष भी किया कि बहुत से ग्राम स्वराज समर्थक सदस्य एक अंगरेज सर चार्ल्स मेटकाफ के सदियों पुराने भारतीय गाँवों के वर्णन से रोमांटिक रूप से अभिभूत नजर आते हैं। संविधान सभा में डॉक्टर अंबेडकर ने भारतीय गाँवों की राजनीतिक स्थिति का मर्माहत कर देने वाले शब्दों में खाका खींचा था। अंबेडकर ने उन सदस्यों को आड़े हाथों लिया था जिन्होंने भावावेश में संसदीय बहस में यहाँ तक कह दिया था कि पंचायती राज की व्यवस्था संविधान सभा में नहीं हो सकती, तो वह केंद्र तथा राज्य सरकारों का गठन भी नहीं चाहते। अंबेडकर ने तल्खी में यह कहा कि बुद्धिजीवियों का ग्रामीण प्रेम असीम और कारुणिक दिखाई पड़ता है। अंबडेकर ने कहा कि "भारतीय गाँवों ने भले ही विदेशी आक्रमणकारियों के हमले झेले होंगे परंतु उन्होंने लगभग शुतुरमुर्ग की प्रवृत्ति का परिचय दिया और किसी तरह जीवित रहे भर हैं।" अंबेडकर ने बिलग होकर यह भी कहा यह कथित ग्रामीण गणतंत्र भारत की बर्बादी रहे हैं। उन्होंने सदस्यों से मुखातिब होकर पूछा कि गाँव क्या है सिवाय इसके स्थानीय झगड़ों के नाबदान और अज्ञान, संकीर्णता, संप्रदायवाद की मांग हैं। अंबेडकर ने प्रतिरोधी उत्साह के साथ यहाँ तक कह दिया कि उन्हें इस बात की प्रसन्नता है कि संविधान के प्रारूप में गाँव की बुनियादी इकाइयों के रूप में उपेक्षा की गई है और उसके बदले व्यक्तियों को इकाई बनाया गया है।

वर्षों बाद नरसिम्हा राव की सरकार में तिहत्तरवें और चौहत्तरवें संविधान संशोधनों के जरिए पंचायत संस्थाओं और नगरीय निकायों को कथित रूप से संवैधानिक दर्जा देते हुए ज्यादातर उनके प्रशासनिक ढांचे को पुख्ता और चुस्त दुरुस्त करने का विधायन किया गया। गाँवों के कस्बाईकरण की नई शासन प्रेरित सामाजिकी को नगर पंचायत कहा गया। गांधी ने 'स्वराज' की परिभाषा में कहा था, हर गाँव में, संभव नहीं हो तो कुछ गाँवों के समूह में, जरूरत की सभी बुनियादी चीजें स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होनी चाहिए। बहुत अपवाद होने पर ही शहरों पर निर्भर हुआ जाए। (शायद वे कहते मसलन मिट्टी तेल की जरूरत, सर्जरी वगैरह कराना या रेलगाड़ी में बैठना ही हो तब।) आज़ादी की दहलीज पर भारत के नक्शे के सात लाख यथास्थिति के रहे गाँव गांधी के परिभाषेय गाँव नहीं थे। उस वक्त के भौतिक गाँव गांधी की कल्पना, समझाइश और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संभावनाओं के आत्मअवलंबित गाँव बन जाते, तब गांधी के लिए ग्राम स्वराज का सपना सच हो सकता। दिक्कत यह है कि तथा कथित संवैधानिक पचांयती राज के ढांचे में संस्थाओं को प्रतिबंधित लगते अधिकार मिले हैं। वे सब किसी बड़े नौकरशाह मसलन मंत्री, कलेक्टर, सचिव या अंतत: विधायकों के बहुमत के अंगूठे के नीचे दबे हुए हैं। ग्राम-सुराज की हालत वही 'ढाक के तीन पात' जैसी ही तो है।

के. हनुमंतैया ने गांधीवादी दृष्टिकोण से संविधान के मसौदे को जांचने की कोशिश की। उनकी शिकायत थी कि आज़ादी के सूरमाओं के ऊपर ऐसे बुद्धिजीवियों का अनपेक्षित असर हो गया है जिन्हें पश्चिमी सभ्यता का मानस-पुत्र कहा जाना चाहिए। गांधी की उपेक्षा को लेकर भी हनुमंतैया संविधान सभा की प्रतिभागिता में समय- समय पर तिलमिलाते रहे। उन्हें सत्ता के केन्द्रीयकृत होने के खतरे शुरुआत में ही दीखने लगे थे। हम चाहते थे वीणा और सितार का संगीत और हमें प्राप्त हुआ अंगरेजी वाद्यों का संगीत। इसका कारण यह था कि हमारे संविधान-निर्माताओं की शिक्षा-दीक्षा ही इस ढंग की हुई थी।...स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में हमने कुछ सिद्धांतों तथा आदर्शों को अंगीकार किया था, जिन्हें महात्मा गांधी ने हमारे सामने रखा था और जिनकी शिक्षा हमें दी थी।..... यदि महात्मा गांधी किसी संविधान को नहीं चाहते थे तो वह इसी प्रकार का संविधान था। हम अभी इसका निर्णय नहीं कर सकते कि लोकतंत्रात्मक संविधान में विश्वास खोकर तथा गांधी जी के संविधान निर्माण के विचारों की छेड़ा-छाड़ी करके हमने ठीक किया है या नहीं। इसका निर्णय भविष्य ही करेगा। वास्तव में लोकतंत्र का संकेन्द्रण दिल्ली में ही है।

गांधी ने एक तर्क 'यंग इंडिया' के 20 सितंबर, 1928 के अग्र लेख में व्यक्त किया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि 1909 में लंदन में उन्होंने चरखा को इतिहास चक्र के रूप में समझा था। अपने अज्ञान का खुलासा करते हुए वे कहते हैं 'हिन्द स्वराज' में मैंने चरखा शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है, क्योंकि उस शब्द से मैं तब तक परिचित ही नहीं था। गांधी इस बात को लेकर आश्वस्त थे और ठीक ही कि शहरी भद्र लोक ने भारतीय गाँवों की अर्थव्यवस्था पर अपना एकाधिकार कर लिया है और उसे शोषण का हथियार बना रखा है। गांधी इस अर्थ में शहरों के पूरी तौर पर विरोधी थे। माओ- त्से- तुंग ने भी चीन में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अपने विचारों के केन्द्र में रखा। गांधी के लिए गाँव भौगोलिक स्थान, सांख्यिकी या सामाजिक वर्गीकरण नहीं थे। वे उनके लिए घटना, सपना, संस्कृति थे। वे गाँव शब्द से किसी भौतिक इकाई को नहीं, एक जीवन मूल्य-समुच्चय को ध्वनित करते थे। ग्राम्य जीवन को नगरीय जीवन के ऊपर तरजीह देते गांधी ऐसी व्यवस्था के पक्ष में थे जहाँ राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम हो। गांधी के ग्राम-स्वराज की कल्पना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाकलाप प्रत्येक गाँव के स्तर पर इस तरह संचालित होंगे कि उनकी निर्भरता शासन की अन्य किसी इकाई पर नहीं हो। गांधी की दृष्टि में विकेन्द्रीकरण का अर्थ औद्योगिक इकाइयों का बिखराव भर नहीं है। वह समानांतर राजनीति की एक ऐसी रचना है। उसमें लोकशक्ति ऐसा संस्थागत आचरण करे जो केन्द्रीकरण और समाज में विभेद पैदा करने वाली आधुनिक राष्ट्र-राज्य की परिकल्पनाओं से टक्कर ले सके। गांधी की इस समझ के आधार पर विकेन्द्रीकृत राजदर्शन में एक सत्तामूलक समाज इस तरह बनता है जिसमें सत्ता मूल में नहीं होती बल्कि देश के ग्रामीण केन्द्र मूल सत्ता में होते हैं।

गांधी जानते थे कि भारत में सिंचाई, खाद, तकनीक और अन्य अभावों के चलते केवल गोवंश पर आधारित खेती से किसानों का काम नहीं चलेगा। उनके ग्राम स्वराज की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कल्पना में इसीलिए कुटीर उद्योगों को बहुत महत्त्व दिया गया था। उसमें मशीन की तकनीक भी गांधी के स्वीकृत मानदंडों के तहत अपनाई जा सकती थी। खेतों और ग्रामों में काम करते किसान एक उर्वर संसार उगा सकते थे। उसके भविष्य के गाँवों के लिए मुफीद होने से भारत अपनी बुनियाद पर मजबूती से खड़ा हो सकता था। ग्राम उद्योगों को लेकर गांधी जी ने समय-समय पर बहुत महत्त्वपूर्ण बातें कहीं हैं। 'हरिजन सेवक' के 17 अगस्त, 1934 के अंक में यह लिखा है ''कपड़े की, शक्कर की और चावल की मिलों को हमारी मदद की दरकार नहीं है किंतु यदि हम मुँहमांगी मदद इन मिलों को देते रहेंगे तो चरखा, करघा, खादी ऊख पेरने का कोल्हू और जीवनप्रद तथा पोषक तत्त्वों से भरा हुआ गुड़ और इसी तरह ओखली मूसल का कुटा चावल गाँव की इन सब चीजों का हम नाश कर देंगे।'' गांधी ने उसके बाद एक बार और 'हरिजन सेवक' के 30 नवंबर, 1934 के अंक में लिखा था ''ग्राम उद्योगों की योजना के पीछे मेरी कल्पना तो यह है कि हमें अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताएँ गाँवों की बनी चीजों से ही पूरी करना चाहिए और जहाँ यह मालूम हो कि अमुक चीजें गाँवों में मिलती ही नहीं, वहाँ हमें यह देखना चाहिए कि उन चीजों को थोड़े परिश्रम और संगठन से गाँव वाले बना सकते हैं। और उनसे भी कुछ मुनाफा उठा सकते हैं या नहीं।''

इसी बिंदु पर ओशो के विचार बहुत दिलचस्प हैं और वह गांधी से टकराते हैं। उन्होंने लिखा है- ''गांधीजी का विचार हिंदुस्तान को समृद्ध नहीं बना सकता क्योंकि वह कहते हैं कि छोटे उपकरण चाहिए। हाथ से चलने वाले उपकरण चाहिए। ग्रामोद्योग चाहिए। घर- घर का धंधा चाहिए। इससे काम नहीं चलेगा। खेती को भी इंडस्ट्रियल एग्रीकल्चर चाहिए। अब खेती छोटे- छोटे टुकड़ों में और एक -एक किसान अपने-अपने टुकड़ों में करे, यह नहीं चल सकता है। हिंदुस्तान को चाहिए औद्योगिक व्यवस्था, सेंट्रलाइज्ड मुल्क को चाहिए नवीनतम वैज्ञानिक उपकरण, श्रेष्ठतम टेक्नोलॉजी, केन्द्रीयकरण नया से नया शोध, नया विज्ञान ताकि मुल्क की दरिद्रता मिट सके। मुल्क संपन्न हो सके। मैं यह मानता हूँ कि गांधीवाद से मुक्त होने का मतलब गांधी के आदर से मुक्त हो जाना नहीं है।'' ओशो ने गांधी जी से असहमति की एक बात और कही है। गांधीजी ने कहा कि मैं ट्रस्टीशिप चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ एक ऐसा देश जहाँ धनी अपने धन का मालिक न हो। लेकिन चालीस वर्ष की निरंतर मेहनत के बाद गांधी एक भी धनी आदमी को ट्रस्टी बनने को राजी नहीं कर पाए। गांधी हार गए। एक करोड़पति राजी नहीं हुआ। गांधीजी एक आदमी का हृदय परिवर्तन नहीं कर पाए। एक आदमी का हृदय परिवर्तन नहीं हुआ कि वह अपनी संपत्ति छोड़ दे अब कौन है वह परिवर्तन करेगा? गांधी नहीं कर पाए तो कौन करेगा परिवर्तन?

गांधी को (भी) बीसवीं सदी तक की विज्ञानपरक खोजों और सैद्धांतिकी का एनसाइक्लोपीडिया या गजेटियर की तरह ज्ञान तो नहीं हो सकता था। गांधी में अलबत्ता सूचित होते रहने का आग्रह जबरदस्त था। हर जुझारू बौद्धिक वृत्ति में संदेह दृष्टि भी अपने आप होती है। उपलब्ध ज्ञान को जस का तस मान लेने से परहेज करना मुनासिब नहीं होता। विकास और वैज्ञानिक आविष्कारों की आड़ में बहुत से पूरक प्रश्न भी कुलबुलाते हैं। केवल परेशान दिमाग लोग ही उन्हें देख पाते हैं। गांधी इसलिए पुराने या उपलब्ध स्थिर ज्ञान के उपदेशक-प्रवक्ता बनकर बद्धमूल अवधारधाओं की कतार में कभी खड़े नहीं हुए। लोगों को महसूस हुआ कि महानता उनकी यशदेह से पलस्तर की तरह झरती भी रही है। नफासत, आभिजात्य, कुलीनता और बड़प्पन की अमरबेलों में जकड़े जाने के आग्रहों बल्कि इच्छाओं को गांधी यत्नपूर्वक अपने व्यक्तित्व से नोचकर फेंकते रहे। बाद में वही तकनीक आदत बनकर उनके स्नायुओं में ढल गई। इस आदमी को इत्र, फुलेल वगैरह से ज्यादा पसीने की गंध भाती रही। बिना पसीना बहाए बड़बोले उपदेशकों की महानता का इतिहास खुदग़र्ज हो जाता है। गांधी हर अभिजात्य महफिल में देह और पोशाक के कारण विसंगत दीखते रहते। वे यह जरूर जानते रहे होंगे। अपने इसी अनोखे अन्दाज़ में आखिरी व्यक्ति के सिद्धांत को अमल में लाने की कोशिशें गांधी तलाशते रहे। खुद का गरीब हो जाना उन्हें व्यापक राष्ट्रीय जीवन को अपने अस्तित्व के साथ एकाकार कर लेने के लिए विकल्पहीन लगा होगा। कहना सरल है लेकिन गांधी की नस्ल का मनुष्य बनना कठिन है। उनकी निष्कपट, प्रयोगशील और अनसुनी सात्विक ज़िद साकार होकर नायाब तिलिस्म में बदल गई। यही अनोखा अनुभव इतिहास का रहा है।

गांधी के लिए शहरी-जीवन एक नया सामाजिक उद्वेग था। वह पूरी तौर पर आधुनिक सभ्यता से आच्छादित होता जा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा था। नगर के जीवन को गांधी इतिहास की स्थापित मान्यताओं के खिलाफ एक ऐसा प्रयोग समझते थे जो अपनी जड़ों से कट गया हो और आकाश कुसुम बने रहने में गर्वोन्मत्त हो रहा हो। बड़े बड़े औद्योगिक नगरों के मुकाबले गांधी भारत के सात लाख गाँवों को आवास की इकाइयाँ बनाकर एक सुसंस्कृत जीवन की कामना करते रहे थे। भारत की ग्रामीण सभ्यता में माओत्से तुंग बल्कि लिन पियाओ की विरोधी-उन्मूलन की नीति की तरह कोई वैचारिक स्वीकार्यता नहीं रही है। इन गाँवों ने अपने मतभेदों को सुलझाने के लिए आपसी सहकार की ऐसी प्राथमिक संसदीय पद्धतियाँ चुन रखी थीं जिनके सामूहिक निर्णय के प्रति उनकी आस्था रही है। व्यक्तिगत जीवन में गैर उच्च श्रृंखलता और सहिष्णु स्वायत्तता और सामूहिक जीवन में निर्णय क्षमता का आविष्कार सामाजिक वैज्ञानिकों को भारतीय ग्राम्य जीवन की एक बड़ी देन रही है। गांधी के अनुसार कई अवसरों पर राजाज्ञा का प्रतिरोध करते ग्रामीणजनों ने राज्य से निर्वासित होने को अपना निर्णय बल्कि धर्म बनाया और राजाज्ञा को घुटने टेकने पड़े।

गांधी ने कहा-''मेरी चले तो हमारा गवर्नर किसान होगा, हमारा बड़ा वजीर किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योंकि जहाँ का राजा किसान है। मुझे बचपन से सिखाया था- एक कविता है, 'हे किसान। तू बादशाह है।' किसान जमीन से पैदा न करे तो हम क्या खाएँगे ? हिन्दुस्तान का सचमुच राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करे ? एम.ए. करे ? बी.ए. करे ? ऐसा किया तो किसान मिट जाएगा। पीछे वह कुदाली नहीं चलाएगा। जो आदमी अपनी जमीन में से पैदा करता है और खाता है सो जनरल बने, प्रधान बने तो हिन्दुस्तान की शक्ल बदल जाएगी। आज जो सड़ा पड़ा है वह नहीं रहेगा।''

बापू कार्ल मार्क्स या अन्य किसी अकादमिक सामाजिक अर्थशास्त्री की तरह नहीं थे। उन्हें विश्वविद्यालय के जीवन के बनिस्बत जीवन का विश्वविद्यालय ज़्यादा प्राथमिक था। सिद्धांतों की कसौटी पर खरे उतरने के लिए उन्होंने अपना कोई समाज-विज्ञान विकसित नहीं किया। वे एक तरह का जनशास्त्र रच रहे थे। वह दुनिया में अकेला या पहला तो नहीं लेकिन अनोखा जरूर था और इस अर्थ में शायद पहला और अकेला भी। गांधी मनुष्य की गरिमा में विश्वास करते थे। उनके स्वप्नलोक में राज्य का सर्वोच्च संवैधानिक अधिकारी समाज के सबसे पिछड़े व्यक्ति के समकक्ष ही था। उनका साफ कहना था कि यदि राज्यसत्ता का कोई व्यक्ति निर्णय ले तो वह टटोले कि कहीं वह समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति के साथ अन्याय तो नहीं कर रहा है। ऐसे आत्मचिंतन को उन्होंने समर्थन के लिए एक तरह की ताबीज बताया था। ज़ाहिर है ताबीज़ या गंडा परंपरा के अनुसार गले या हाथ में लटके होते हैं। गांधी भारी मशीनों के विरुद्ध थे जो प्रथमत: मनुष्य और अंतत: मनुष्यता का उन्मूलन करना चाहती हैं।

यह तयशुदा है कि दुनिया में कोई दूसरा कार्ल मार्क्स नहीं हुआ। यह कहा जाता है कि गांधी ने एक वैकल्पिक वैचारिक अर्थतंत्र ढांचागत स्तर पर भी खड़ा करने की कोशिश की है। वह कोशिश इतनी नामुराद भी नहीं है कि उससे कोई परीक्षित सत्य नहीं निकाला जा सके। यह स्वीकार करना होगा कि बीसवीं सदी के भारत में राष्ट्रीयता के अतुलनीय उफान के बावजूद कोई मौलिक आर्थिक विचारक इस कदकाठी का नहीं हुआ जिसे भारत जैसे व्याकुल देश की समस्याओं का सर्वसम्मत वैज्ञानिक हल ढूंढ़ने का श्रेय दिया जा सकता। इस दृष्टि से गांधी को एक वैकल्पिक रोल मॉडल के रूप में इतिहास में स्थापित करने की लगातार कोशिशें हुई हैं। ये कोशिशें अब भी जारी हैं। गांधी के आर्थिक विचारों में अनके विसंगतियों और विरोधाभासों को आसानी से उजागर भी किया जाता रहा है।

पूँजीवाद के पोशाक और प्रतिभागी तत्त्वों के वित्तीय विवेक पर गांधी ने मासूम विश्वास भी व्यक्त किया है। गांधी शोषक और शोषित वर्गों के बीच पनपते बिगड़ते आर्थिक रिश्तों की कोख में पारस्परिक आध्यात्मिकता को अपने विचार फलक से बाहर नहीं जाने देते। एकात्म मानवदर्शन में इस तरह की बारीकियों को विन्यस्त करने के लिए दीनदयाल उपाध्याय को समय और स्थान की सीमा के कारण अवसर नहीं मिला। गांधी ने मार्क्स को जाना था और यह टिप्पणी भी की थी, जब गांधीजी से कार्ल मार्क्स के बारे में पूछा गया। उन्होंने कहा कि ''अपनी नजरबन्दी के दौरान मुझे 'कैपिटल' पढ़ने का सुअवसर और सौभाग्य प्राप्त हुआ। मार्क्स लगन और विलक्षणता का मैं बहुत कायल हूँ। लेकिन उनके निष्कर्षों को मैं नहीं मान सकता। मुझे यह विश्वास नहीं है कि हिंसा अहिंसा का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। विश्वचिन्तन तेजी से आगे बढ़ रहा है और मार्क्स

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुराने पड़ते जा रहे हैं। किन्तु इससे उस महान व्यक्ति की लगन और कार्य की महत्ता कम नहीं होती।'' अन्त में गांधी ने कहा कि ''ठोस रचनात्मक प्रयत्नों के बिना स्वराज्य-प्राप्ति के साधन के रूप में असहयोग और सविनय अवज्ञा के प्रयोग की बात नहीं सोची जा सकती। रचनात्मक प्रयत्न के बिना असहयोग तथा सविनय अवज्ञा में से प्रत्येक आत्माविहीन मृत शरीर के समान होगा।'' (अमृतबाजार पत्रिका, 5-1-1946)

यह गांधी ने कहा था कि इस देश के केवल शहरी लोग अंगरेज़ों के गुलाम हैं। अंगरेजी पोशाक, भाषा, खानपान से लकदक भद्रजन अंगरेज हाकिम-हुक्कामों के हुक्का भरने वाले मनसबदार हैं। भारत के सात लाख गाँव अंगरेज़ों के गुलाम नहीं हैं। अपनी पुश्तैनी पोशाकों में लैस, संस्कृति, परम्पराओं, तहजीब, धर्म में आकंठ डूबे ग्रामीण अपनी निपट सादगी की शक्ति लिए यह जानते ही नहीं हैं कि कौन है अंगरेज और कहाँ से आया है? गुलामी एक मानसिकता है, राजनीतिक घटना नहीं-यह गांधी का प्रमेय था। राजनीति विज्ञान के तात्विक विवेचक किताबी दुनिया के लोग हैं। उन्हें ये जुमले समझ ही नहीं आए होंगे। भारत की आज़ादी के लगभग सभी जननायक पश्चिमी शिक्षा के अध्येता रहे हैं। उन्हें भी गांधी के सूत्रों का सरलीकरण करना नहीं आया। अंगरेज़ अपने नवोदित ज्ञान के दम्भ में इतना फूला रहा कि उसे गांधी से संवाद करने की इच्छा ही नहीं हुई। इसके मुकाबिल जिन दरिद्रों, पस्त हिम्मतों और पददलितों के लिए गांधी ने सामाजिक विज्ञान के सोच की नई भाषा गढ़ी, उसे उन अशिक्षितों ने अच्छी तरह घोख लिया। इतिहास में जब जनता कोई सबक पढ़ लेती है, वह इंकलाब ही करती है। कैलेन्डर में 15 अगस्त, 1947 इसी जनभाषा की वजह से छप गया है।

सवाल यह है कि गांधी इस देश को किन नतीजों तक ले जाना चाहते थे? क्या वह मानते थे कि यही एक देश है जो विश्व को फिर से मानवता का रास्ता दिखा सकता है? क्या इसमें अब भी इतना आत्मबल और साहस बचा है कि यह सारी दुनिया के सामने अपने आदर्शों की वरिष्ठता और श्रेष्ठता लेकर खड़ा हो सके? एक जगह भारतीय समाज व्यवस्था और सांस्कृतिक मूल्य की चर्चा करते हुए गांधी इस सन्दर्भ में हमें याद दिलाते हैं हमारे पुरखों ने भोग की हद बांध दी। हमने नाशकारक हाड़े को समाज में जगह नहीं दी। सब अपना-अपना धंधा करते रहे। उसमें उन्होंने दस्तूर के मुताबिक दाम लिये। ऐसा नहीं था कि हमें यंत्र वगैरह की खोज करना ही नहीं आता था। लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यंत्र वगैरह की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम ही बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ बैठेंगे। उन्होंने सोचा कि बड़े शहर खड़े करना बेकार की झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। उनमें धूर्तों की टोलियाँ और वेश्याओं की गलियाँ पैदा होंगी। गरीब अमीरों से लूटे जायेंगे। इसीलिए उन्होंने छोटे देहातों से संतोष किया। 31 मार्च, 1931 को अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्मेसन के प्रस्ताव में गांधी ने मौलिक अधिकारों और आर्थिक परिवर्तनों के सुझावों को लेकर कहा था, कांग्रेस की राय है कि कांग्रेस की कल्पना के स्वराज्य का आम जनता के लिए क्या अर्थ होगा, यह बात समझाने के लिए कांग्रेस की स्थिति का बयान इस ढंग से करना जरूरी है, जिसे जनता आसानी से समझ सके। राजनैतिक स्वतंत्रता में जनसाधारण के शोषण का अन्त करने की दृष्टि से भूखों मरने वाले करोड़ों लोगों के सच्चे आर्थिक स्वातंत्र्य का समावेश होना ही चाहिए। इसलिए कांग्रेस यह घोषणा करती है कि उसकी ओर से जो भी संविधान बनाया जाये, उसमें इतनी बातों का समावेश होना चाहिए अथवा स्वराज्य सरकार को इनका प्रबन्ध करने का अधिकार मिलना चाहिए: कम-से-कम ठहराई हुई रकम से अधिक होने वाली खेती की आमदनी पर आमदनी के प्रमाण में आयकर लगाना। हिन्दुस्तान में तैयार किये गये नमक पर कोई कर न लगाया जाये।

एक अन्य लेख में महात्मा गांधी ने कम्युनिज़्म का ऐसी सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्वागत किया जो निजी स्वामित्व से मुक्त होगी। अगर कम्युनिज़्म की हिंसा के बिना स्थापना हो जायेगी, तो उसका खुशी से स्वागत किया जायेगा। कारण यह कि तब जनता की और जनता के लिए सम्पत्ति का छोड़कर किसी की कोई सम्पत्ति नहीं होगी। गांधी ने कहा था कि कम्युनिज़्म को ''अहिंसा पर और मज़दूर व पूँजीपति, ज़मींदार व किसान के समरस सहयोग पर आधारित होना चाहिए।'' परंतु आखिरकार अपनी इस धारणा के प्रतिकूल उन्होंने स्वीकार किया कि भविष्य के समाजवादी अथवा कम्युनिस्ट समाज में न केवल पूँजी की सत्ता के लिए कोई स्थान नहीं होगा, बल्कि इसके विपरीत सम्पत्तिविहीन लोगों की सत्ता स्थापित होगी। इसके साधन जहाँ अहिंसा के जाने-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माने सिद्धांत होंगे, वहाँ–और यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है–हिंसात्मक साधनों का भी उपयोग किया जा सकेगा। दूसरा विश्व युद्ध जब ज़ोरों पर था, गांधी जी ने ऐलान किया था ''मुझे लगता है कि युद्ध के अंत का मतलब पूँजी की सत्ता का भी अंत होगा। आने वाले समय में मुझे गरीबों का राज दिखाई दे रहा है। यह राज ताकत के ज़रिये, हथियारों के ज़रिये स्थापित हो सकता है या अहिंसा के बल पर।'' आज़ादी की लड़ाई के दौरान भारतीय कम्युनिस्टों का एक दल रूस गया। वहाँ उन्होंने कहा कि गांधी के कारण साम्यवादी आंदोलन तेजी से फैल नहीं पा रहा है। कॉमरेड लेनिन ने दो टूक सवाल किया भारत के किसान कहाँ हैं? जवाब मिला गांधी के साथ। लेनिन ने कहा जाओ आज़ादी के आंदोलन में कूद पड़ो। हो सके तो गांधी को निकाल बाहर करो। लेकिन किसानों को मत छोड़ो। दो महादेशों के दो मसीहा किस तरह किसान के पसीने का अपने चिंतन और कर्म में सम्मान करते हैं यह लेनिन से हमको सीखने मिलता है।

विवेकानंद के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त ने 1929 के कांग्रेस के कराची अधिवेशन में एक नोट जवाहरलाल नेहरू को दिया था कि किसानों को मूलभूत अधिकार दिए जाएँ। नेहरू ने उसे मंजूर किया था। वह दस्तावेज कहीं गुम भी हो गया होगा। ऐसे किसानों के लिए गांधी ने कहा था कि ये किसान हैं जिन्होंने प्रजामंडलों और अंगरेजी हुकूमत के खिलाफ सत्याग्रह का आचरण किया है। अफसोस है आज़ाद हिन्दुस्तान के संविधान और प्रशासन में किसानों को वो जगह नहीं मिली जो गांधी चाहते थे। चाहते क्या थे खुद किसान की तरह चर्चिल के कुत्सित जुमले में नंगा फकीर कहलाते थे। आज हिन्दुस्तान में जितने किसान आत्महत्या कर रहे हैं, वह दुनिया के लिए एक रिकॉर्ड है।

ऐसे समाज की रचना सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। ऐसा समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक ही शक्ल में होगा। ज़िन्दगी पिरामिड की शक्ल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समन्दर की लहरों की तरह ज़िन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति यानी कर्म इनका मध्यबिन्दु या मरकज होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गाँव की खातिर मिटने को तैयार रहेगा। गाँव अपने इर्दगिर्द के देहात के लिए मिटने को तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगों का बन जाएगा जो घमण्डी या मगरूर बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपने में समन्दर की उस शान को महसूस करते हैं जिसके वे एक जरूरी हिस्से या अंग हैं।' (हरिजन सेवक 28 जुलाई 1946) यह भी गांधी ने कहा था।

संविधान सभा में गांधी का जाप करते भी उनकी अनदेखी की गई। सात लाख गाँवों को समुद्र की लहरों की उमंग बताते गांधी ने उन पर देश का करुणामहल बनाने का ऐतबार किया था। एक सौ तीस करोड़ भारतीय रेत कणों के ऊपर पिरामिड तामीर कर चोटी पर गांधी के चेहरे को टांक दिया गया है। रेत पर खड़ा पिरामिड रोज झर रहा है, भरभरा रहा है। गांधी की मौजूदगी में 1929–30 में कराची कांग्रेस में विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त ने भारतीय किसानों को मूल अधिकार दिए जाने का पर्चा जवाहरलाल नेहरू को दिया। वह नोट और घटना इतिहास में गुम हो गए हैं। लाखों किसान भुखमरी के कारण आत्महत्या कर रहे हैं। अभियुक्त भाव के सरकारी आंकड़ों से किसानों की आत्महत्या की इबारत ही हटा दी गई है। गांधी ने कहा था कि स्वावलंबी गाँव शहरों पर निर्भर नहीं हों। कोयला, लोहा, मैंगनीज, अल्युमिनियम, वन उत्पाद, पानी आदि से किसानों को बेदखल कर, कॉरपोरेटियों की तिजोरियों के जरिए विश्व बाजार को औने पौने जनता से लगभग छीन लिए गए धन को माफीशुदा कर्ज में तब्दील करते कुकर्म सरेआम किए जा रहे हैं। किसान को सौ रुपये देते, उपभोक्ता को वही वस्तु हजार रुपये में दी जाती है। सरकारी संरक्षण में बिचौलियों, दलालों, आढ़तियों और एजेंसियों का जखीरा फलफूल रहा है।

विकास की गांधीवादी धारणा सिर्फ 'आर्थिक मानव' से नहीं, पूर्ण मानव से संबंध रखती है। वह मानव और उसके पर्यावरण, मानव और मशीन, श्रम और पूँजी तथा गाँव और नगर के बीच संबंधों में आने वाली विकृतियों को दूर करना चाहती है। गांधी का आर्थिक चिन्तन मुख्यत: भारत और परोक्षत: तीसरी दुनिया के उन देशों के लिए था, जो औपनिवेशिक शासन से मुक्ति हेतु संघर्ष कर रहे थे। लेकिन उनकी कुछ अंतर्दृष्टियाँ अब उन व्याधियों के सन्दर्भ में विशेष रूप से संगत दिखाई देंगी जिनसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज का विकसित संसार पीड़ित है। गांधी और भारत का यह दायित्व है कि वे दोनों फिर से इस पीड़ित संसार की पीड़ा का निदान ढूंढ़ें। हिन्दी के जाने माने चिंतक और कवि रामविलास शर्मा ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि 'तीसरी दुनिया के मुल्कों की स्वाधीनता फिर खतरे में है। विश्व का आर्थिक साम्राज्यवाद सबको निगल जाने की तैयारी कर रहा है। वैसे में स्वदेशी आंदोलन की जरूरत नए सिरे से है। भारत ने एक बार इसका सफल प्रयोग किया है। आज फिर से अधिक ताकत और समझदारी से इसका प्रयोग इतिहास की सबसे बड़ी माँग है। 'हिन्द स्वराज' के विचार यहीं अत्यंत प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हो उठते हैं। हमें गांधी के उन विचारों को भी ध्यान में रखना होगा जो उन्होंने शिक्षा, सत्याग्रह, साधनों की शुद्धता और साध्य की पवित्रता के संदर्भ में हमें सौंपे हैं।

गांधी की मौत के कोई चार दशक बाद देश एक ऐसे वैश्विक विचार की गिरफ्त में आ गया है जिसे एक नए तरह का ऑक्टोपस नेतृत्व मिला है। गांधी को अमेरिका से परहेज़ था। वे आमंत्रण मिलने पर भी अमेरिका नहीं गए थे। लेकिन मौजूदा हिंदुस्तान एक तरह से अमेरिका का उपनिवेश बनाया जा रहा है। भारत पूरी दुनिया में शायद अमेरिका के लिए सबसे बड़ा बाजार है, कोई साथी देश नहीं। अमेरिका पूँजी, सड़ी गली दवाइयाँ, अधनंगी संस्कृति, राजनीतिक हस्तक्षेप, नौकरियों का झांसा, दोयम दर्जे का नागरिक व्यवहार किसी संभावित खतरे के प्रारंभिक लक्षणों की तरह दिखाई देते हैं। लगभग दो तीन दशकों से देश पर अर्थशास्त्रियों का बौद्धिक शिकंजा कसा हुआ है। मीडिया द्वारा प्रचारित इस बौद्धिक दहशत में देश है कि किताबी विद्वानों के बिना उसके विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस छवि को बनाने में भी अमेरिका का सबसे बड़ा हाथ है। कोई भी व्यक्ति चाहे महात्मा गांधी ही क्यों न रहे हों, निर्विकल्प नहीं है। लेकिन मौजूदा हिंदुस्तान बुद्धि विलास के शोर शराबे में अपनी आवाज और अतीत ही भूलता जा रहा है।

जनमानस इस बात की जब गहरी पड़ताल करेगा तो पाएगा कि जनता की ताकत को सहारा देने वाली लोकतांत्रिक शक्तियों में भी अमेरिकी घुन लग गया है। देश का मीडिया उद्योगपतियों का बौद्धिक कार्य व्यापार होकर भी स्वतंत्रता आंदोलन का सक्रिय समर्थक और उत्प्रेरक था। आज का मीडिया एक बिका हुआ तंत्र है। वह केवल झूठी खबरें नहीं छापता। अफवाहों का सच भी गढ़ता है। इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया मिलकर एक तरह से देश पर बौद्धिक हमला कर रहे हैं। वह गांधी के सच की हत्या के बराबर है। जब गांधी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का प्रचार किया था तो वामपंथी बुद्धिजीवियों ने उनका मज़ाक उड़ाया था। आज पूरी दुनिया में कम्युनिस्ट मुल्कों में पूँजीवाद जिस तरह गृह भेदन कर रहा है उसके मुकाबले गांधी का सिद्धांत प्रगतिशील दिखाई देता है। देश मुट्ठी भर पूँजीपतियों की गिरफ्त में आता जा रहा है। दुनिया के सबसे ज़्यादा गरीबों की सांख्यिकी अपनी छाती पर जो देश लादे हुए है उसी के सामने 'हिन्द स्वराज' का सपना गांधी ने दिखाया था। गांधी का देश लेकिन अमेरिका हमले से नहीं बच सका। अमेरिका वही दोमुंहा देश है जो गांधी को सहस्त्राब्दी का नायक मानता है और उनके ऐतिहासिक सच को पूँजीवाद के कूड़ेदान में डालने के लिए अर्थशास्त्रियों के एक गिरोह को हिंदुस्तान का भविष्य बनाने का काम मिल जाने पर ऐंठता रहता है।

मो. 9131255864

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

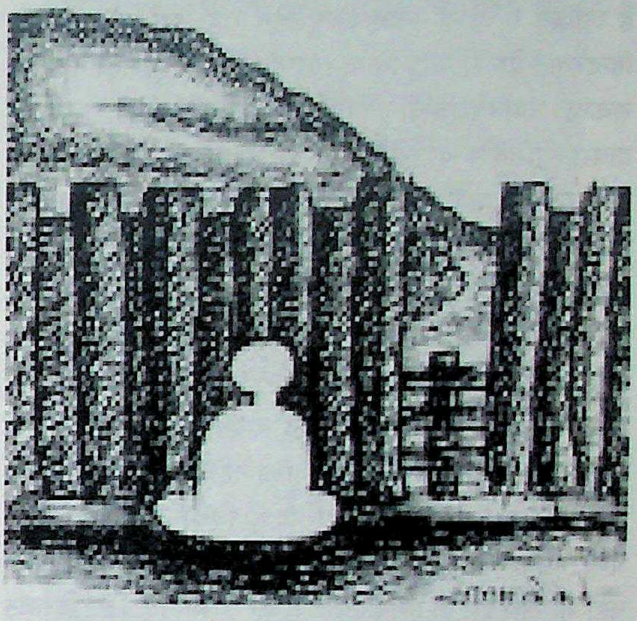

राष्ट्रपिता का राष्ट्रवाद

अरविन्द मोहन
(प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक व लेखक)

राष्ट्रपिता का राष्ट्रवाद, देश में जब हर बात पर राष्ट्रवाद भारी हो तब यह विषय बहुत बढ़िया और जरूरी हो जाता है। संयोग से गांधी के डेढ़ सौवें साल के साथ आयोजनों की धूम भी है और राष्ट्रवाद का शोर मचाने वालों के अनिवार्यत: गांधी विरोधी सुर के चलते भी इस सवाल को जाँचना जरूरी लगता है। गांधी से बड़ा राष्ट्रवादी कौन होगा। इसलिये जब हम गांधी के राष्ट्रवाद की चर्चा कर लेंगे या उसके बारे में थोड़ी समझ बना लेंगे। तब यह विचार करना भी आसान हो जाएगा कि आज का शोर कितना जरूरी है और इस शोर के साथ अपने आचरण में हमें क्या कुछ बदलाव करना चाहिए क्योंकि आज राष्ट्र सचमुच संकट में है। एक विभाजन तो राष्ट्रपिता गांधी के समय ही हो गया और उसे लाख चाहकर भी वे खुद नहीं रोक पाए, पर आज हम जिस विभाजक मानसिकता को बढ़ाते जा रहे हैं, उसमें राष्ट्र के टुकड़े-टुकड़े हों न हों, वह गर्त में जरूर गिरेगा। सारी जरूरतों और भावनाओं पर राष्ट्रवाद ही प्रभावी हो ऐसा राष्ट्रीय आन्दोलन के समय भी नहीं दिखा था, आज तो हम आज़ाद मुल्क हैं। तब आन्दोलन ही पचासों ऐसी चीजें चला रहा था जो समाज की जरूरत हों और जिनका सीधा नाता राष्ट्रीय आन्दोलन से नहीं दिखता।

खुद राष्ट्रपिता ने जब देश के लोगों और समाज के लिए काम करना, गुलामी-रंगभेद के अपमान को खत्म करने, मुल्क की आज़ादी और गोरी सत्ता को खत्म करने के साथ अपने कैरियर और परिवार की परवाह न करने का संकल्प किया तब वे न भारत में थे, न भारतीयों के लिए लड़ने का विचार उनके मन में था। दक्षिण अफ्रीका में उनकी लड़ाई हिन्दुस्तानी मूल के लोगों की थी, लेकिन उस हिन्दुस्तान में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जुड़ने का विचार आ गया था। स्वदेश लौटने पर राष्ट्रीय नेताओं से मिलना-जुलना ही नहीं राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में हिस्सेदारी भी गांधी ने की। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में वहाँ के मूलवासियों या सारे अश्वेत समुदाय के हकों की लड़ाई गांधी ने नहीं लड़ी जो संकोच बाद तक गांधी द्वारा बनाए आश्रमों के रहवासियों और उनके द्वितीय पुत्र मणिलाल गांधी को था। मणिलाल ने गोरी सत्ता को शांतिपूर्ण ढंग से चुनौती दी, अश्वेतों के बच्चों को आश्रम के स्कूल में दाखिला दिया लेकिन खुलकर उनके लिए आन्दोलन नहीं किया। और अभी तक काफी ऐसे गांधीवादी हैं जिन्हें यह भरोसा नहीं होता कि मोहनदास से महात्मा बने गांधी ने क्यों अपनी चिंता का दायरा हिन्दुस्तानी मूल के लोगों की समस्याओं तक ही सीमित रखा।

गांधी के अन्दर जब औपनिवेशिक शोषण, अन्याय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और भेदभाव से लड़ने का भाव आया तब उसका स्वरूप ठीक-ठीक वही नहीं था जो आज राष्ट्रवाद के नाम पर समझाया जा रहा है लेकिन गांधी के लिए हिन्दुस्तान राष्ट्र नहीं था या उनके हिन्दुस्तान प्रेम में कोई किन्तु-परन्तु था ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। उपनिवेशवादी शोषण से मुक्ति की उनकी लड़ाई का दायरा सीमित न था लेकिन यह था तो मुख्यत: हिन्दुस्तान के लिए ही और जब गांधी और हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन से पराजित होकर अंगरेजों के विदा होने का वक्त आया तो जाते-जाते उन्होंने षड्यंत्र से मुल्क के दो टुकडे करा दिए. इस बारे में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं और खासकर गांधी के नजरिए और औपनिवेशिक शासकों (अंगरेजों) के नजरिए के अंतर को समझना जरूरी है। अंगरेजों का मानना और दावा था कि हिन्दुस्तान नामक एक मुल्क तो था ही नहीं, इसे तो हमने बनाया है। उनका कहना था कि हिन्दुस्तान तो विभिन्न जातियों, धर्मों/पंथों, भाषा-भाषी लोगों का जमावड़ा था जिसमें कोई एकता नहीं थी और इसे तो हमने एक देश का स्वरूप दिया है। खुशवंत सिंह और नायपाल जैसे काफी सारे अंगरेज भक्त लोग अभी तक यह मान रहे थे। और कई बार जब हम भी बहुत ज़्यादा जातिवादी, साम्प्रदायिक या भाषायी क्षेत्रवाद का नजरिया अपनाते हैं तो लगता है कि अंगरेज सही बोलते थे। कई बार ये लड़ाइयाँ इतनी तीखी हो जाती हैं कि किसी तीसरे पक्ष से पंचायत कराना अधिक लाभकर लगता है।

गांधी और हमारे राष्ट्रीय नेताओं का मानना था कि भारत में दिखने वाली इतनी विविधता असल में बिखराव की चीज नहीं है। दरअसल हमारे यहाँ विविधता में बुनियादी एकता है। भारत भले राजनैतिक रूप से अंगरेजी हुकूमत वाले दौर की तरह एक इकाई न हो पर उसके सभी प्रदेशों, लोगों, मजहबों, भाषाओं और बोलियों में कोई आपसी बैर नहीं रहा है। हजारों साल से सभी मजे से साथ हैं और इनके बीच एक बुनियादी एकता है। गांधी के पहले के नेता इस स्थापना को सामने लाने के साथ ही उन सभी मोर्चों पर सक्रिय रहे जिनसे यह एकता दिखे या बढ़े। तिलक महाराज ने इसके लिए गणेश पूजा की मुहिम चलाई तो बंगाल में सार्वजनिक दुर्गा पूजा की शुरुआत उसी दौर में हुई, वरना पूजा पहले अपनी-अपनी बाड़ी की ही चीज थी। लिखने-पढ़ने-बोलने से लेकर अनेक तरह के आयोजनों के जरिए इस राष्ट्रीयता को स्थापित किया गया. राष्ट्रीयता की यह अवधारण काफी हद तक यूरोपीय थी और भारत ही नहीं पूरब के समाजों के लिए अनजान थी लेकिन जब पश्चिमी औपनिवेशिक सत्ता से लड़ना हो तो उसे उसी की जुबान में जबाब देना जरूरी था। केशव चन्द्र सेन जैसे लोगों ने ईसाई मत अपना लिया था लेकिन सती के देश भर में बिखरे अंगों के बीच एकता और सार्वजनिक दुर्गा पूजा के आयोजनों से उन्होंने अपना राष्ट्रवादी विमर्श आगे किया।

एक बडी पहल विवेकानन्द ने की-हिन्दुस्तान में समाज की जड़ता को तोड़ने और झकझोरने की। ऊँचे-ऊँचे दर्शन के बीच हिन्दुस्तानी ज्ञानी कथनी और करनी के भेद को भूल गया था। वह छुआछूत बरतने या औरत से दोयम दर्जे के व्यवहार को अनैतिक नहीं मानता था जबकि दर्शन और आध्यात्म की बहुत ऊँची-ऊँची बातों का ज्ञान उसे हासिल था। गांधी ने तिलक-पाल-सेन वाली लाइन के साथ विवेकानद की लाइन को भी माना, अपनाया और आगे बढ़ाया। बल्कि उन्होंने विवेकानन्द के लाइन को ज्यादा ही माना। समाज को एक करने, कमज़ोर और गरीब का पक्ष लेने से लेकर आर्थिक और राजनैतिक रूप से मजबूत राष्ट्र का निर्माण और दुनिया में अच्छे मूल्यों को आगे बढ़ाने वाले स्वतंत्र मुल्क के तौर पर भारत को विकसित करने के सपने को विवेकानद से भी ज्यादा गांधी ने आगे बढ़ाया। स्वामी जी को इसका ज्यादा वक्त नहीं मिला लेकिन गांधी ने हिन्दुस्तान लौटने के पूर्व ही यह राय साफ कर ली थी कि उन्हें कैसा हिन्दुस्तान बनाना है, उसकी दुनिया में क्या भूमिका होगी और पश्चिमी शैतानी सभ्यता का क्या विकल्प होगा। 'हिन्द स्वराज' वही कुंजीनुमा किताब है जो गांधी के पूरे नजरिए को साफ करते हैं और जिसके काफी बड़े हिस्से पर गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही काम किया-कराया। हम यहाँ हिन्द स्वराज पर चर्चा नहीं करेंगे।

हमने देखा है कि जो गांधी दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई में हिन्दू-मुसलमान एकता और औरतों की भागीदारी के साथ लड़ते हैं, भारत आते ही पंचम वर्ण अर्थात् अछूतों के साथ काम की रूपरेखा को अंजाम देने लगते हैं। चम्पारण पहुँचकर सबसे पहले महिलाओं की स्थिति पर चर्चा करते हैं। अपने पहले राष्ट्रव्यापी आन्दोलन में खिलाफ त के सवाल को केन्द्रीय बनाते हैं और चम्पारण से ही वैकल्पिक शिक्षा, ग्रामोद्योग, गोशाला-पशुपालन और स्वच्छता-स्वास्थ्य के प्रयोग शुरू करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राकृतिक चिकित्सा और शराबबन्दी की मुहिम चलाते हैं, हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का अभियान शुरु करते हैं, दक्षिण में हिन्दी प्रचार के लिए अपने बेटे समेत अनेक प्रियजनों को भेजते हैं। और देश को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने के लिए खादी की मुहिम उनके लिए जनून का रूप लेती है तो हरिजन उद्धार के लिए भीख मांगना उनकी राष्ट्रीय पहचान बन जाती है। वे पश्चिमी पोशाक और शानो-शौकत को अपनाने की जगह आम हिन्दुस्तानी की तरह लंगोट पर आ जाते हैं। उनके 'राष्ट्र' अर्थात रामराज्य में सिर्फ बराबरी, भाईचारा, सबकी बुनियादी जरूरतों का ख़्याल ही रखने की बात न थी, सबको सम्मान और निर्भयता का वायदा भी था। उनका हिन्दुस्तान सबको बराबरी का अधिकार अर्थात सार्वभौम मताधिकार की बात पहले दिन से करता है तो दुनिया में अन्याय के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाइयों में तभी मददगार की भूमिका निभाने लगा था। गुजरात की बाढ़, बिहार के भूकम्प जैसी आपदाओं को भी अपने से सम्भालने लगा था, गांधी ने तिरंगे का अपमान किया हो, उसकी परवाह न की हो इसका कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन गरीब के शरीर पर कपड़ा डालना उनका जनून था। उनके लिए राष्ट्रीय सीमाओं की रक्षा जरूरी चीज थी लेकिन किसी पड़ोसी को दुश्मन मानना जरूरी न था। उनके लिए खादी का खुरदुरापन या मोटे अनाज का भदेसपन समान व्यवहार की चीज थे। हर किसी को शिक्षित, स्वस्थ बनाना, सबके सिर पर छप्पर का इंतजाम करने, सबके पेट में भरपेट भोजन का इंतजाम करना सबसे बडी चिंता थे। हर औरत-मर्द से बराबरी का व्यवहार, सादगी, मितव्ययिता और अनुशासन में से कुछ भी दिखावटी और दूसरों के करने की चीज न थी। पक्का वैष्णव होते हुए भी मन्दिर जाने की जरूरत तभी महसूस हुई जब दलितों को मन्दिर प्रवेश कराना था। कई विश्वविद्यालय/विद्यापीठ और हजारों स्कूल-कॉलेज बनवाने का जतन किया पर कहीं मन्दिर-मस्जिद या ऊँची मूर्ति लगवाकर राष्ट्रवाद को आगे नहीं बढ़ाया। गांधी ने क्या-क्या किया, कैसे किया, किस सोच से किया यह गिनवाना आसान नहीं है पर उनकी दिशा, सोच और मंशा को बताना मुश्किल नहीं है।

अगर उनको राष्ट्रपिता कहा और गिना जाता है तो इसका सीधा सा मतलब है कि आज जो राष्ट्र है उसको बनाने, मौजूदा स्वरूप देने में उनकी भूमिका सबसे बड़ी, सबसे ज्यादा थी और जो राष्ट्र उन्होंने पाया वह सिर्फ औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के लिए दुनिया का माडल ही नहीं बना, अन्याय से लड़ाई में उनका हथियार सत्याग्रह आज सबका हथियार बन रहा है।

अगर उनको राष्ट्रपिता कहा और गिना जाता है तो इसका सीधा सा मतलब है कि आज जो राष्ट्र है उसको बनाने, मौजूदा स्वरूप देने में उनकी भूमिका सबसे बडी, सबसे ज्यादा थी और जो राष्ट्र उन्होंने बनाया वह सिर्फ औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के लिए दुनिया का मॉडल ही नहीं बना, अन्याय से लड़ाई में उनका हथियार सत्याग्रह आज सबका हथियार बन रहा है। गांधी की अहिंसा ही नहीं विकास का वैकल्पिक माडल दुनिया को मुक्ति का रास्ता नजर आता है और वह लोहिया की इस बुनियादी स्थापना को सही साबित करता है कि भारत जब-जब उदार हुआ है दुनिया में उसका विस्तार हुआ है और वे यह भी कहते हैं कि जब-जब कट्टरता बढ़ी है भारत कमज़ोर हुआ है खंडित हुआ है। आज राष्ट्रपिता के राष्ट्रवाद के साथ इस चीज को भी याद करने की जरूरत है।

मो. 9811826111

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी कहानियों में महात्मा गांधी का प्रभाव

महेश दर्पण
(प्रसिद्ध कथाकार, आलोचक, संपादक व पत्रकार)

निकट अतीत के जिन महापुरुषों के विचारों का प्रभाव भारतीय जन मानस पर सर्वाधिक पड़ा है, उनमें महात्मा गांधी का नाम सर्वोपरि है। उनके विचारों की छाया में स्वाधीनता संग्राम ही नहीं, स्वतंत्र्योत्तर भारत भी उठ कर खड़ा हुआ है। हिन्दी कहानी का जगत भी महात्मा गांधी के विचारों के प्रभाव में इस कदर रहा कि स्वाधीनता संग्राम के साहित्येतिहासकार प्रेमचंद तो जैसे गांधी से अनुप्राणित ही रहे। उनके बाद की अनेक कथा पीढ़ियों के रचनाकार भी गांधी से किसी न किसी रूप में प्रभावित रहे हैं। वे प्रभावित रहे हैं, इसीलिए आज का आम भारतीय भी गांधी को उसी तरह ग्रहण करता आ रहा है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि बड़े से बड़ा विचारक भी सर्वस्वीकार्य नहीं होता। यही वजह है कि गांधी की न सिर्फ भौतिक हत्या की गई, उनके विचारों की हत्या के प्रयास भी होते रहे हैं। पर क्या यह सहज कार्य है? क्या किसी विचार की हत्या की भी जा सकती है?

'गांधी' शब्द भर आ जाने से ही तो कुछ गांधीवादी नहीं हो जाता। अनेक रचनाएँ ऐसी हैं, जहाँ गांधी का जिक्र लाए बग़ैर उनके विचारों से प्रेरणा ग्रहण कर कहानियाँ कही जाती रहीं। आज तक यह सिलसिला थमा नहीं है।

इसे समझने के लिए, आइए ज़रा देखते हैं- प्रेमचंद, उषादेवी मित्रा, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विष्णु प्रभाकर, संतोष चौबे और प्रदीप पंत की ये कहानियाँ कैसा वैचारिक संघर्ष उत्पन्न करती हैं!

प्रेमचंद की अधिकांश कहानियाँ गांधी युग की तमाम समस्याओं को लेकर ही लिखी गई हैं। उनमें असहयोग आंदोलन की चेतना साफ नजर आती है। गांधी मानते थे कि ईमानदारी झूठ न बोलने से कहीं अधिक व्यापक है। यह सत्य ही कहना है, सत्य ही जीना है और सत्य से ही प्रेम करना है। इसीलिए उन्होंने कहा, 'खुद वो बदलाव बनिए जो दुनिया में आप देखना चाहते हैं।'

इस आलोक में 1913 में उर्दू में 'हमदर्द' में और बाद में हिन्दी में प्रकाशित 'नमक का दारोगा' कहानी को देखें, तो यह कहानी एक साथ अनेक काम करती है। शुरू में ही बता देती है कि जब नमक का नया विभाग बना तो क्या कुछ हुआ! एक-ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरीछिपे इसका व्यापार करने लगे। कोई घूस से काम निकालता तो कोई चालाकी से। दो-मुंशी वंशीधर को उनके पिता व्यावहारिक उपदेश देकर अपनी बातों को निगाह में बांध लेने को कहते है। वंशीधर को नमक का दारोगा बन जाने का अवसर मिल जाता हैं एक दिन वह इलाके के बड़े जमींदार पंडित अलोपीदीन को नमक की गाड़ियाँ ले जाते रोक लेते हैं।

अब कहानी में एक ओर ईमानदारी है और दूसरी ओर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह विश्वास कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का वास है। यही विश्वास था जो अलोपीदीन को बल दे रहा था। पर वंशीधर की रुखाईभरी ईमानदारी के आगे वे बेबस हो जाते हैं। क्योंकि वह उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं।

अंतत: कहानी में धर्म धन को पैरों तले कुचल डालता है। पर समय का यथार्थ तो कुछ और ही है। अदालत का न्याय तो पक्षपात के नशे से ग्रस्त है। फैसला अलोपीदीन के पक्ष में रहता है क्योंकि वंशीधर तो धन से बैर मोल ले चुके थे। सप्ताह बाद उनकी मुअत्तिली हो गई। बाहर ही नहीं, उन्हें घर पर भी सुननी पड़ी। इस सबका मूल था भ्रष्टाचार। एक तरफ वह था और दूसरी तरफ इंसान का धर्म। जिस पर गांधी सर्वाधिक बल दिया करते थे। पर प्रेमचन्द का कथाकार तो यह देख रहा था कि एक भ्रष्ट अलोपी को भी एक ईमानदार मैनेजर की जरूरत थी। लिहाज़ा वह कथांत में वंशीधर की शरण में जाता है और उसे मनाता है कि वह यह काम करने को तैयार हो जाए। साफ कहता है कि मुझे परास्त किया तो बस आपने। वह स्वेच्छा से वंशीधर के पास आया है। उसकी परमात्मा से प्रार्थना तो देखिए- ''...यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर, परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे।''

वंशीधर मैनेजरी के लिए तैयार हो जाते हैं और अलोपीदीन उन्हें गले लगा लेते हैं। यह प्रेमचन्द की भाषा में ईमानदारी के सामने भ्रष्टाचार का नत होना ही है। इसे ही गांधी ने कहा था- ''हर व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की आवाज सुन सकता है। वह सबके अंदर है।'' कहा तो यह भी था कि यह धरती सभी मनुष्यों की जरूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त साधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं। गांधी का यही प्रभाव प्रेमचन्द पर अनेक स्थलों में देखा जा सकता है।

उषादेवी मित्रा की कहानी 'संध्या' का प्रकाशन 1934 में 'माधुरी' में हुआ था। यहाँ रानी दुर्गावती के देवताल में प्रकृति की गोद में पली संध्या ही कथानायिका है। ज़रा देखें, कैसी है उसकी दुनिया- ''उसकी दुनिया में प्रेम था, व्याभिचार नहीं। सत्य था, असत्य नहीं। विश्वास था, कपटाचार नहीं। साहस था, भीरुता नहीं। स्वप्न था, वास्तव नहीं। खुशी थी, रंज नहीं। दया थी, निष्ठुरता नहीं। भक्ति थी, अभक्ति नहीं।''

यह कहानी अपने संवादों में यथार्थ मनुष्यत्व दिखाने की वकालत करते हुए अनायास गिरीश के साथ संध्या का विवाह करा देती है। पर गिरीश के घर के पश्चिमी संस्कृति के रंग में न रंगकर संध्या, अपने साथ लाया चरखा चलाती रहती। दरअसल, जिस दिन से उसने पति के मुँह से बिहार के विध्वंस की कथा सुनी, उसी दिन से सूत कातना शुरू कर दिया। वह बिहार के महाप्रलय के दृश्यों में खोकर दुखी हो जाती। उसने अपना संचित धन पति को देकर भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ भेजने को कह दिया। यह स्त्री ऐसी है कि उस सभ्य समाज से घृणा करती है, आंतरिक घृणा, जहाँ अपनी स्वाधीन इच्छा को बनाव-सिंगार के हाथ बेचना पड़ता हो। वह अनुकूलन के समर्थन में नहीं है अपने। वह चरखे को किसी हाल में स्वयं से अलग नहीं कर सकती। हाँ, भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए होने वाले भाषण को सुनने तुरंत पति के साथ चल पड़ती है। वहाँ वह अपने गहने उतार कर दान कर आती है। पति, बस देखता रह जाता है। पर वह सरलता से कह जाती है- 'मुझे गहनों की जरूरत नहीं।' वह उन्हें उन सब के लिए दे आयी जिन्हें उसने कभी देखा तक न था। वह समझती है कि उनकी जरूरत उन्हें हमसे लाख गुना अधिक थी। वह अपने पास रखे तमाम रुपये भी पीड़ित बिहार के लिए ही दे आई है। उसका मानस ही ऐसा है कि जात-पांत पर विचार ही नहीं करती। पर पति को उसी में डूबा देख अपने स्थान पर लौट आती है प्रकृति के बीच। क्योंकि वह सोचती है- 'जहाँ प्रेम, प्यार और भक्ति को तुच्छ समझा जाता है। विवाहिता स्त्री, सहधर्मिणी को, एक असहाय नारी को लोग जाति-विचार के पैरों तले बिना विचारे ही बलि दे देते हैं, कर्तव्य जहाँ एक खेल है, वहाँ- वैसी जगह मैं नहीं जा सकती।' पर कथा में यह भास गिरीश को बाद में हो आता है कि क्या इस असभ्य बालिका ने उच्च शिक्षा प्राप्त सभ्य हृदय को जीत लिया? वह देवताल जा पहुँचता है संध्या के समीप। जहाँ वह पानी पिलाकर अर्जित किए पैसे भी सहायतार्थ बिहार भेज देती थी।

कथाकार ने संध्या के माध्यम से गांधीवादी विचारों की विजय दिखाकर ही, फिर गिरीश-संध्या को एक कर दिया। बगैर गांधीवाद का शोर किए, यह कहानी उसकी जय-कथा कहती है। इस कहानी में समाज पर प्रभाव डालते गांधी के विचार तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, इसे लिखा भी एक महिला रचनाकार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने पूरी शिद्दत से है। बंगभाषी होने के बावजूद, इस रचनाकार ने हिन्दी साहित्य में पूरे पांच दशक योगदान किया। इस कहानी की मुख्य पात्र संध्या विचारों में कहीं पुरुष से कमतर नहीं। यही गांधी जी चाहते भी थे। वह बहुत साफ कहते हैं- ''महिलाओं के लिए कोई ऐसा कारण नहीं है कि वे अपने को पुरुषों का गुलाम अथवा पुरुषों से घटिया समझें। अत: महिलाओं को सलाह है कि वे सभी अवांछित और अनुचित दबावों के खिलाफ विद्रोह करें।'' ऐसे विरोध को गांधी तर्कसंगत और पवित्रता लाने वाला मानते थे। महिलाओं को कमज़ोर समझा जाना, वह पुरुषों की ओर से किया गया अन्याय मानते थे।

गांधी का विश्वास था कि ''स्त्री को पुरुष की खातिर, जिसमें पति भी शामिल है, सजने से इनकार कर देना चाहिए। तभी वह पुरुष के साथ बराबर की साझीदार बनेगी।'' इन विचारों की छाया में संध्या का एक-एक बर्ताव, उसे गांधीवादी विचारों के प्रभाव में बताता है।

'राजघाट में गांधी जी की समाधि पर' जैसी कहानी एक सच्चे गांधीवादी का रिएक्शन है जिसमें कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' बड़ी सहजता से आज़ादी के बाद बदल गए मूल्यों पर कटाक्ष करते हैं। इस कहानी का नायक जब कभी राजधानी आता है राजघाट पर गांधी जी की समाधि पर नियम से जाता है। यह उसके लिए एक तीर्थ की तरह है। पर जब उसे सूचना मिलती है कि उस सादी व सात्विक समाधि पर लाखों रुपये खर्च कर कुछ नया किया गया है तो उसके मन में सुई-सी चुभ जाती है। वह कथा की सह पात्र कुमारी ग्रेस ऑलिवर को एक लोक कथा के माध्यम से अपनी बात संप्रेषित करता है। उसकी पीड़ा दरअसल, स्वतंत्र होते ही देश में आ रहे उस बदलाव के कारण है जिसमें हर बात रुपये से तौली जाने लगी है। वह अनेक उदाहरणों के ज़रिए ग्रेसी को यह समझाता है कि गांधी जी की समाधि पर लगे लाखों रुपये ने उसके सारे सौंदर्य का अपहरण कर लिया है।

कहानी में सबसे आकर्षक वह संवाद है जो (मृत्युपरांत) बापू से किया गया है। इसमें गांधी के विचार बिल्कुल उन्हीं की मान्यताओं के अनुरूप हैं। यहाँ समाधि की शान से उनका दम घुट रहा है। आयरनी तो यह है कि जनतंत्र में जन ही सबसे पीछे रह गया है। यहाँ तक कि वह उस गेट से बापू की समाधि पर नहीं जा सकता जिससे बड़े लोग जाते हैं। बराबरी, समता और न्याय के पक्षधर बापू की समाधि पर भी उनके मूल्यों की अवहेलना देख कथानायक का दुखी होना स्वाभाविक है। कहानी में अनेक पुराने वाकयों के ज़रिए 'आत्मा का सूखना' उजागर होता है। यह इसलिए कि गांधी मितव्ययता के पुजारी थे, वैभव से उन्हें चिढ़ थी। इसीलिए राजघाट स्थित समाधि पर वह कराह सुनाई देती है जो वास्तव में पत्थरों के नीचे दबी गांधी जी की पवित्र किंतु बंदी आत्मा की है।

सादा जीवन, उच्च विचार को जीवन में उतारने वाले गांधी की सोच के ठीक उलट यह हमारे देश की चाल की सम्यक् समीक्षा है।

विष्णु प्रभाकर की कहानी 'मेरा वतन' सन् 1948 में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी कम और असलियत ज्यादा है। विभाजन ने जिस तरह भारत की जनता को बाँट दिया था, उसका परिणाम ऐसे ज़हर के रूप में फैलता गया कि इंसान इंसान न रहा। वह हिन्दू-मुसलमान हो गया। पर वतन भी कोई चीज होती है, वह धरती जिससे अपनी स्मृतियाँ जुड़ी होती हैं, उसे कोई विभाजन कैसे विस्मृत कर सकता है। इस कहानी के मिस्टर पुरी ऐसी ही गफलत में फंसे हैं। वह विभाजन के बाद लाहौर से अमृतसर आ जरूर गए हैं, पर बार-बार लाहौर उन्हें खींचता है और वे अपने वतन जा पहुँचते हैं।

कहानी में उनकी स्थिति और परिणति क्या है, इसे जानने से भी पहले यह जानना जरूरी है कि उसका मूल विश्वास क्या है! वह सोचता है- ''वतन, धरती, मोहब्बत! सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं? सबसे बड़ा मज़हब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बंदा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वही मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।''

ऐसा इंसान विभाजन के बाद के तनाव भरे माहौल में भी हर घर को अपना ही घर मानता है। पर ऐसा इंसान उन लोगों का क्या करे जो इंसान को हिन्दू और मुसलमान की तरह देखते हैं! लाहौर का मशहूर वकील मिस्टर पुरी वहीं एक मुसलमान द्वारा पिस्तौल से शूट कर दिया जाता है। तभी भीड़ में से हसन उसे पहचान लेता है और अस्पताल ले जाने का उपक्रम करता है। वह जब उससे वही प्रश्न करता है जो दूसरी ज़बान में उसके बेटे ने भारत में किया था, तब भी उसका जवाब है- ''मैं यहाँ क्यों आया? मैं यहाँ से जा ही कहाँ सकता हूँ? यह मेरा वतन है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हसन! मेरा वतन...।''

कहानी में कहीं गांधी का जिक्र नहीं, पर यह पूरी तरह उनके दर्शन की छाया में लिखी गई है। राजनीति की फांक कैसा बंटवारा कर देती है कि लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं! बावजूद इसके, क्या इंसानियत का माद्दा एकदम खत्म हो सकता है! कभी नहीं।

सच बात यह है कि अहिंसा गांधी के लिए एक अंतिम उम्मीद की तरह थी। बल्कि वह कहते भी थे कि भारत यदि अहिंसा को गावां देता है, तो संसार की अंतिम आशा पर पानी फिर जाएगा। गांधी की अहिंसा का अर्थ ही है अधिक से अधिक प्रेम। उनका विश्वास था कि इसी के बल पर मानव जाति की रक्षा हो सकती है। वह अहं पर नहीं, ईश्वर पर निर्भर होने का नाम ही अहिंसा मानते थे। उनके इन सिद्धांतों के आईने में यदि मिस्टर पुरी के विश्वासों को देखा जाए, तो विष्णु प्रभाकर का यह पात्र पूर्णत: गांधीवादी सिद्ध होता है।

संतोष चौबे की कहानी 'बीच प्रेम में गांधी' सन् 1993 में 'हंस' में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी के पात्र सौमित्र का, पति रूप में पत्नी माधवी के साथ बर्ताव बताता है कि प्रेम बजरिए देह कैसे तरंगित होता रहा है दोनों के बीच! इस प्रक्रिया में सहभागिता दोनों की रहती है, पर पुरुष स्त्री की ओर से इनकार सुनने का आदी नहीं, लिहाज़ा सौमित्र माधवी की शारीरिक थकन को महसूस तक नहीं कर पाता। उसे लगता है कि पत्नी को अब शायद उसमें आकर्षण ही नजर नहीं आता। सोचने-समझने वाला यह चरित्र दरअसल, प्रेम में दिल और दिमाग को ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मानता है, इसलिए उसका ध्यान कभी अपने ढलते और बेडौल होते शरीर ही नहीं, उड़ते हुए सर के बालों की ओर भी तभी जाता है जब उसे पत्नी की ओर से 'सोने दो भाई' सुनने को मिलता है।

स्त्री-पुरुष के पति-पत्नी संबंध पर वह इतना गहरे उतर जाता है कि उसे उस सात वर्षीय ग्रंथि की याद हो आती है जिसके तहत इस अवधि में आम स्त्री अपने पति से बोर हो जाया करती है। ऐसे में वह कहीं और दैहिक सहारा खोजने लगती है।

यह कहानी बड़ी खूबसूरती से स्त्री के साथ ही पुरुष पक्ष भी उजागर करती है। इसमें, वह खुद को किसी बड़ी बीमारी के बहाने दया या करुणा का पात्र बना पत्नी की निकटता पाने की सोचने लगता है। उसे अपने ही विचार प्रश्नों के घेरे में नजर आने लगते हैं। क्या विचार और व्यवहार सदा एक हो सकते हैं? स्त्री को पति से ऊब के कारण इस बात की स्वतंत्रता देने की सोचने वाला यह पात्र ऐसी स्थिति स्वयं पर आने पर कमज़ोर पड़ जाता है।

यहाँ पुरुष की विचार श्रृंखला ही उसे बेनकाब करती चलती है। पत्नी की कुछेक दिन की 'ना' उसके आत्मसम्मान को चोट पहुँचाती है, तो इसका कारण भी है। बगैर कहे, यह कहानी पुरुष के अधिकार भाव की मूक आलोचना ही है। उसकी सोच की नीचता को पर्दाफाश करते हुए बड़ी सहजता से यह रचना पुरुष को आत्मालोचना के दायरे में ला खड़ा करती है।

इस प्रक्रिया का अंतिम सिरा वह पाता है प्रेम करने की इच्छा का ही त्याग कर देने में। इसके पार्श्व में भी उसकी मूल चाह एक सैडिस्ट की है। उसे लगता है, यही वज़ह है जिसके कारण पत्नी उसे नीचा दिखा पा रही है। अनायास यहाँ नायक स्वयं को गांधी के निकट पाने लगता है। उसे ऐसे में सबसे सही आदमी गांधी ही लगने लगते हैं क्योंकि उन्होंने ही कष्टों से बचने की राह दिखाई हैं यह राह है- प्रेम और सेक्स की इच्छा का परित्याग। लेकिन यह कहानी इस विवरण भर से नहीं बनती। वह बनती है कथांत में पत्नी के बदले व्यवहार से। जहाँ वह बड़ी सहजता से पूछती है - 'सो गए क्या?' नायक के मौन को भी वह बाकायदा पढ़ लेती है और अपनी थकान का राज़ खोलती है। उसका एक चुंबन भर नायक के विचारों को हवा कर देता है। कहानी का अंतिम वाक्य है- 'गांधी जी पता नहीं कहाँ चले गए।'

पति-पत्नी के बीच के सहज शारीरिक बर्ताव को बड़े तरीके से सामने रखती यह कहानी बताती है कि वहाँ किसी बाहरी विचार के लिए कोई स्थान नहीं। गांधी होने के लिए भी नहीं। वहाँ तप और त्याग की सोच धरी की धरी रह जाती है। मूल विषय भले यह न हो, पर कहानी चुपके से कह जाती है कि गांधी हो जाना इतना भी सरल नहीं। वह विचार की तरह सौमित्र के ज़ेहन में कुछ समय के लिए भले ही घर कर गए हों, लेकिन तन और मन की चाहना के आगे वह ठहर नहीं पाते। माधवी अपनी सहजता से इस कहानी को बचा ले जाती है एक पत्नी की तरह। उसकी सोच और व्यवहार में उतना अंतर नहीं जितना उसके पति सौमित्र में है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतीप पंत की कहानी 'गांधी की तलाश में हत्यारे' कुछ समय पूर्व 'पहल-116' में प्रकाशित हुई थी। बदले हुए इस उन्मादी दौर में कैसे एक बार फिर गांधी की हत्या का प्रयास जारी है, यह इस कहानी के माध्यम से कथाकार ने दिखाया है। कहानी की खूबसूरती यह है कि वह गांधी को एक विचार के रूप में तरीके से स्थापित करते हुए कह जाती है कि 'गांधी एक विचार का नाम है और विचार की कभी हत्या नहीं हो सकती।' कैसा है यह बदला हुआ दौर? यहाँ हर कुछ एक चीज में बदल जाता है। उसे बेचा जा सकता है। इसका जीता-जागता उदाहरण हैं हमारे टीवी चैनल। जो गांधी के हत्यारों के प्रयासों को भी अपनी टीआरपी बढ़ाने का ज़रिया बना लेते हैं। विज्ञापनों का बाज़ार तो सब कुछ बेचने और खरीदने के लिए तत्पर खड़ा ही है।

अच्छी बात यह है कि तमाम कोशिशों के बाद भी असल गांधी की हत्या नहीं हो पाती जो विचारों में जीवित है। पर जो भी हो, खबरों का बाज़ार तो इससे गर्म रहता ही है। सारा का सारा दृश्य माध्यम चाहता भी यही है।

यह ऐसी कहानी है जिसे किसी खास व्याख्या की दरकार नहीं है। कहानी अपनी भाषा में बहुत कुछ साफ कह जाती है। प्रदीप पंत यूँ भी बहुत उलझी हुई कहानियाँ नहीं लिखा करते। वह बस इस हिंसक और विवेकहीन दौर की हत्यारी भीड़ की खीझ को सामने रखते हुए गांधी का महत्त्व रेखांकित कर जाते हैं।

गांधी के विचारों से प्रभावित बहुतेरी कहानियाँ और भी हैं, इन कहानियों के जरिए बस एक बानगी प्रस्तुत की गई है।

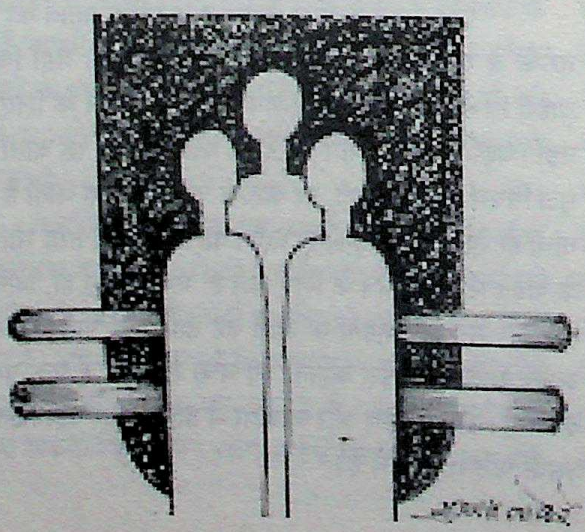

गांधी केन्द्रित कहानियाँ

नमक का दारोगा

प्रेमचन्द

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल-प्रपंचों का सूत्रपात हुआ। कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़कर लोग इस विभाग की बरंकदाजी करते थे। इससे दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था जब अंगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृंगार रस के काव्य पड़कर फारसीदां लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त करके मजनूं और फरहाद के प्रेम-वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्त्व की बातें समझते हुए रोज़गार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे, बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ है, वह घास-फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ। अब तुम्हीं घर के मालिक मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मज़ार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूंढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते फिर लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आदमनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है। तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊं। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरान्त जो उचित समझो, करो। गरज वाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दांव पर पाना जरा कठिन है। इन बातों को निगाह में बांध लो। यह मेरी जन्म-भर की कमाई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशी जी को सुख-संवाद मिला तो फूले न समाये। महाजन कुछ नरम पड़े, कलवार की आशालता लहलहाई। पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती हैं।

(2)

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आये अभी छह महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्यकुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर यमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगा जी किवाड़ बन्द किये मीठी नींद से सो रहे थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनायी दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वर्दी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाये हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल के पार जाती देखी। डांट कर पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ कानाफूंसी हुई तब आगे वाले ने कहा- पंडित अलोपीदीन की।

''कौन पंडित अलोपीदीन?''

''दातागंज के।''

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये का लेन-देन करते थे, इधर छोटे-से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा-चौड़ा था। बड़े चलते-पुरजे आदमी थे। अंगरेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुंशीजी ने पूछा, गाड़ियाँ कहाँ जायेंगी? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का संदेह और भी बढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देखकर वह ज़ोर से बोले, क्या तुम सब गूंगे हो गये हो? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिलाकर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के डले थे।

(3)

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराये हुए आकर जगाया और बोले-महाराज! दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती हैं। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कह कर पंडित जी ने बड़ी निश्चिन्तता से पान के बीड़े

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लगाकर खाये। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले, बाबू जी आशीर्वाद! कहिए, हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि गाड़ियां रोक दी गयीं? हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपादृष्टि रहनी चाहिए।

वंशीधर रुखाई से बोले, सरकारी हुक्म!

पं. अलोपीदीन ने हँसकर कहा, हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जायं और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें! मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था। वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नयी उमंग थी। कड़क कर बोले, हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। आपका कायदे के अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।

पं. अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाड़ीवानों में हलचल मच गयी। पंडित जी के जीवन में कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि पंडित जी को ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलूसिंह आगे बड़ा, किंतु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडित जी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दंड लड़का है। माया-मोह के जाल में अभी नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीन-भाव से बोले, बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएंगे। इज्जत धूल में मिल जायेगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आयेगा! हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं!

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन-ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किंतु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, लाला जी, एक हजार के नोट बाबू साहब की भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधर ने गरम होकर कहा, एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव-दुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुंझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल-उछलकर आक्रमण करने शुरू किये। एक से पांच, पांच से दस, दस से पन्द्रह और पन्द्रह से बीस हजार तक नौबत पहुँची, किंतु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भांति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले, अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलूसिंह मन में दारोगा जी को गालियां देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बड़ा। पंडित जी घबराकर दो-तीन कदम पीछे हट गये। अत्यंत दीनता से बोले, बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।

''असम्भव बात है।''

''तीस हजार पर।''

''किसी तरह भी सम्भव नहीं।''

''क्या चालीस हजार पर भी नहीं?''

''बदलूसिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।''

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिये हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद यकायक मूर्छित होकर गिर पड़े।

(4)

दुनिया सोती थी, पर दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे देखिए तो बालक-वृद्ध सबके मुँह से यही बात सुनायी देती थी। जिसे देखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाट कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार, यह सब के सब देवताओं की भांति गर्दनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त होकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दन झुकाये अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गयी। मेलों में कदाचित् आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा। किंतु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील मुख्तार उनके आज्ञापालक और अर्दली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आये। ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आये। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूनि प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गयी। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किंतु लोभ से डांवाडोल।

यहाँ तक कि मुंशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परंतु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल ? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकद्दमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज में लिखा, पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उसकी उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भले मानुस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम से सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक से मुकद्दमे की बरी हुई नमक हलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कराते हुए बाहर निकले। स्वजन बांधवों ने रुपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंगबाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किये। किंतु इस समय एक-एक कटुवाक्य, एक-एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्वलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकद्दमे में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वत्ता, लम्बी-चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी-बड़ी दाड़ियां और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुँचा। कार्य-परायणता का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढ़े मुंशी जी तो पहले ही से कुड़बुड़ा रहे थे कि चलते-चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी! सब मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बनकर बैठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अंधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दीया जलायेंगे। खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरवस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिताजी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता-पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्ध माता को भी दुख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गयीं। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुँह से बात भी नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। संध्या का समय था। बूढ़े मुंशी जी बैठे राम-राम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर सजा हुआ रथ आकर रुका हरे और गुलाबी परदे, पछहियें बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगें पीतल से जड़ी हुई। कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे। मुंशी जी अगवानी को दौड़ें। देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं। झुककर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दंडवत् की और लल्लो-चम्पो की बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वार पर आये। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन-सा मुंह दिखावें, मुंह में तो कालिख लगी हुई है। किंतु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता? ईश्वर, निस्संतान चाहे रक्खे, पर ऐसी संतान न दे।

अलोपीदीन ने कहा- नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए। मुंशी जी ने चकित होकर कहा- ऐसी संतान को और क्या कहूँ?

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा- कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें?

पं. अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा- दारोगा जी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार-बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किंतु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किंतु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूँ।

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठकर सत्कार किया; किंतु स्वाभिमान सहित। समझ गये कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आये हैं। क्षमा-प्रार्थना की चेष्टा नहीं की; वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुर-सुहाती की बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पंडित जी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गयी। पंडित जी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शरमाते हुए बोले-यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ों में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथे पर।

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा- नदी तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले- मैं किस योग्य हूँ, किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रख कर बोले- इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूंगा।

मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पड़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आये। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने को बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले- पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूं! किंतु मैं ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हंस कर बोले- मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है।

वंशीधर ने गम्भीर भाव से कहा- यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि है, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ, अनुभवी मनुष्य की जरूरत है।

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले, न मुझे विद्वत्ता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य-कुशलता की। इन गुणों के महत्त्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वत्ता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच-विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौव्त, उद्दंड, कठोर, परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाये रखे!

वंशीधर की आँखें डबडबा आयीं। हृदय के संकुचित पात्र में इसका एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और कांपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज पर हस्ताक्षर कर लिये।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संध्या

उषादेवी मित्रा

स्वप्नमय आकाश के तले कोहरे की चादर ओढ़े पृथ्वी दबी हुई बैठी थी- शांत बालिका जैसी।

'सखीताल' के किनारे आमों के घने झुरमुट में जीवन खिलखिला पड़ा।

'जागो सखी', 'पी कहाँ', 'पिया-पिया'- रूप, रंग, रस, गंध के विचित्र समावेश में प्रकति के श्रेष्ठ वरदान उन पक्षियों ने गीत की वर्षा-सी लगा दी। जैसे वे अपने सुरीले संगीत में अभिनंदन करते हों- शायद पृथ्वी-आकाश को, शायद प्रकृति की नवीनता को, कदाचित् दुर्गावती की सखियों की स्मृति को।

आमों के पत्तों में खलबली मच गई खुशी की हरियाली से। गौरइयाँ सीताफलों की डालों पर चहचहाने लगीं- शायद पृथ्वी आकाश को एकाकार करना चाहती हो। मोर सीताफल ले भागा। बुलबूल अपने सुरीले स्वर को भूल बैठी कुछ देर के लिए।

'प्यासा हूँ, प्यासा हूँ।' छोटे-बड़े काले पत्थरों की आड़ से पपीहे का दर्द-भरा स्वर गूंजने लगा; कौन जाने, कौन-सी वह गंभीर व्यथा-भरी अमर स्मृति, इस मतवाली खुशी में भी, उसके छोटे से हृदय को दु:ख की शिखा से जला रही थी, शायद गड़ामंडला की रानी दुर्गावती की सखियों की अविनाशी आत्मा की याद हो।

क्षण-भर में वह आनंद की झड़ी सहम-सी गई। हजारों नीरव मिलित दीर्घ श्वास मंडराने-से लगे, 'सखीताल' के जल में, हर बालकण में। जल स्तंभित-सा हुआ। पल-भर के लिए पाजेबों की-सी मीठी झुनझुनाहट झाड़ी-झुरमुटों में मिल-सी गई।

''उठो, बेटी संध्या!'' उसकी दादी ने बाहर से पुकारा। कुटी के द्वार पर बैठी वह छोटे-से सरौते से सिंघाड़े काट-काटकर टोकनी में रख रही थी। संध्या बेसुध-सी पड़ी रही। कुटी के भीतर तब भी निशा की गहरी अंधेरी छाई हुई थी।

''उठो संध्या, सवेरा हो गया।''

इस बार वह बाहर आकर खड़ी हुई। प्रकृति ने अपने चिरनूतन समुद्र में उसे नहला दिया; आलस्य, जड़ता जाती रही, उसने कौतुक-भरी दृष्टि फेरी, सवेरे का वह अभिनव प्रकाश आम और सीताफलों के झुरमुट में मूर्च्छित-सा हो रहा था। शाखा-प्रशाखा के नीचे कहीं झिलमिली थी तो कहीं छाया, कहीं पूर्ण प्रकाश, कहीं गहरा अंधकार, मानो चलचित्र का कोई खेल चल रहा हो।

झाड़ी-झुरमुट, पेड़-पौधे, पहाड़-पत्थरों को लांघती, बरगद और आम के नीचे से झरने के किनारे-किनारे वह आगे बढ़ी। जंगली मुर्गी, तीतर-बटेरों से बात करती, मुस्कुराती वह उस महाराज सागर के किनारे पहुँची, जहाँ नीले कमलों पर करोड़ों मधुमक्खियाँ और भौंरे गुनगुना रहे थे। प्रकृति वहाँ अचेत-सी पड़ी थी। अलसाई गति से वह उस गोल चबूतरे के पास जाकर खड़ी हो गई।

सांपों की सीटी से आतंक के बदले उसका अंतर आह्लाद से भर उठा। शायद प्रकृति के उस मोहनी रूप से इस भयानक रूप को उसकी आत्मा अधिक पसंद करती हो। सांपों को उसने पुकारा परम स्नेह से। फिर उन लता-गुल्मों को धीरे से हटाकर वह कमल तोड़ने लगी। मधुमक्खियाँ उसके रूखे बालों की जटा में छिपने लगीं, खेलने लगीं। थोड़ी देर उनसे खेलकर वह लौटी। इस बार उसकी चाल तेज थी।

दादी को फूल और सुई देकर वह पीछे नहीं, सामने की ओर बड़ी। दादी जब तक माला गूंथेगी, तब तक वह 'देवताल' के सभी मंदिरों को झाड़कर स्नान करने लगी। 'सखीताल' के किनारे से होती वह उन थोड़ी-सी पत्थर की सीढ़ियों से नीचे उतरी; उस घने आम के नीचे कुछ देर ठहरकर आगे बड़ी।

देवताल के चारों ओर के तरह मंदिरों को झांककर संध्या तालाब की सीढ़ियाँ पार करती पानी में उतरी। उसने एक बार देवताल के चारों ओर की पत्थर की सीढ़ियों पर दृष्टि फेरी। दो सफेद बगलों को अपना साथी पाया और तालाब-भरे हरे सिंघाड़े। शीघ्रता से स्नानकर, सूखे कपड़े पहनकर मंदिरों को पीछे छोड़ती हुई वह सीढ़ियाँ तय करती देवताल के नीचे उतरी। वहाँ के मंदिर और संस्कृत-पाठशाला साफ करने की वह आज भूल गई थी।

(2)

''आज इतनी देर क्यों लगाई, बहन?'' उस छात्र ने बड़े भाई ही की तरह पूछा।

''सो गई थी, भैया।''

''मैंने झाड़ लिया है, तुम शिवजी की पूजा कर लो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंडितजी आते होंगे।''

''कापी और पेंसिल आज भी दादी नहीं लाई।''

''डरो मत, मैं कल जबलपुर से खरीद लाया हूँ। पाठ तो याद कर लिया है न?''

''हाँ भैया।'' वह प्रसन्न हो रही थी।

उसने नीचे के मंदिरों में भी शिव की पूजा की। उस छोटी-सी मिठाई की दुकान पर से बूढ़ा हलवाई सदा की भांति पुकारने लगा, ''संध्या बिटिया, यह गुड़ के सेव ताजे बने हैं, खाकर पानी पी लो।''

पाठ याद करते-करते उसने दोना खाली कर दिया। उस आरोग्यदायक 'शंकर कुंड' झरने के ऊपर वाली साफ चट्टान पर बैठे हुए साधु भौरियाँ पका रहे थे। एक ने पुकारा,

''आओ बिटिया, रोटी खा लो!''

किसी प्रकार दुविधा-संकोच किए बिना ही वह चल पड़ी। बोली, ''दो महाराज, भूख भी ज़ोर की लगी है।''

''बारह बज रहा है, भूख तो लगेगी ही। फिर अभी तक आई क्यों न थी?''

''भूल गई थी।''

''बुढ़िया आज उतरी नहीं?''

''नहीं, वह सिंघाड़े ताकती होंगी। कल जो बाबू लोग आए थे, उन्होंने सिंघाड़े चुरा लिए थे। दादी आज माला तक बेचने न जाएँगी; मुझी को जाना पड़ेगा।'' भौरी का टुकड़ा मुँह में भरे हरी मिर्च दांत से काटकर उसने कहा।

''तो ऐसे कितने सिंघाड़े चुराए थे?''

''नहीं, तोड़े तो ज्यादा नहीं थे, लेकिन खींचने से उसकी बेल खराब हो जाती है न। मैं मना करती ही गई, पर वे माने नहीं। बड़े आदमी भी कैसे चोर होते हैं, महाराज।''

''अमीर नहीं तो क्या हम गरीब चोर होते हैं। धनवानों की बेईमानी ही से तो आज पृथ्वी इतने नीचे उतर गई है; पाप के बोझ से दबी जाती है।'' साधु अपनी पकी मूँछों पर हाथ फेरने लगा।

''फिर क्या हुआ?'' दूसरों ने आग्रह से पूछा।

हाथ धोकर उत्साह के साथ वह कहने लगा, ''पहले विनय की, डराया-धमकाया, पर वे सबके सब दाँत निकालने लगे। दादी सीताफल बेचने शहर गई थी। रामबाई की मां को पुकारा; पर देवताल के नीचे तक मेरी आवाज न पहुँची होगी।

''अमीर नहीं तो क्या हम गरीब चोर होते हैं। धनवानों की बेईमानी ही से तो आज पृथ्वी इतने नीचे उतर गई है; पाप के बोझ से दबी जाती है।''

मैं उस ओर थी, और वे थे इस ओर। गुस्सा आ गया महाराज, मार ही तो दिया पत्थर फेंककर। उनमें से जो सबसे सुंदर था, उसी के माथे में पत्थर लगा, खून निकला होगा जरूर। वे सब मुझे पकड़ने दौड़े, मैं भागी, लेकिन कुछ दूर पर पत्थरों की ठोकर खाकर गिर पड़ी।''

''यह बुरा हुआ; फिर क्या हुआ बेटी?'' अभी तक बड़े गर्व के साथ वे सुनते जाते और बीच-बीच में संध्या की प्रशंसा करते एवं उसकी पीठ ठोंककर 'वाह-वाह, शाबाश' की आवाजें लगाते जाते थे। परंतु अब साधु की आँखें लज्जा से झुक गई। उत्साह का लेश भी उसके कंठ में न था। वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। ''पहले सुनिए तो, अच्छा आप ही कहिए, फिर क्या हुआ?''

''तुझे मारा होगा।''

''नहीं भाई, मारते कैसे! जवान लड़की है, डांटा होगा।'' दूसरे साधु ने कहा।

''नहीं हार गए। भला मुझे वे कमीने क्या मारेंगे! मैं आम के पेड़ पर चढ़ गई, वे सबके सब निहारते ही रह गए। पीछे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सब लोग हंसते जाते थे, महाराज। उतरने को कहते थे, मैं उतरी नहीं और न बोली ही। हाँ, पत्थर जो मेरे आंचल में भरे थे, उनसे मारती जाती थी। वे भागे। तब मैं भी जल्दी से उतरकर उनके पीछे दौड़ी और पत्थर से मारने लगी।'' वह ताली बजाकर हंसने लगी।

संध्या पर प्रशंसा व आशीर्वाद की वर्षा-सी होने लगी,

''अब वे अपना मुँह देवताल की ओर कभी न फेरेंगे।''

''आवें तो क्या, मैं उन्हें फिर मारूं....''

''अरी संध्या, इन्हें पानी तो पिला दे।'' रिनकिया की सास कई युवकों के साथ उसके निकट ही खड़ी थी। बातों में लगकर न तो संध्या ने उन्हें देखा था और न साधुओं ने।

विस्मय का अथाह समुद्र संध्या की आँखों के सामने लहराने लगा। केवल विमूढ़ भाव से वह देखती ही रह जाती, यदि वह युवक उसे न पुकारता।

''सिघाड़े तोड़ने की निशानी तो जन्म-भर के लिए दे चुकी हो। आज पानी पिलाकर उसी जीवन की रक्षा करो, जिसे कल नष्ट करने पर तुली हुई थीं।'' युवक हंस रहा था। उसके सिर में पट्टी बंधी थी।

सद्व्यवहार के निकट रूढ़ता ने अपने-आप ही शरमाकर मुँह फेरा।

संध्या लजा गई। जीवन में प्रथम बार। संध्या लोटे में भर-भरकर मीठा पानी सभों को पिलाती जाती थी। उसके चारों ओर नर-नारियों की भीड़ लग गई थी। एक पैसे से लेकर चवन्नी तक का ढेर लग गया था। वे पैसे उसके पानी का उपहार थे, बिना मांगे लोग खुशी से देते थे।

जबलपुर से कोई तीन मील की दूरी पर रानी दुर्गावती के देवताल में प्रकृति की गोद में वह पली थी।

पिता-माता की मृत्यु के बाद दादी और वह रहती थीं। यहाँ के सभी लोग उसे चाहते थे। किसी प्रकार का अभाव न था। तालाब में सिघाड़े बो देती थी। कच्चे आम, सीताफल, इमली, बेर, कमल के फूल, सिघाड़े आदि दादी बेच आती थी। आरोग्य-झरने का पानी वह बेचती थी। हजारों आदमी संध्या-सवेरे 'शंकर कुंड' का पानी पीने आया करते थे। उस कुंड का पानी आरोग्यता के गुण से भरा हुआ था। उसके पीने से पेट की हर तरह की बीमारी जाती रहती। साहब और अमीरों के नौकर बोतल व घड़ा लिए घंटों खड़े रहा करते।

उसके जल के पैसे दादी कभी नहीं छूती थी। वे सब रुपये कभी संध्या संस्कृत-पाठशाला को तो कभी किसी भले काम में दान कर देती। देवताल, सखीताल और महाराज-सागर था उसका घर-द्वार, वहाँ के मंदिर थे उसकी दृष्टि में कला की उत्कृष्ट सृष्टि; कुंड था पवित्रता के श्रेष्ठ वरदान, पाठशाला थी ज्ञान व शिक्षा का चरम उत्कर्ष और दादी और साधु थे महत्त्व के प्रधान आदर्श।

(3)

हाँ, दुनिया उसकी छोटी थी-बहुत संकीर्ण। परंतु प्रकृति और साहस की ओर से थी विशाल। उसकी दुनिया में प्रेम था, व्यभिचार नहीं। सत्य था, असत्य नहीं। विश्वास था, कपटाचार नहीं। साहस था, भीरुता नहीं। स्वप्न था, वास्तव नहीं। खुशी थी, रंज नहीं। दया थी, निष्ठुरता नहीं। भक्ति थी, अभक्ति नहीं। दुनिया उसकी ससीम थी, असीम नहीं।

देवताल के जल को ढ़के हुए सिंघाड़ों का हरा जाल पड़ा हुआ था, जाड़े की मीठी धूप से उसकी हरियाली चमक रही थी।

छोटी-सी नाव पर संध्या दादी के साथ बैठी सिंघाड़े तोड़ रही थी। कभी दो तोड़ लेती तो कभी चार मुँह में भर लेती, दस-पाँच तालाब के किनारे फेंक देती। उन युवकों को जोकि खड़े-खड़े उससे बातें करते जाते और नरम मीठे सिंघाड़े खाते जाते थे।

दादी बातें भी करती जाती और काम भी। वे युवक पानी पीने को रोज आया करते। अब दादी व संध्या उन्हें आदर से बिठातीं, सीताफल, सिंघाड़े खिलातीं और कभी गरम-गरम भुने चने। संध्या अकेले में अपनी दादी से हँसी करती, ''मैंने पत्थरों से मारकर गिरीश बाबू को ऐसा परकाया कि...'' बात पूरी न होने पाती, वह हँसते-हँसते लोट जाती।

दादी डांटती, धमकाती, ''बड़ी शैतान है। भले आदमी, उस पर बारिस्टर साहब को तूने मार तो लिया ही, ऊपर से हँसी भी उड़ाती है।''

तब वह चुटकियाँ बजा-बजाकर गाने लगती। अंत तक दादी भी हंस देती।

अचानक पृथ्वी कापी, पेड़-पौधे, जल-मंदिर सभी कांपने लगे। युवक एक-दूसरे से टकरा गए। भीत कंठ से दादी चिल्लाने लगी, ''भूडोल है, बचाओ बचाओ, नाव डूबी।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाव डगमगाने लगी। संध्या की दृष्टि में भय की जरा-सी छाया तक न थी, था कोतूहल और अगाध विस्मय। भूडोल की कल्पना तक उसे न थी। इस भयानक वस्तु से वह प्रथम बार परिचित हो रही थी। मोटे वृक्ष जड़ से उखड़कर गिर पड़े। वह उस ओर भली भांति देखने न पाई थी कि ऊपर की जमीन फट गई, एक मंदिर कुछ फट गया। उसने युवकों की ओर दृष्टि फेरी, उनकी दशा देखकर वह खिलखिला पड़ी। पानी से संध्या और दादी भीग चुकी थीं, सिंघाड़ों को ठेलकर कभी जल ऊपर उठ जाता, कभी नाव सहित नीचे चला जाता।

दो ही एक मिनट के भीतर नाव लौट पड़ी। गिरीश और उसके मित्रों ने मिलकर जब दादी व संध्या को तालाब से बाहर निकाला, तब पृथ्वी शांत हो चुकी थी। संध्या संभल चुकी थी। पर दादी की दशा खराब थी।

एक मंदिर की दालान में दादी को लिटा दिया। कुटिया दूर थी। देवताल-निवासी और संस्कृत-पाठशाला के गुरु से लेकर छात्र तक उसे घेरे आंसू बहा रहे थे। संध्या एक ओर कठपुतली-जैसी बैठी थी। हंसी और आनंद की समाधि हो चुकी थी। दादी ने आँखें खोलीं, ''तुम ब्राह्मण हो या कायस्थ ?'' बड़े कष्ट से रुक-रुककर उसने पूछा, शायद गिरीश से या उसके साथियों से।

''हम दोनों ब्राह्मण है। क्यों, क्या कुछ जरूरत है, दादी ?'' उसे सभी दादी कहते थे।

आनंद से वह मृत्यु-मलिन मुख उज्ज्वल हुआ। ''यहाँ आओ गिरीश, मैं अपनी संध्या को तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।''

मैं उसका पालन निश्चय करूंगा।'' गिरीश ने भूल की, गहरी भूल।

''तो तुम सब साक्षी हो और मंदिर के देवता भी। मेरे जीते-जी ब्याह कर दो, भैया।'' उसने साधु से कहा।

''यह आप क्या कहती है ? असंभव है ?'' विपुल विस्मय से गिरीश चिल्ला पड़ा।

दादी की आँखों से आंसू बह चले, ''फिर क्या होगा ? अपनी संध्या को किसे सौंप जाऊंगी।''

मरण-पथ यात्री के वेदना-भरे उन शब्दों की करुण झंकार लोगों पर व्याप-सी गई। प्राय: सभी के हृदय विकल हो पड़े।

''आदमी होकर जानवर का काम मत करो, भैया।'' साधु चिल्लाने लगे।

''यथार्थ मनुष्यत्व दिखाने का यही अवसर है।'' धीरे से गुरु ने कहा।

''देवता के सामने हामी भरकर अब पीछे हटना क्या दिल्लगी समझ लिया है ? हमारी बहन क्या लंगड़ी-कानी है ? हजारों में ऐसी एक लड़की ढूंढ़कर निकालो तो सही।'' छात्रों ने त्यौरियाँ बदलीं।

''आदमी ही आदमी के काम आते हैं। छि: छि: गिरीश, आज मुझे मालूम हुआ कि तुम क्या हो। यदि तुम्हें रुपयों का लालच है तो दादी के बदले हमसे ले लेना, पर ऐसे वक्त पर मनुष्य का काम करो, भाई।'' उसके मित्र कहने लगे।

उन सभी के और अपने मित्रों के धिक्कार के आगे गिरीश एक शब्द भी कह न सका और न उसे सोचने-विचारने ही के लिए समय मिला।

देखते-ही-देखते सामान इकट्ठा हो गया। आधी रात के भीतर ही भीतर विवाह हो गया। उसी समय दादी के जीवन का भी अंत हो गया।

(4)

जबलपुर के साफ-सुथरे सिविल लाइन के एक सजे हुए बंगले में वर-वधू मोटर पर से उतरकर खड़े हुए। किसी प्रकार का मंगलाचार था ? नहीं। शहनाई का मिलन-गीत था ? नहीं। हाँ, कई कौतूहली, विस्मित, रहस्यपूर्ण दृष्टियां अवश्य ही थीं, जो उन दोनों के सिर से पैर तक बार-बार पड़ रही थीं। वे दृष्टियां थीं गिरीश की दोनों बहनों और नौकरों की। गिरीश के पिता न

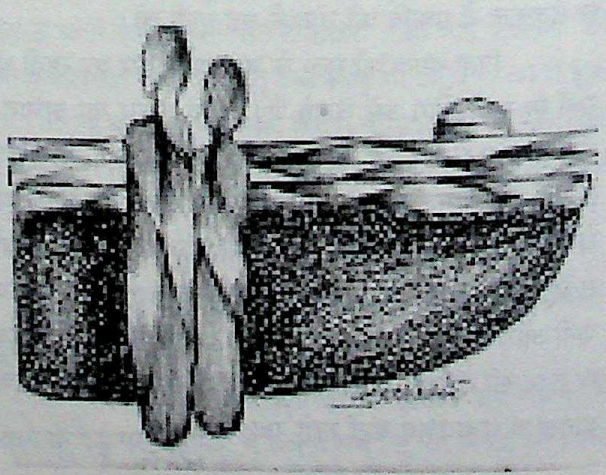

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे, थीं माता। उनकी दृष्टि में न तो विस्मय था और न विराग, थी केवल प्रचुर उदासीनता।

''माँ!''

''ठहरो, मैं दुलहिन को लिवा ले जाती हूँ। तुम तब तक हाथ-मुँह धोकर चाय पी लो।''

संध्या रहने लगी उस स्थिति में, जैसे एक जंगली जानवर सभ्यता के कमज़ोर सोने के कठघरे में बंद रहता हो। वह उस निराले ढंग के चाल-चलन, रहन-सहन से ऊब तो जरूर जाती, पर अपनी चाल-चलन, शिक्षा आदि से शरमाती नहीं और न झेंपती थी। उसकी शिक्षा और असभ्य बरताव को लेकर सारे दिन समालोचना, विद्रूप परिहास चला करता। अवहेलना के साथ वह उस ओर से मुँह फेर लेती। हजार सिर पीटने पर भी उसने जूते नहीं पहने। भोजन के लिए टेबल पर भी नहीं बैठी। उसने अपना परिवर्तन कुछ भी न किया। इस जीवन में वह संतुष्ट थी या असंतुष्ट, यह उसे देखकर समझना मुश्किल ही नहीं, वरन् असंभव था। पति को वह चाहती थी-कदाचित् देवता से भी अधिक।

संध्या समय गिरीश का ड्राइंगरूम पियानो की सुरीली आवाज व नर-नारियों की हँसी-खुशी से भरा हुआ था। घर के सभी लोग वहाँ उपस्थित थे। गिरीश की मां तक। केवल संध्या का कहीं पता न था। वह नित्य की भांति उस छोटे-से कमरे में बैठी चरखा चला रही थी। वह चरखा अपने घर से साथ लाई थी। पहले दादी इसमें सूत कातकर कपड़े बनाती थी। कमरे की खूंटियों पर सूत के ढेर लटक रहे थे। जिस दिन पति के मुँह से उसने बिहार के ध्वंस की कहानी सुनी, उसी दिन से सूत कातना शुरू कर दिया। बात ज्यादा कुछ न थी। वह दादी के लिए रो रही थी। गिरीश ने कहा, ''भूडोल में तो एक तुम्हारी दादी ही गई, जबलपुर का ऐसा कुछ अनिष्ट हुआ नहीं, कचहरी जरा फट गई इधर-उधर के मकान थोड़े-बहुत; पर बिहार प्रांत में तो महाप्रलय ही हो गया!''

आश्चर्य से उसने पूछा, ''कैसे?''

''इसी भूडोल से। कहीं पृथ्वी फट गई। उसमें घर का घर समा गया, तो कहीं फटी हुई जमीन में से गरम पानी, गंधक आदि की वर्षा हुई; कहीं मकान व पेड़ों के नीचे सैकड़ों आदमियों की जीवित समाधि हो गई। केवल यही नहीं, कहीं चार-पाँच दिन तक भी उसी दशा में कई लोग जीते रहे। जो कोई जीते रहे, उन्हें खाने को नहीं, पानी नहीं, बैठने की जगह नहीं, ऊपर से वर्षा और नीचे भूकम्प। कई बार कई दिनों तक पृथ्वी हिली।'' वह सिहर उठी, ''तो वे भागे क्यों नहीं?''

''भागकर जाते कहाँ! तिल बराबर जमीन भी साबुत न थीं कहीं कई मीलों तक धरती फटी हुई थी, मकानों के गिरने से रास्ता भी था कहीं? प्रलय था। अच्छा मैं अख़बार लाए देता हूँ। हिंदी-संस्कृत भली-भांति जानती हो। उनमें और साप्ताहिक व मासिक पत्रिकाओं में सभी बातें और चित्र हैं, पढ़ो। अंग्रेजी के भी कई साप्ताहिक-मासिक भेजूंगा। अंग्रेजी नहीं जानतीं तो उन चित्रों को समझ सकती हो।''

बस, उसी दिन से वह उन चित्रों को घंटों देखा करती। उस भयानक दृश्य से उसका छोटा-सा कलेजा दहल उठता, आंसू की धार बह चलती-कैसा भीषण सर्वग्रासी दृश्य है! पानी पिलाकर कमाया हुआ धन जो कुछ उसके पास था, वह उसने अपने पति को दे दिया और कहा, ''इन रुपयों को भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए भेज दो।''

पत्नी के इस दान से गिरीश को प्रसन्नता ही हुई। अब संध्या के पास पैसे न थे; उसने चरखा कातना शुरू कर दिया। इसी सूत के कपड़े बनवाकर वह भेजेगी। इस बात पर ननदें परिहास करतीं, पर वह अनसुनी कर देती।

चरखा कातते-कातते वह रुकी। गिरीश ने पुकारा, ''चलो, मेरे मित्र तुमसे मिलना चाहते हैं।''

वह बिना प्रतिवाद के जाने के लिए खड़ी हो गई।

''इन्हीं मोटे, मैले कपड़ों से जाओगी, और खाली पैर?'' वह विरक्त हो रहा था।

''हाँ!'' दृढ़ता के साथ उसने कहा।

''तुम्हारे लिए आज मुँह दिखलाना कठिन हो रहा है।''

''क्यों?'' वही विस्मय-भरा प्रश्न था।

''क्योंकि तुम जंगली जबरन ही मेरे गले मढ़ दी गई हो। फिर भी मुझे संतोष होता, अगर तुम मेरा और बहनों का कहना मानतीं। जैसी गंवार, वैसी ही हठीली भी हो! लो, अब जल्दी कपड़े बदलो।''

विवाहित जीवन का स्वप्न टूट गया रूढ़ता के तीखे तिरस्कार से। उस सभ्यता के नग्न, वास्तव रूप को देखकर वितृष्णा, विराग, घृणा से उसकी अंतर की प्रेयसी विमुख हो बैठी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''मैं न जाऊंगी।'' एक हठीली बालिका की तरह उसने कहा।

''चलो संध्या, मुझसे भूल हो गई, माफ करो।'' अपने आचरण से गिरीश लजा गया था।

''नहीं।''

''क्या कहा?''

''नहीं, नहीं मैं उस सभ्य समाज से घृणा करती हूँ, आंतरिक घृणा, जहाँ अपनी स्वाधीन इच्छा को बनाव-सिंगार के हाथ बेचना पड़ता हो।''

अपमान और क्रोध से गिरीश का मुह लाल हो उठा। फिर भी निकलते हुए कड़े शब्दों को दबाकर वह चला गया।

(5)

''तुम फिर चरखा लेकर बैठ गई हो? अंगरेजी तो कुछ भी न पढ़ी होगी। मिस रोजी आती ही होंगी, उन्हें क्या सुनाओगी? तुम्हें आदमी बनाने के लिए ही 30 रुपये देकर उन्हें रखा है।'' अत्यंत विरक्ति के साथ गिरीश ने कहा। आह्लाद के साथ जो कुछ कहने आया था, उसे वह भूल गया।

''सबक याद कर चुकी हूँ। देखें, कैसे चादर बने।'' शीघ्रता से उसने पति के हाथ की वह बड़ी-सी गठरी ले ली। उसके हाथ के कते सूत से वस्त्र बनवाने के लिए संध्या कई बार पति और ननदों से गिडगिड़ा चुकी थी। जब किसी ने न सुना, तब सास के पास वह धरना-सा दे बैठी। सास ने जुलाहों से उसी सूत के चादर बनवा दिए। जुलाहा चादर लाया था। उसी गठरी को गिरीश लेकर आया था।

पहले पत्नी का सूत कातना वह दिल्लगी की दृष्टि से देखा करता था। वह सोच ही नहीं सकता था कि उन सूतों में इतनी और ऐसी सुंदर काम की चीज भी किसी दिन बन सकती है।

''जो कुछ किया, सो अच्छा किया, लेकिन अब चरखा बंद करके पढ़ने में ध्यान दो, संध्या। जब इस घर में आई हो, तब इसके योग्य अपने को बनाना तुम्हारा कर्तव्य है।''

उसका मुँह कठोर हुआ, फिर भी उसने यह न पूछा कि पत्नी के लिए पति का भी कोई कर्तव्य, कुछ त्याग है या नहीं? केवल कहा, ''पढ़ने के बाद भी मुझे बहुत वक्त रहता है।''

फिर भी वही एक-सा तर्क, असभ्य बरताव। गिरीश के चित्त की कोमलता जाती रही। पत्नी की कीर्ति से अभी-अभी जो प्रशंसा-प्रेम ने झांकना शुरू कर दिया था मन के उस निद्रालु कोने से, वहाँ फिर से निद्रा का गंभीर अंधकार मंडराने लगा और हुकूमत का अहंकार अड़ गया दूसरे ही पल में

''मैं कहता हूँ, इस चरखे को आज से तुम मत छुओ, वरना इसे टुकड़े -टुकड़े कर फेंक दूंगा।''

संध्या ने चरखे को गोद में दबा लिया, उसी तरह जैसे माता अपने हृदय के टुकड़े प्यारे बच्चे को हृदय से लगा ले। संध्या ने कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। केवल तुम्हारी तुष्टि के लिए मैं आज अपनी इच्छा के विरुद्ध काम कर रही हूँ, वरना अंग्रेजी पढ़ने में मुझे कुछ भी रुचि नहीं है। भाषा का सीखना खराब नहीं, पर अभी संस्कृत कितना पढ़ने को है। बस, उससे ज्यादा और कुछ भी मैं नहीं कर सकती। नहीं, तुम्हारे कहने से भी नहीं, और न इस चरखे को ही अपने से अलग कर सकती हूँ।''

क्रोध के साथ-ही-साथ गिरीश को एक प्रकार की प्रसन्नता होने लगी। यह नारी चाहे असभ्य क्यों न हो, फिर भी उसी के लिए अपनी स्वाधीन इच्छा की बलि दे रही है।

''बिहार से कई महाशय आए हैं। भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए आज गोल-बाजार में उनका भाषण है, तुम चलोगी, संध्या?''

संध्या आश्चर्य से पति का मुँह निहारने लगी। पति के इस अंश से वह परिचित न थी। भली भांति जानती थी कि दरिद्र, असहाय, व्यथातुर के लिए गिरीश के हृदय में तिलमात्र भी सहानुभूति नहीं है और न दया।

उस दृष्टि के नीचे गिरीश लज्जित हुआ, ''जल्दी तैयार हो लो। इस गठरी को साथ ले चलेंगे। तुम्हीं अपने हाथों से उन्हें दे देना।''

''और तुम क्या दोगे?''

''तुम और मैं क्या स्वतंत्र हैं, संध्या?''

संध्या पति का मुँह निहारने लगी, प्रेम और भक्ति के साथ। गोल-बाजार के उस गोलाकार बड़े-से मैदान में बिहार से आए हुए महाशयों का भाषण चल रहा था। सुनते-सुनते बिहार के विध्वंस के वे भीषण दृश्य चल-चित्र के समान संध्या के नयन-पथ में फिरने लगे। वह आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी- धरती हिली उसी तरह, जैसे समुद्र के उत्ताल तरंगों में जहाज पछाड़े खाता है। पृथ्वी-तले हजारों कल-पुर्जे चलने के -से उस गंभीर शब्द को वह कान लगाकर सुनने लगी। दूसरे क्षण मकान गिरने लगे। सड़कों का कहीं पता तक न रहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रक्त-पिपासु राक्षस की भांति धरती ने मुँह खोल दिया- हजारों गज तक। उस खुले मुँह से अग्नि की-सी वर्षा होने लगी। चारों ओर अंधकार छा गया। उस गंभीर अंधकार में मुँह छिपाकर वह काला दैत्य दोनों हाथों से ध्वंस का काम करने लगा। उस अंधकार में संध्या आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी-फटी धरती ने हजारों घर-मकानों को मनुष्य सहित निगल लिया। गिरे हुए पेड़ों के तले पक्षी एक-दूसरे का आलिंगन किए सो रहे-शायद जीवन-भर के लिए। चरते-चरते गाय-बछड़े, भेड़-बकरियाँ चिल्लाकर भागीं, धरती उन्हें अपने पेट में खींचती जाती थी।

कुछ देर के बाद ध्वंसलीला समाप्त हुई। अब चला जीवितों को लेकर मौत का भयंकर खेल। कहीं अधमरी माता अचेत पड़ी थी। ऊपर से अविराम वर्षा हो रही थी, और वह अनजान बालक उसके सूखे स्तनों को चूस रहा था। मारे प्यास के बच्चे का गला सूख रहा था। मगर शायद ही बूंद-भर दूध उसे मिला हो। कहीं बूढ़ा अपने टूटे पैर की व्यथा को भूलकर केवल दो चनों के लिए चिल्ला रहा था, तो कहीं बूंद-भर पानी के लिए कोई मर रहा था। ऊपर थी सर्दी और नीचे भूस-प्यास का अत्याचार।

संध्या न तो और देख ही सकी और न सुन ही सकी। उसने अपने जेवरों को उतारकर फेंक दिया, वे गहने उसे गढ़-से रहे थे। सभों का नहीं तो दस-पांच का उसके जेवरों से कुछ सहारा हो जाएगा।

वैसे मूल्यवान जेवरों को पाकर प्रार्थी संतुष्ट हुए। प्रशंसा का पुल-सा बंध गया। 'माताजी की जय' से वायुमंडल गूंज पड़ा। साथ ही साथ गिरीश के पत्नी-भाग्य को लोग सराहने लगे। और गिरीश? वह बैठा था- स्थाणुवत अचल होकर। हाँ, मुँह पर सूखी मुसकान अवश्य ही थी।

(6)

''ऐसा क्यों किया, संध्या?''

उसकी प्रश्न-भरी आँखों की ओर देखकर गिरीश ने फिर कहा, ''वैसे मूल्यवान गहने क्या अब मैं बनवा सकूंगा? कुछ राजा-महाराजा तो हूँ नहीं। अलंकारों के लिए सास और ननदों के निकट संध्या यथेष्ट लांछित हो चुकी थी। यहाँ तक कि वे सब अब उसे देखकर मुँह फेर लिया करतीं। पति उस शोक को भूलकर भी नहीं भूल सके थे। सारे दिन उसे ताने सुनने पढ़ते थे।

उसने कहा, ''मुझे गहनों की जरूरत नहीं।''

''पर मुझे है। तुम एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की पत्नी हो; मेरे सम्मान की ओर भी तुम्हें देखना था।''

वह चुप रही। ''कहो, कहो, क्यों तुमने ऐसा किया?''

''मेरे भाई-बहन भूख-प्यास से प्राण दें, और मैं जेवर लादे बैठी रहूँ, ऐसा मुझसे हो नहीं सकता।''

''जिन्हें कभी तुमने देखा नहीं, वे तुम्हारे सब कुछ हुए, और मैं तुम्हारा पति होते हुए भी कोई न हुआ? मेरे दुख और मान-सम्मान को देखकर भी तुम अंधी बनना चाहती हो? सच है, जंगली तोता कभी अपना नहीं होता।''

''तुम्हें तो किसी तरह का दुख नहीं है।''

उत्तर छोटा और सरल था, फिर भी गिरीश झुंझला पड़ा, ''दुख नहीं है? क्या समझोगी जंगली तुम कि तुमने मेरी इज्जत किस तरह से उतार दी। मेरे जीवनव्यापी परिश्रम, आदर के उपहार को पल-भर के भीतर लुटा बैठीं। तुम क्या समझोगी कि तुम्हारे लिए मुझे कौन-सा त्याग करना पड़ा था, हाँ, जबरन ही। मेरी उस वाग्दत्ता कामिनी राय एम.ए. की जगह पर जब तुम्हें लाना ही पड़ा, तब समझा था कि तुम भी मेरे लिए कुछ त्याग कर मेरी बगल में खड़े होने के उपयुक्त अपने को बना लोगी, मेरे सुख-दुःख भले-बुरे का विचार हृदय से करोगी। पर कहाँ! हर काम में तुम मेरे विरुद्ध खड़ी होती हो। यहाँ तक कि मेरे सम्मान, संतोष के लिए एक टेबल पर बैठकर प्याला-भर चाय तक तुम नहीं पी सकतीं। मैं बहुत कुछ सह चुका, संध्या, सभी बातों की सीमा रहती है।''

''मैं तो अपना जीवन देकर भी तुम्हें सुखी-संतुष्ट करना चाहती हूँ। देवता के लिए वह भक्ति-प्रेम, चाह का अर्घ्य तुम्हारें ही चरणों में दिया करती हूँ।'' लजीली आँखें धरती में गड़ाकर धीरे से उसने कहा।

''इसी तरह! मेरा सर्वस्व लुटाकर?''

''नहीं, ऐसा तो नहीं है।''

''फिर उस दिन तुमने जो कुछ किया था, उसे क्या कहना चाहती हो?''

''कहना तो मैं कुछ भी नहीं चाहती। जिनकी वे चीजें थीं, उन्हें मैं सौंप चुकी। उनकी जरूरत उन्हें हमसे लाख गुना अधिक थी।''

''नहीं, तुमसे तर्क करना भी अपनी बेवकूफी ज़ाहिर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करना है। दे तो आई, पर इतना समझे रहना कि अभी तो दस ही पाँच खुशामदी 'माताजी-माताजी' कहकर आ जाते हैं, पर अब दिन पर दिन घर में रहना मुश्किल हो जाएगा। गहने दे आई, अब क्या दोगी ? अपने को बेचोगी क्या ?''

ये कठोर वचन भी उसने मौन रहकर पचा लिए। कुछ देर के बाद गिरीश ने पूछा, ''चाय पीने में क्या कुछ दोष है?''

''नहीं।''

''फिर पीती क्यों नहीं हो ? उन भले आदमी के अनुरोध का क्या कुछ भी मूल्य नहीं है ?''

''किंतु मुसलमान और दूसरी जाति की छुई चाय मैं कैसे पियूं ?''

''इतना घमंड ? ऐसे विचार, आदमी होकर आदमी से घृणा करती हो ? और दुनिया के सामने किसी की जीवन-भर की मेहनत की कमाई देकर 'माताजी' कहलाने के लिए मरी जाती हो ? मैं तब जानता, जब तुम अपनी ही कमाई मिट्टी-कूड़े की तरह फेंक देतीं। थीं तो पनहारिन, अब यहाँ आकर दाता कर्ण बन बैठीं। जाने दो। अच्छा, रुपये निकाल दो, बैंक में जमा करना है। गए महीने में जमा नहीं किए।''

''रुपये नहीं हैं।''

''क्या। क्या कहा ?''

''वे तो बिहार के लिए दे दिए!''

माथा थामकर गिरीश बैठ गया। बात बिजली की तरह घर-भर में फैल गई। माता और बहनें इकट्ठी हो गई। संदूक खोले गए, एक पैसा भी न था, और न मां-बहनों के जेवर। असह्य विस्मय, क्रोध और खेद के साथ गिरीश बाहर चला गया।

(7)

घर में गिरीश बहुत कम रहता। पत्नी की ओर से उसका चित्त संपूर्ण विमुख हो चुका था। कभी आधी रात को घर लौटता, उस समय उसकी स्थिति कुछ और ही रहती।

रात के कोई दो बज चुके थे, चरखा हटाकर संध्या चुपचाप बैठी थी। आज दो दिन से पति के दर्शन नहीं हुए। वह उन्हें दूर ही से देखकर संतुष्ट रहती। बैठी विचार रही थी-क्या मैं उन्हें सुखी नहीं कर सकती ? सभी के साथ बैठकर भोजन करना, इंगलिश कायदे से रहना, हँसना, बोलना, चरखे को जीवन से अलग कर देना, दीन-दुखी के अभाव पर परिहास करना, सभी के आगे हँस-हँसकर पति के गले से लिपटना, क्या मैं यह सब नहीं कर सकती ?

वह सिहर उठी, किंतु दूसरे ही क्षण वह सोचने लगी- उन्होंने जब मेरे लिए अपनी वाग्दत्ता कामिनी राय जैसी नारी को त्याग दिया है-चाहे अनिच्छा ही से क्यों न हो, फिर भी त्याग उन्होंने किया है तो मैं भी क्यों न करूं ?

संध्या की दुनिया छोटी थी। उसी दुनिया में अपनी हल्की-सी बुद्धि के बल पर विचारने को गई-पर सभी का छुआ मैं कैसे खाऊंगी ? घृणा ! वह संकुचित हुई। और बातें कुछ-कुछ कर सकती, परंतु चरखे और दु:खी की व्यथा से मुँह फेरना ? नहीं, नहीं, यह मुझसे नहीं बनेगा। यदि कामिनी राय से उनका ब्याह कराकर मैं देवताल लौट जाऊँ ? फिर मैं उन्हें देखूंगी कैसे ?'' ''अरे, नहीं, तुम्हें देखे बिना मैं मर जाऊँगी!'' वह चिल्लाकर रो पड़ी।

''किसे देखे बिना तुम मर जाओगी, संध्या ?''

''तुम्हें... तुमको।'' वह गिरीश के चरणों से लिपट गई। उसने पत्नी को हृदय से लगा लिया। बहुत दिनों के बाद। देवताल घूमने के लिए गिरीश के मित्र आए हुए थे, जिनमें गिरीश, संध्या, कामिनी राय आदि भी थीं। प्रकृति की गोद में पली हुई संतान उसी गोद को पाकर खुशी के समुद्र में लहराने लगी। दूसरों में परिहास के साथ उसे छेड़ना शुरू कर दिया,

''जंगली हिरन को जंगल मिल गया, अब क्या पूछना है।'' ''जंगली मैना को कहीं सोने की जंजीर भी भली लगी है ?'' ''महल में रहने से कहीं नाव पर सिंघाड़े तोड़ना अच्छा होता है।'' इत्यादि। वह किसी ओर ध्यान न देकर कमल का हार गूंथने बैठ गई।

कामिनी ने कहा, ''कमल के हार के आगे कहीं हीरे व मोती के जेवर भले लग सकते हैं ? तभी संध्या बहन ने उन्हें दे डाला। है न ठीक, बहन ?''

''मैंने अपनी वस्तु दी थी।'' संध्या ने सिर ऊँचा करके कहा।

''शायद आप ही कमाकर लाई थीं ?'' कामिनी ने ताने के साथ कहा।

''नहीं, मेरे पति। मेरे पति और मैं अलग नहीं हूँ।'' उसने ताच्छल्य के साथ कहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हार उठाकर उसने गिरीश के गले में पहना दिया। गिरीश कुछ अवाक् हुआ, क्योंकि पत्नी के इस सखी, प्रेमिका के हृदय से वह परिचित न था, जरा भी नहीं।

घूमते-फिरते वह छोटी-सी मंडली दादी की कुटिया पर पहुँची। ताला वैसे ही बंद था। वे साधु भी अपनी-अपनी कुटिया में वैसे ही रहा करते थे। कहीं पर कुछ भी परिवर्तन न था।

प्रसन्न दृष्टि से संध्या ने चारों ओर देखा। दादी के लिए आंसू की बूंदें पोंछकर उसने ताला खोला। सूखा घड़ा एक ओर औंधा पड़ा था। रस्सी की चारपाई खाली पड़ी थी। तकिये-चादर-रजाई पर मन-भर धूल जमी हुई थी। वह बक्स भी ज्यों-का-त्यों रखा था।

उसने बक्स खोला, कुछ पैसे और कागजों का बंडल रखा था। गिरीश के मित्रें ने कागज उठा लिए, ''अरे, दादी पड़ती-लिखती भी थीं क्या ?'' दिल्लगी के तौर पर वे कागजों को पढ़ने लगे।

पढ़ते-पढ़ते वे चिल्ला पड़े, ''गिरीश, यह क्या ?''

''क्यों भाई ?''

''संध्या कायस्थ नहीं, गोंड की लड़की हैं। इनके बाप का नाम जनकसिंह था। दादी का नाम भवानी।''

गिरीश की मां-बहनें कागजों पर झुकीं। ''हाय, मेरा जाति-धर्म सब कुछ गया।'' माता सिर पीटने लगी।

''क्या यह सच है, संध्या ?'' कुएँ के भीतर से जैसे किसी ने पूछा। पति के स्वर से संध्या चौंकी।

इतनी देर तक वह देख-सुन सब कुछ रही थी, लेकिन शायद ही उसने कुछ समझा, कुछ सुना हो। उसके मन में केवल वही प्रश्न सिर पीट रहा था-छुआछूत की ओरसे जो लोग प्रशस्त हृदय का दावा करते हैं, उसी छुआछूत का प्रश्न और जाति-विचार इन्हें क्यों और किसलिए हो गया ?

''जाति ? तो तुम कौन जाति के हो ?'' यद्यपि उसने सरलता के साथ पति से पूछा, परंतु गिरीश ने समझा उलटा।

''अब बनो मत, क्या जानती नहीं हो कि हम कायस्थ है?''

''मैंने इस जाति पर कभी विचार ही नहीं किया। फिर घर में किसी प्रकार पूजा-पाठ होते कभी देखा नहीं, इसलिए समझी थी, तुम्हारी कोई जाति ही नहीं है।''

''भला बिना जाति के भी कोई आदमी रहते हैं ?''

''हाँ-ठीक तो हैं'' वह विचार में पड़ गई।

''तुम जानती थीं कि तुम गोंड हो, फिर मुझसे छिपाया क्यों ?''

''मैंने छिपाया ?'' उसने बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर प्रश्न किया, ''मैंने छिपाया ? तो छिपाती ही क्यों ? मैं नहीं जानती थी कि मैं कौन जाति हूँ।''

''क्यों, उस बूड़ी ने नहीं कहा था कि कायस्थ है ?''

''दादी ने ? पर मैंने सुना नहीं।'' उसने सच ही कहा।

''जाने दो। अब इससे कोई लाभ न होगा गिरीश, घर चलो।''

''और संध्या ?''

''पागल हुआ है ? उस गोंडनी की घर में जगह कौन देगा ? उसे यहीं रहने दे। मेरा धर्म-कर्म सब कुछ गया, ''मां ने कहा। शायद गिरीश संध्या से कुछ कहना चाहता था, किंतु वह चुपचाप उतर गया। और संध्या ?

वह मंदिरों के पीछे वाली उन सीढ़ियों से होती हुई इमली के पेड़ पर चढ़कर पति को देखने लगी।

गिरीश के पत्नी-त्याग के साथी देवताल-निवासी कोई भी न रहे, रही केवल चिर-नीरव प्रकृति।

संध्या समय कुटी में लौटकर साधुओं ने विस्मय से पूछा, ''यह क्या, तुम घर लौटी नहीं ?''

''नहीं महाराज।''

''क्यों ?''

''यही रहूँगी।''

(8)

''तुम्हारे छिपाने से क्या होता है बेटी, मैं सब कुछ सुन चुका हूँ-क्या सचमुच वह अपनी सहधर्मिणी को त्याग गया ?'' पंडितजी ने पूछा

संध्या चुप रही। ''उसने गलती की, गहरी भूल। वह वंश-परिचय तुम्हारे पिता का नहीं, जनकसिंह का है। उसकी मां का नाम भी भवानी था। बस, इसी भवानी नाम से उसने भूल की। तुम्हारा वंश-परिचय मेरे पास है। उसे लेकर आज गिरीश के पास जाऊंगा।''

''नहीं, नहीं।'' आतुर स्वर में उसने कहा।

''क्यों ?'' पंडित विस्मित हो रहे थे।

''जहाँ प्रेम, प्यार और भक्ति को तुच्छ समझा जाता है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विवाहिता स्त्री, सहधर्मिणी को-एक असहाय नारी को लोग जाति-विचार के पैरों-तले बिना विचारे ही बलि दे देते हैं, कर्तव्य जहाँ एक खेल है, वहाँ-वैसी जगह मैं नहीं जा सकती।''

''पर वह तेरे पति, तेरे जीवन-मरण के देवता है। ऐसे विचार को मन में मत लाया करो, बेटी। उन्होंने जान-बूझकर यह गलती नहीं की; उस कागज ने धोखा दिया।''

सब कुछ सुनकर गिरीश चुपका बैठा रहा। माँ-बहनों ने कह दिया, ''यह वंश-परिचय जाली है, यदि उसका था तो उसकी संदूक में क्यों न मिला?''

गिरीश के दिन कट रहे थे, शायद सुख से। संध्या समय आमोद-प्रमोद की बाढ़-सी आ जाया करती, घर और बाहर के लोग इकट्ठे हो जाते।

कामिनी राय हँस-हँसकर पियानो की चाबियां दबाती। उसका विवाह प्राय: तय हो चुका था।

फिर भी इस सभ्यता-संस्कृति के सामने कभी वह नग्न प्रकृति आकर गिरीश के सामने अड़ जाया करती। गिरीश घबरा उठता। वह उसे जितना अलग करके अपने से दूर हटाना चाहता, उतना ही वह उससे लिपट जाया करती।

कभी वह आश्चर्य में पड़ जाता, क्या उस जंगली असभ्य बालिका ने उस उच्च शिक्षा-प्राप्त सभ्य हृदय को जीत लिया? कभी इस हँसी-खुशी, नग्न निर्लज्जता से ऊबकर उसकी आत्मा उसी थोड़े दिन से परिचित उस हठीली बालिका के लिए लालायित होती। उसके एक ओर थी, प्रेम की नगन उच्छृंखलता, सभ्यता की असीम स्पर्द्धा और दूसरी ओर थी प्रेम की नम्र श्रद्धा और मंदिर की अवगुंठिता पुजारिन। इन दोनों आकर्षणों से कभी वह बेचैन हो जाता। सभ्यता, विलासिता से मार्जित दृष्टियों के बदले मंदिर की टिमटिमाती दीवट-जैसी उस पावन दृष्टि के लिए कभी वह विकल हो उठता, जबरन ही अस्वीकार करता-कहाँ पाश्चात्य शिक्षा से उज्ज्वल विदुषी और कहाँ प्राच्य जंगली, असभ्य हठीलापन। वह अपने-आप हंस उठता।

कोट पहनते समय पाकेट में से कमल का हार निकल पड़ा। उस कोट को वह बहुत दिनों के बाद पहन रहा था। माला सूख चुकी थी। कमल की नीलाभा मर मिटी थी; किंतु उसकी मौत कहाँ थी, उस मोहनी की, जो कि कमल के हार की सूखी हुई पंखड़ी की नसों में दबी बैठी थी!

''संध्या!'' अपने अनजान में गिरीश देवताल पहुँच चुका था एवं शंकरकुंड के पास खड़े होकर संध्या को पुकार रहा था।

संध्या चौंकी, पानी का लोटा गिर पड़ा। लोग अचंभे से उसका मुँह निहारने लगे। वह आगे की तरह पानी पिलाया करती थी, और उन पैसों को बिहार भेज देती थी।

संध्या व्याकुल हो रही थी बार-बार उसी स्वर को सुनने के लिए, जोकि उसके खून में मिल चुका था, जिसे सुनने के लिए उसके कान सदा आकुल हुआ करते थे।

''संध्या!'' गिरीश ने फिर पुकारा।

संध्या ने मुँह फेर लिया घृणा, विराग से नहीं, वरन उन दर्शकों के आगे उन बहते हुए आंसुओं को छिपाने के लिए। गिरीश ने भूल की, क्रोध, अपमान से वह कांप उठा। संध्या ने जब मुंह फेरा, तब वहाँ गिरीश नहीं था। भ्रम था-उसने मन में कहा।

चाँदनी के सरोवर में स्नान करती, पर्वत-शिखर पर बैठी संध्या पाठ याद कर रही थी।

नीचे आकर खड़ा हुआ गिरीश था। वह संध्या को लेने के लिए आया था।

''संध्या!'' उसने पुकारा।

संध्या विस्फारित दृष्टि से पति को देखने लगी।

''संध्या!'' वह कहना चाहता था, 'घर चलो!' किंतु कह न सका, विचार, दुविधा, संकोच में पड़ गया।

''संध्या!'' किंतु फिर भी वह कह न सका।

संध्या हंसी, ''ऐसी सर्दी में ज्यादा देर तक मत खड़े रहो। बीमार पड़ जाओगे। कभी-कभी यदि इसी तरह दर्शन दे सको तो...'' वह चुप रही।

''संध्या!'' इस बार भी दुविधा ने आकर गला दबाया। एक-दूसरे को निर्वाक् विस्मय से देखने लगे, मानो जाति-विचारक निर्वाक् था और मनुष्यत्व था विस्मय-विमूढ़।

पर्वत-शिखर को उज्ज्वल किए बैठा था मनुष्यत्व, और कोई हजारों गज नीचे, करोड़ों नियमों के फंदे से जकड़ा हुआ समाज खड़ा कुछ विचार रहा था, वही समाज, जोकि सृष्टि के बाद से नारी-जीवन को लेकर एक खेल खेलता चला आ रहा है! दूर ही से पत्नी ने पति को प्रणाम किया, शायद अंधविश्वास से अथवा आंतरिक भक्ति से! हो सकता है, संस्कार के फंदे से- कदाचित प्रेम से ही।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजघाट में गांधीजी की समाधि पर

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

तो अब तीर्थयात्रा आरम्भ हो, बाबूजी!''

सुबह ही सुबह चाय पीकर उठे तो कुमारी ग्रेस ऑलिवर ने कहा। मैं दिल्ली में होता हूँ तो सुबह गांधीजी की समाधि पर राजघाट अवश्य जाता हूँ। ग्रेस मेरे स्वभाव-संस्कार से परिचित है कि मेरे लिए राजघाट ही अब सेवाग्राम हो गया है। जब ग्रेस ने तीर्थ-यात्रा की बात कही तो उसका मतलब राजघाट चलने से ही था। इधर बहुत दिनों से मैं राजघाट नहीं गया था। सिर-रोग के कारण यात्रा यमदूत हो गयी है। दिल्ली आया ही नहीं और आया भी तो यों ही भाग-दौड़ में कि दिन में आया तो रात में लौटा। हम चल पड़े राजघाट की ओर।

'सुना है, बाबूजी, अब तो राजघाट पर बहुत कुछ बन गया है?'' कुमारी ग्रेस की उत्सुकता बोल उठी। ''हाँ, पत्रों में मैंने भी पढ़ा है, ग्रेस!'' और मैं उत्सुकता के उस स्पर्श से कल्पना में खो गया, ''उस सादी और सात्विक समाधि पर और क्या बना होगा?''

ग्रेस ने कहा- ''सुना है, लाखों रुपये खर्च हुए हैं उस पर, इसलिए कोई सुन्दर चीज ही नहीं होगी।''

मन में सूई-सी चुभी। लाखों रुपये खर्च की बात सुनकर बहुत गम्भीर हो गया मन। ग्रेस ने लक्ष्य किया- ''क्या सोच रहे हैं आप इतनी गम्भीरता से?''

''तुम्हारी लाखों की बात सुनकर एक लोककथा याद आ गयी थी, उसे ही सोच रहा हूँ।''

''बातचीत में चित्र जड़ना तो आपकी विशेष शैली ही है, सुनाइये अपनी लोककथा।'' कुमारी ग्रेस ने कहा और मेरी लोककथा आरम्भ हो गयी- ''दो ब्राह्मण बैठे आपस में बातचीत कर रहे थे। नेताजी की बातचीत जैसे आजकल घूम-फिरकर राजनीति पर आ जाती है, वैसे ही अतीत में ब्राह्मणों की बात घूम-फिरकर भोजन पर आ जाती थी। तो पहुँच गये दोनों भोजन के स्वाद पर। एक बोला- भोजन की जान तो घी है कि हलवे में डाल दो तो मजा, खीर में डाल दो तो मजा, बादाम में छौंक दो तो मजा और उड़द की दाल में डाल तो क्या कहने! दूसरा बोला- भोजन की क्या, घी तो सभी चीजों की जान है कि जिसमें भी डाल दो, मजा आ जाये!

''बात यह है प्रेस को स्वतंत्र होते ही हमारे देश को जाने क्या हो गया है कि हर हर बात को रुपये में तोलने लगे हैं, रुपये से नापने लगे हैं और हमारी विचार-दिशा यह हो गयी है कि जब अमुक में इतने लाख, इतने करोड़ रुपये लगे हैं तो वह उत्तम होगा। यह मनोवृत्ति ऐसी ही है कि कोई पुस्तकों का गेटप, उनके आवरण चित्र देखकर, उनके विषय और लेखन-शैली को जाने बिना उन्हें पुस्तकालय के लिए चुन ले।

पास ही बैठा एक जाट दोनों की बातें सुन रहा था। बोला- हाँ, पण्डतो! घी है तो मजेदार चीज पर तुम उसे किसी दिन तमाखू में डालकर देखना, तब तुम्हें पता चलेगा कि मजा किसे कहते हैं!

दोनों पण्डित बड़े झेंपे, क्योंकि तमाखू में घी पड़ जाये तो फिर वह पीने के काम का नहीं रहता और उसके धुँए से ज़ोर की खाँसी उठने लगती है।''

''बाबूजी, लोककथा तो मजेदार है पर मेरी बात सुनकर यह आपको क्यों याद आयी?'' कुमारी ग्रेस का प्रश्न उभरा।

''बात यह है प्रेस को स्वतंत्र होते ही हमारे देश को जाने क्या हो गया हैं कि हर हर बात को रुपये में तोलने लगे हैं, रुपये से नापने लगे है और हमारी विचार-दिशा यह हो गयी है कि जब अमुक में इतने लाख, इतने करोड़ रुपये लगे हैं तो वह उत्तम होगा। यह मनोवृत्ति ऐसी ही है कि कोई पुस्तकों का गेटप, उनके आवरण चित्र देखकर, उनके विषय और लेखन-शैली को जाने बिना उन्हें पुस्तकालय के लिए चुन ले। असल में हम यह भूल चले हैं कि अच्छा और उत्तम परिणाम ही कार्य की कसौटी है, उसमें लगे धन की मात्रा नहीं। वही बात कि धन तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घी है जो हलवे में मजा देता है पर तमाखू में कष्टदायी है। तुम्हारी बात सुनकर मन में यही भाव आया कि कही गांधीजी की समाधि पर लगे लाखों रुपयों ने उसके सारे सौन्दर्य का अपहरण न कर लिया हो!''

हम राजघाट पहुँच गये। पहले पहली नजर में ही समाधि के दर्शन होते थे, अब पहली नजर पड़ती है एक चारदीवारनुमा घेरे पर। हम सड़क पार कर द्वार के सामने पहुँचे। मशीन से पत्थरों की घिसाई हो रही थी। घिसे हुए पत्थर चिकने-चमकीले थे, अनघिसे पत्थर खुरदरे-बेरौनक। मन में विचार-सूत्र उगा- परिश्रम से प्रयत्न से जब हम बुद्धि को निरन्तर घिसते हैं तो उसमें एक नवनवोन्मेषशालिनी चमक पैदा हो जाती है। उसी चमकवाली सूझबूझ का नाम प्रतिभा है। चमकते पत्थर मुझे प्रतिभा के प्रतीक-से लगे। मैंने सोचा- जो लोग परिश्रम से, प्रयत्न से, निरंतर संघर्ष से बचते हैं और जीवन में प्रतिभा के पुष्पों की कामना करते है, असफलता और निराशा ही उनके भाग्य का उपार्जन होता है। द्वार पार कर हम घेरे के अन्दर हो गये। गांधीजी की समाधि अब हमारे सामने ही थी पर समाधि पर नहीं, मेरा ध्यान उस समाधि को चारों ओर से घेरे खड़ी उन चारदीवारी पर ही केन्द्रित था। इस चारदीवारी में कोई 40 कोठरियां हैं - डाटदार, बिना किवाड़ों की। बताया गया कि इन कोठरियों में गांधीजी के जीवन की मुख्य घटनाएँ चित्रित की जायेंगी और इस तरह गांधी-समाधि गांधीजी का चित्रमय जीवन चरित्र हो जायेगी।

इस कल्पना में मुझे सुरूपता का आभास मिला पर इस निर्माण की कुरूपता मेरे रोम-रोम पर छा गयी। इसी दिल्ली की पहाड़ी पर बहुत दिन हुए, भोली भटियारी की सराय देखी थी एक बार। बिल्कुल वैसा ही निर्माण है इस कोठरी भरी चारदीवारी का भी। मुझे लगा कि इन कोठरियों में गांधी जी की समाधि नहीं, मैं ही घिर गया हूँ। और लो, मुझे याद आ गयी 4 सितम्बर 1930 की शाम जब मैं स्वतंत्रता आन्दोलन में पहली बार जेल गया था। मैं खेतों का घुमक्कड़ आदमी कि जिधर देखे, दूर तक फैले खेत, पर वहाँ जिधर भी आँख उठाओ, एक ऊँची दीवार। कई दिन बड़ी तकलीफ रही थी और लगता था कि आँखें दुखने लगी हैं। तब मैंने सामने न देखकर आकाश की ओर देखने की आदत बना ली थी।

मेरी आँखें उसी स्मरण में एकदम ऊपर उठ गयीं। गनीमत है कि गांधीजी की समाधि का आकाश भी उन्मुक्त था और उसे भी एक बड़ा लिण्टर डालकर छा देने की बात निर्माताओं को नहीं सूझी थी। मैंने गांधीजी की समाधि की ओर देखा तो लगा कि फूलों की ओट से वह भी मेरी तरह आकाश की ओर ही देख रहे हैं।

मैं भावुकता के आवेश में घिर गया और मैंने पूछा- ''बापू, अब कैसा लगता है आपको?''

बोले- ''ज़िन्दगी उन्होंने ले ली थी जिनके लिए अमान्य था और मेरी आज़ादी उन्होंने छीन ली जिनके लिए मान्य हूँ। पहले दूर-दूर तक फैले हरे लाल दिखायी देते थे, एक सादगी, सात्विकता और शान्ति अनुभव होती थी पर अब पत्थरों से घिर गया हूँ।''

मैंने कहा- ''आप राष्ट्र-पिता हैं। आपकी समाधि तो शानदार होनी ही चाहिए, बापू!''

गांधीजी मुसकराये- ''हाँ, मेरा उत्तराधिकारी शानदार आदमी हुआ। वह शान से रहता रहा, शान से कहता रहा, यहाँ तक कि हार भी शान से सहता रहा। शान के इस वातावरण में मेरी समाधि की सादगी उसे अखरी और उसने उसे भी विराट प्रकृति के वातावरण से खींचकर पत्थरों में कस दिया। अब उससे मेरा दम घुटता है तो घुटे, शान तो दिखती ही है।''

मुझे कुछ ऐसा लगा कि एक ऐसे बहादुर आदमी को, जिसने जीवन भर फ्री स्टाइल कुश्ती लड़ी, अब अन्त में मोटे रस्सों से किसी अटल स्तम्भ के साथ कसकर बांध दिया गया हैं और सच इस अनुभूति से मेरी आत्मा तक कसमसा उठी। बरसों पहले एक कहावत सुनी थी कि 'महापुरुषों को उनके विरोधी मारकर अमर करते हैं पर उनके भक्त उन्हें पूजकर मार डालते है।' इस कहावत का मर्म मेरे हाथ आज ही लगा। बापू ने हमें जीवन में न्याय किया, न मरने के बाद ही। जिस दिल्ली में 30 मार्च, 1920 को गांधी-क्रान्ति की पहली शहादतें हुई, 4 मार्च, 1930 को गांधी-इरविन समझौता हुआ, 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता की घोषणा हुई और 30 जनवरी, 1948 को गांधीजी का बलिदान हुआ, वह दिल्ली वैभव-विलास का प्रदर्शन करने वाले अपने हजार मुखों से गांधी का उपहास ही तो कर रही है। उपहास की उस बाढ़ में गांधीजी अपनी सात्विक समाधि से मुंह छुपाये पड़े थे पर हमें यह भी सह्य न हुआ और हमने उसे भी पत्थरों से धोंप दिया!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''इन दरवाज़ों के बाहर क्या है, बाबूजी ?'' -कुमारी ग्रेस ने पूछा तो मेरा ध्यान टूटा। जहाँ हम खड़े थे, उसके बायें-दायें भी एक-एक द्वार था। एक कर्मचारी बन्धु से मैंने पूछा- ''इन द्वारों के बाहर क्या है, भैया ?''

''जी, ये बाहर से आने के द्वार हैं। यह बायीं तरफ नेता गेट है, इससे नेहरू जी आया करते थे और दूसरे बड़े आदमी आते हैं। दायीं तरफ सेना गेट है, इससे सेना के लोग आते हैं। यह सामने, जिससे आय आये हैं, पब्लिक गेट है, इससे आप आदमी आते हैं!'' कर्मचारी भाई की बात से फिर एक सूई चुभी, जैसे विष-बुझी कि नस-नस हिल गयी-ओह, हमारे नेता जनसाधारण की तरह सोच नहीं सकते, रह नहीं सकते, जी नहीं सकते, जनसाधारण में बैठ नहीं सकते, यह तो देख रहा था, जान रहा था पर यह आज ही जाना कि वे उस ओर से राष्ट्रपिता गांधी की समाधि पर जा भी नहीं सकते जिससे जनसाधारण जाते हैं! मुझे याद आ गया कि गांधीजी के मरने पर जवाहरलाल बच्चों की तरह हिचकियों रोये थे और उन्होंने रेडियो पर कहा था- ''एक रोशनी थी हमारे बीच में, वह बुझ गयी है, अंधेरा घिरता जा रहा है और राह नहीं सूझती।''

मुझे याद आ गया कि जवाहरलाल नेहरू गांधीजी के शव को लेनिन के शव की तरह ममी बनाकर सुरक्षित रखना चाहते थे पर देवदास भाई के पास गांधीजी का वचन सुरक्षित था कि मेरा शव न रखा जाये।

मुझे याद आ गया है कि गांधी जी ने 11 मई, 1947 को हड़ताली मजदूरों से कहा था- ''मैं सबको बराबर दर्जे की मजदूरी मिलने में विश्वास रखता हूँ। एक ममी का दिन भर में केवल चार आने और एक वकील को सौ रुपये क्यों मिलें ?'' गांधी जी ने 3 मार्च, 1947 को कहा था- ''जब तक कार्यकर्ता ही शुद्ध नहीं बनेंगे तब तक जनता कभी शुद्ध नहीं होगी।''

मुझे याद आ गया कि 1937 में पहली बार कांग्रेसी मंत्रीमण्डल बनने पर मंत्रियों को बंगले में रहते और मोटरों में घूमते देखकर गांधी जी बीमार पड़ गये थे और सरोजिनी नायडू ने इस बीमारी को 'आत्मा का सूखना' कहा था। और मैंने सोचा-गांधीजी की समाधि राजधानी के विलासी बंजर क्षेत्र में हरी दूब का एक लच्छा थी। हमने इसे भी बंजर बना दिया और शायद अपने ढंग पर गांधी जी के प्रिय साम्य योग को एक राजकीय अभिवादन ही दिया!

मैंने एक बार फिर पत्थरों की उस चारदीवारी से घिरी गांधी समाधि को देखा तो मुझे लगा कि तपस्या-निरत विश्वामित्र के चारों ओर विलास की मेनका थिरकते-थिरकते मदभरी मुद्रा में स्थिर हो गयी है।

अब हम गांधी जी की समाधि पर थे। नित्य-नियम के अनुसार उस पर फूल रखे हुए थे, राम लिखा हुआ था। मन में विचार का नक्षत्र झमझमाया-गांधी जी राममय थे, हम रामामय हो गये हैं। वे पुण्यजीवी थे, हम स्वर्गजीवी हैं, यह भूले हुए कि 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'- पुण्यों का क्षय होने पर मनुष्य स्वर्ग से धरती पर ही गिर पड़ते हैं।

''बाबूजी, समाधि का पत्थर भी बदल दिया गया है''- कुमारी ग्रेस ने कहा तो मेरा ध्यान उधर गया। काला संगमूसा दमक रहा था-मशीन से घिसा, एकदम चमचम। ''पहला संगमरमर अच्छा था, बाबूजी!'' कुमारी ग्रेस ने अपना अहसास दोहराया।

सत्वमूर्ति गांधीजी की समाधि पर काला पत्थर ? यह किस अबूझ की सूझ है ? तभी एक कर्मचारी वहाँ आ गया। उसने पूछा-''भैया, यह कैसा पत्थर लगाया गया है समाधि पर ?'' बोला- ''जी, यह बहुत कीमती है!'' उफ! कीमत, दाम, पैसा ही हमारी कसौटी है, वही हमारा प्यार!

मुझे याद आ गया 1940। मैं सेवाग्राम गया तो मुझे गांधीजी का चेहरा एक अद्भुत तेज से प्रदीप्त दिखायी दिया। बातचीत में मैंने कहा- ''बापू, आपके सम्बन्ध में देश में यह प्रश्न उठता रहा है कि आप अवतार हैं या नहीं ? मैंने गहरी खोज के बाद इस प्रश्न का समाधान पा लिया है।'' कातते-कातते उन्होंने मेरी तरफ देखा तो मैंने कहा-''बापू, पूर्णवतार कृष्ण पहले गौर थे, फिर श्याम हो गये थे। आप पहले श्याम थे, अब गौर हो गये हैं। क्या आपके अवतार होने का यह पूर्ण प्रमाण नहीं है ?'' खूब हँसे बापू और शाम को महादेव भाई कही से लौटे तो कहा- ''अब तू मेरी आरती किया कर, महादेव!'' वे कुछ समझे नहीं तो गांधीजी ने कहा- ''इससे पूछ।'' मैंने अपनी खोज की बात कही तो फिर बापू का मधुर अट्टहास गूंज उठा। मुझे लगा कि तप से गांधीजी ने जो स्वच्छ शुभ्रता पायी थी, उसे हमने अपने कल्मश में डुबो दिया है। मन आहत हो उठा और लगा कि मैं अभी-अभी तारकोल के कुण्ड में से निकला हूँ- एकदम काला घुप्प!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझे याद आ गया कि गांधीजी स्वराज्य मिलने पर इसी दिल्ली की बस्ती में बांस की झोंपड़ी में रहा करते थे।

मुझे याद आ गया कि लार्ड माउण्टबैटन के आग्रह करने पर भी गांधीजी कलकत्ता से हवाई जहाज में नहीं, साधारण रेल में ही दिल्ली आये थे।

मुझे याद आ गया कि सेवाग्राम में गांधीजी खपरैल की कुटिया में रहते थे और वहाँ टेलीफोन तो था, पर बिजली नहीं। मुझे याद आ गया कि दूसरी गोलमेज कॉफरेन्स में जाते समय जब गांधी जी ने अपने सामान में चमड़े की अटैची देखी, तो महादेव भाई को डांटा था और इस तरफ का सब सामान अदन से ही वापस कर दिया था। यही नहीं, चलते समय भेंट में मिला ऊनी शाल नवाब भोपाल को बेच दिया था।

मुझे याद आ गया, गांधीजी ने नोआखाली यात्रा में मनु बहन का यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया था कि रात में लालटेन धीमी-धीमी जलती रहे, क्योंकि उनकी राय में यह तेल का अपव्यय था।

मुझे याद आ गया कि गांधीजी ने साढ़े तीन बाल्टी की जगह चार बाल्टी पानी से पेशाबघर धोने पर अपने एक साथी को डांटा था, क्योंकि उनकी राय में आधा बाल्टी पानी की फिजूलखर्ची हुई थी। और गांधीजी की समाधि पर लाखों रुपये लग चुके थे, लाखों रुपये लग रहे थे। लौटते-लौटते एक दबी हुई करुण वाणी मुझे सुनाई पड़ी-पद, पैसा, पत्थर.... पद, पैसा, पत्थर! यह किसकी वाणी थी? क्या पत्थरों के नीचे दबी गांधी जी की पवित्र किन्तु बन्दी आत्मा की यह कराह थी?

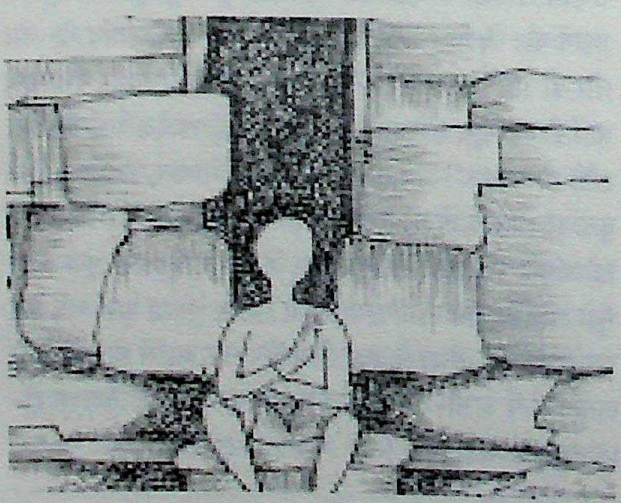

मेरा वतन

विष्णु प्रभाकर

उसने सदा की भाँति तहमद लगा लिया था और फैज ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तेजी से झटका देता था परंतु पैर यंत्रवत आगे बढ़ते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बे-तरह कांप उठता था, पर उसकी गति पर अंकुश नहीं लगता था। देखने वालों के लिए वह एक अर्द्ध-विक्षिप्त से अधिक समझदार नहीं था। वे अक्सर उसका मज़ाक उड़ाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊँचे स्वर में गालियाँ पुकारते, पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती- न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आँखों में क्या होता था- वे सहम जाते, सोडा वाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अंदरूनी बस्ती को शोले की तरह सुलगाती हुई, फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, 'जरूर इसका सब कुछ लुट गया है...' 'इसके रिश्तेदार मारे गए हैं...' 'नहीं, नहीं, ऐसा लगता है कि काफिरों ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोंक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिड़िया के बच्चे की चीं-चीं में पलटती हुई खत्म नहीं हो गई।'

''और यह सब देखता रहा!''

''हाँ! यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आँखों में उतर आया है। उसी खौफ ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है। वह खौफ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।''

''डर,'' किसी ने कहा था, ''इसकी आँखें में मौत की तस्वीर है, वह मौत जो कत्ल, खूरेजी और फांसी का निजाम संभालती है।''

एक बार एक राह चलते दर्दमंद ने दुकानदार से पूछा, ''यह कौन है?''

दुकानदार ने जवाब दिया, ''मुसीबतजदा है जनाब! अमृतसर में रहता था। काफिरों ने सब कुछ लूटकर इसके बीवी-बच्चों को आग में भून दिया।''

''जिंदा?'' राहगीर के मुँह से अचानक निकल गया। दुकानदार हँसा, ''जनाब किस दुनिया में रहते हैं। वे दिन बीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गए जब आग काफिरों के मुरदों को जलाती थी। अब तो वह जिंदों को जलाती है।''

राहगीर ने तब कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी, फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा, ''कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है।''

''जी हाँ! वकील था, हाईकोर्ट का बड़ा वकील। लाखों रुपयों की जायदाद छोड़ आया है।''

''अच्छा जी!''

''जनाब! क्या पूछते हैं? आदमी आसानी से पागल नहीं होता। दिल पर चोट लगती है तभी वह टूटता है। पर जब एक बार टूट जाता है तो फिर नहीं जुड़ता। आजकल चारों तरफ यही कहानी है। मेरा घर का मकान नहीं था, लेकिन दुकान में सामान इतना था कि तीन मकान बन सकते थे।''

''जी हाँ।'' राहगीर ने सदय होकर कहा, ''आप ठीक कहते हैं। पर आपके बाल-बच्चे तो ठीक आ गए हैं?''

''जी हाँ।'' खुदा का फजल है। मैंने उन्हे पहले ही भेज दिया था। जो पीछ रह गए थे उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करे हिंदुस्तान को...''

राहगीर उठा। उसने बात काटकर इतना ही कहा, ''देख लेना, एक दिन वह गारत होकर रहेगा। खुदा के घर में देर है पर अंधेर नहीं।''

और वह चला गया, परंतु उस अर्द्ध-विक्षिप्त के क्रम में कोई अंतर नहीं पड़ा। वह उसी तरह धीरे-धीरे बाजारों में से गुजरता, शरणार्थियों की भीड़ में धक्के खाता, परंतु उस ओर देखता नहीं। उसकी दृष्टि तो आसपास की दुकानों और मकानों पर जा अटकती थी। अटकती ही नहीं, चिपक जाती थी। मिकनातीस लोहे को खींच लेती है, वैसे ही वे बेजुबां इमारतें, जो जगह-जगह पर खंडहर की शक्ल में पलट चुकी थीं, उसकी नजर और नजर के साथ उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार- सभी को अपनी और खींच लेती थीं और फिर उसे जो कुछ याद आता, वह उसे पैर के तलुए से होकर सिर में निकल जाने वाी सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल के कोने में जा बैठता था। इसी कारण वह आज तक मर नहीं सका था, केवल सिसकियाँ भरता रहता था- वे सिसकियाँ जिनमें न शब्द थे, न आँसू। वे सूखी हिचकियों की तरह उसे बबे-जान किए हुए थीं।

सहसा उसने देखा- सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनाया था। उसके ऊपर के कमरे में उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे में उसने आँखें खोली थीं और उसी कमरे में उसके बच्चों ने पहली बार प्रकाश-किरण का स्पर्श पाया था। उस मकान के कण-कण में उसके जीवन का इतिहास अंकित था। उसे फिर बहुत-सी कहानियाँ याद आने लगीं। वह तब उन कहानियों में इतना डूब गया था कि उसे परिस्थिति का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह जीने पर चढ़ने के लिए आग बड़ा और जैसा कि वह सदा करता था, उसने घंटी पर हाथ डाला। बे-जान घंटी शोर मचाने लगी और तभी उसकी नींद टूट गई। उसने अपने चारों ओर देखा। वहाँ सब एक ही तरह के आदमी नहीं थे। वे सब एक ही जबान नहीं बोलते थे। फिर भी उनमें ऐसा कुछ था जो उन्हें एक कर रहा था और वह इस एके में अपने लिए कोई जगह नहीं पाया था। उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा, पर तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतर आया। उसने ढीला पाजामा और कुरता पहना था, पूछा, ''कहिए जनाब?''

वह अकचकाया, ''जी!''

''जनाब किसे पूछते थे?''

''जी, मैं पूछता था कि मकान खाली है?''

ढीले पाजामा वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाईगीरा हो। फिर मुँह बनाकर तलखी से जवाब दिया, ''जनाब! तशरीफ ले जाइए वरना...''

आगे उसने क्या कहा वह यह सुनने के लिए नहीं रुका, बढ़ा चला गया। उसकी गति में तूफान भर उठा, उसके मस्तिष्क में बवंडर उमड़ आया, और उसका चिंतन गति की चट्टान पर टकराकर पाश-पाश हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनारकली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लांघ चुका था। वह बहुत दूर निकल आया था।

यहाँ आकर वह कांपा। एक टीप से उसे कुरेद डाला जैसे बड़ई ने पेच में पेचकस डालकर पूरी तरह शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरू कर दिया हो। हाईकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दृष्टि गड़ाकर उके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया- वह कहाँ बैठता था, वह कौन-से कपड़े पहनता था कि उसका हाथ सिर पर गया, जैसे उसने सांप को छुआ। उसने उसी क्षण हाथ खींच लिया, पर मोहक स्वप्नों ने उसकी रंगीन दुनिया की रंगीनी को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसी तरह बनाए रखा। वह तब इस दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर की जो वास्तविक दुनिया है वह उसके लिए मृगतृष्णा बन गई थी। उसने अपने पैरों के नीचे की धरती को ध्यान से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तस्वीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अंतस्थल पर उभर आई। वह इसी धरती पर चला करता था। उसके आगे-पीछे उसे नमस्कार करते सलाम झुकाते, बहुत से आदमी आते और जाते थे। दूसरे वकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और...

विचारों के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलांग लगाई- उसका ध्यान जज के कमरे में जा पहुँचा। जब वह अपने केस में बहस शुरू करता था तो कमरे में सन्नाटा छा जाता था। केवल उसकी वाणी की प्रतिध्वनि गूंजा करती थी, केवल 'मी लार्ड' शब्द बार-बार उठता और 'मी लार्ड' कलम रखकर उसकी बात सुनते...

हनुमान फिर कूदे और वह अब बार एसोसिएशन के कमरे में आ गया था। इसमें न जाने कितने कहकहे उसने लगाए थे, कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की थीं, वहीं बैठकर उसने महापुरुषों को अनेक बार श्रद्धांजलियाँ भेंट की थीं। विदा और स्वागत के खेल खेले थे।

वह अब उस कुर्सी के बारे में सोचने लगा जिस पर वह बैठा करता था। तब उसे कमरे की दीवारों के साथ-साथ दरवाज़े के पायदान की याद भी आ गई और वह पायदान को देखने के लिए आतुर हो उठा। वह सब कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ा, पर तभी जैसे किसी ने उसे कचोट लिया। उसने देखा कि लॉन की हरी घास मिट्टी में समा गई है। रास्ते बंद हैं, केवल डरावनी आँखों वाले सैनिक मशीनगन संभाले, हेल्मेट पहने तैयार खड़े हैं कि कोई आगे बड़े और वे शूट कर दें। उसने हरी वर्दी वाले होमगार्डों को भी देखा और देखा कि राइफल थामे पठान लोग जब मन में उठता है, फायर कर देते हैं। वे मानों छड़ी के स्थान पर राइफल का प्रयोग करते हैं। और उनके लिए जीवन की पवित्रता बंदूक की गोली की सफलता पर निर्भर करती है। उसे स्वयं जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नहीं था। वह खंडहरों के लिए आंसू भी नहीं बहाता था। उसने अग्नि की प्रज्वलित लपटों को अपनी आँखों से उठते देखा था। उसे तब खांडव वन की याद आ गई थी, जिसकी नींव पर इंद्रप्रस्थ सरीखे वैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था। तो क्या इस महानाश की नींव पर भी किसी गौरव-गरिमामय कलाकृति का निर्माण होगा? इंद्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत संभव हुआ, जिसने इस अभागे देश के मदोन्मत्त किंतु जर्जरित शौर्य को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है।

एक दिन उसने अपने बड़े बेटे से कहा था, ''जिंदगी न जाने क्या-क्या खेल खेलती है! वह तो बहुरुपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।''

एक दिन उसने अपने बड़े बेटे से कहा था- ''ज़िंदगी न जाने क्या-क्या खेल खेलती है! वह तो बहुरुपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।''

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। वह अपनी उजड़ी हुई दुनिया को फिर से बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला। लिखा था-''पिताजी न जाने कहाँ चले गए।''

तार पड़कर बड़ा भाई अचरज से कांप उठा। वह घर लौटा और पिता की खोज करने लगा। उसने मित्रों को लिखा, रेडियो पर समाचार भेजे, अख़बारों में विज्ञापन निकलवाए। सब कुछ किया, पर वह यह नहीं समझ सका कि आख़िर वे कहाँ गए और क्यों गए? वह इसी उधेड़-बुन में था कि एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab,Jammu

दिन सवेरे-सवेरे देखा, वे चले आ रहे हैं शांत निर्द्वंद्व और निर्मुक्त।

''आप कहाँ चले गए थे?'' प्रथम भावोद्रेक समाप्त होने पर पुत्र न पूछा। शांत मन से पिता ने उत्तर दिया, ''लाहौर।''

''लाहौर!'' पुत्र हठात् कांप उठा, ''आप लाहौर गए थे?''

''हाँ।''

''कैसे?''

पिता बोले, ''रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूँ।''

''पर आप वहाँ क्यों गए थे?''

''क्यों गया था?'' जैसे उसकी नींद टूटी। उसने अपने-आपको संभालते हुए कहा, ''वैसे ही, देखने के लिए चला गया था।''

और आगे की बहस से बचने के लिए वह उठकर चला गया। उसके बाद उसने इस बारे में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इनकार कर दिया। उसके पुत्रों ने पिता के इस परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझा सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे, क्योंकि वे दुनिया के दूसरे काम सदा की भाँति करते रहते थे। हाँ, पंजाब की बात चलती तो आह भरकर कह देते थे, ''गया पंजाब। पंजाब अब कहाँ है?'' पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे। इसी बीच में एक दिन फिर लाहौर चले गए, परंतु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सकें, वे लौट भी आए। पत्नी ने पूछा, ''आखिर क्या बात है?''

''कुछ नहीं।''

''कुछ नहीं कैसे? आखिर आप वहाँ क्यों जाते है?''

तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने धीरे से कहा, ''क्यों जाता हूँ, क्योंकि वह मेरा वतन है। मैं वहाँ पैदा हुआ हूँ। वहाँ की मिट्टी में मेरी दिगी का राज छिपा है। वहाँ की हवा में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है।''

पत्नी की आँखें भर आईं बोली, ''पर अब क्या, अब तो सब कुछ गया।''

''हाँ, सब कुछ गया।'' उन्होंने कहा, ''मैं जानता हूँ, अब कुछ नहीं हो सकता, पर न जाने क्या होता है। उसकी याद आते ही मैं अपने-आपको भूल जाता हूँ और मेरा वतन मिकनातीस की तरह मुझे अपनी ओर खींच लेता है।''

करुण स्वर में पत्नी ने कहा, ''नहीं, नहीं, आपको जाना चाहिए। जा कुछ चला गया उसका दु:ख तो ज़िंदगी-भर सालता रहेगा। भाग्य में यही लिखा था, पर अब जान-बूझकर आग में कूदने से क्या लाभ!''

''हाँ, अब ताजा कुछ बचा है उसी को सहेजकर गाड़ी खींचनी ठीक है।'' उन्होंने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नए कार्यक्षेत्र में जुट गए। उन्होंने फिर वकालत का चोगा पहन लिया। उनका नाम फिर बार एसोसिएशन में गूंजने लगा।

उसने अपनी ज़िंदगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और शीघ्र ही वह अपने काम में इतना डूब गया कि देखने वाले दाँतों के तले ऊँगली दबाकर कहने लगे, ''इन लोगों में कितना जीवट है। सहस्त्रों वर्षों में अनेक पीढ़ियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था वह क्षण-भर में राख का ढेर हो गई, तो बिना आँसू बहाए उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों में ही बना देना चाहते हैं।''

उनका अचरज ठीक था। तंबुओं और कैंपों के आसपास, सड़कों के किनारे, राह से दूर, भूत-प्रेतों के चिर-परिचित अड्डों में, उजड़े गाँवों में, खोले और खादर में, जहाँ भी मनुष्य की शक्ति कुंठित हो चुकी थी, वहीं ये लोग पहुँच जाते थे। और पादरी के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे उन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती अनंत है, शक्ति असीम है, फिर निराशा कहाँ रह सकती है?

ठीक उसी समय जब उसका बड़ा पुत्र अपनी नई दुकान का मुहूर्त करने वाला था, उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला-'पिताजी पांच दिन से लापता हैं।' पढ़कर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकड़े-टुकड़े करके उसने दूर फेंक दिए। और चिनचिनाया, ''वे नहीं मानते तो उन्हें अपने किए का फल भोगना चाहिए। वे अवश्य लाहौर गए हैं।''

उसका अनुमान सच था। जिस समय वे इस प्रकार चिंतित हो रहे थे उसी समय लाहौर के एक दुकानदार ने एक अर्द्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को, जो तहमद लगाए फैज कैप ओढ़े, फटी-फटी आँखों से चारों और देखता हुआ घूम रहा था, पुकारा, ''शेख साहब! सुनिए तो, बहुत दिन में दिखाई दिए, कहाँ चले गए थे?''

उसी अर्द्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया, ''मैं अमृतसर चला गया था।''

''क्या?'' दुकानदार ने आँखें फाडकर कहा, ''अमृतसर।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''हाँ, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।''

दुकानदार की आँखें क्रोध से चमक उठीं, बोला, ''मैं जानता हूँ। अमृतसर में साढ़े तीन लाख मुसलमान रहते थे पर आज एक भी नहीं है।''

''हाँ,'' उसने कहा, ''वहाँ आज एक भी मुसलमान नहीं है।''

''काफिरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नहीं छोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिंदू या सिख नहीं है और कभी होगा भी नहीं।''

वह हँसा, उसकी आँखें चमकने लगीं। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बेरंग था और वह हँसता चला गया, हँसता चला गया, ''वतन, धरती, मोहब्बत! सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं? सबसे बड़ा मज़हब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर का बंदा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वही मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।''

दुकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा, ''आदमी जब होश खो बैठता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।''

साथी ने जवाब दिया, ''जनाब! तब उसकी जबान से खुदा बोलता है।''

''बेशक!'' उसने कहा और मुड़कर उस अर्द्ध-विक्षिप्त से बोला, ''शेख साहब, आपको घर मिला?''

''सब मेरे ही घर हैं।''

दुकानदार मुस्कराया, ''लेकिन शेख साहब! ज़रा बैठिए तो, अमृतसर में किसी ने आपको पहचाना नहीं?''

वह ठाहाका मारकर हँसा, ''तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूँ।''

''सच?''

''हाँ, हाँ!'' उसने आँखें मटकाकर कहा।

''तुम जीवट के आमी हो।''

और तब दुकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मँगाकर दिया। लापरवाही से उन्हें पल्ले में बांधकर और एक टुकड़े को चबाता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दुकानदार ने कहा, ''अजीब आदमी है। किसी दिन लखपति था, आज फाकामस्त है।''

''खुदा अपने बंदों का खूब इम्तहान लेता है।''

''जन्नत ऐसों को ही मिलता है।''

''जी हाँ! हिम्मत भी खूब है। जान-बूझकर आग में जा कूदा।''

'वतन की याद ऐसी ही होती है।'' उसके साथी ने, जो दिल्ली का रहने वाला था कहा, ''अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है तब दिल भर आता है।''

और वह आगे बढ़ रहा था। माल पर भीड़ बढ़ रही थी। कारें भी कम नहीं थीं और अंग्रेज, एंग्लो-इंडियन तथा ईसाई नारियाँ पूर्ववत बाजार कर रही थीं। फिर भी उसे लगा कि वह माल, जो उसने देखी थी, यह नहीं है। शरीर कुछ वैसा ही था, पर उसकी आत्मा झुलस चुकी है। लेकिन यह भी उसकी दुष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहाँ घूम रहे थे उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल की तरह उसके पैर डगर को पहचानते थे। आँखें इधर-उधर देख रही थीं। पैर अपने रास्ते पर बिना डगमगाए बढ़ रहे थे। और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली फिर बुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अंदर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका और वह लॉ कॉलेज के सामने निकल आया। उस समय उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा था। कभी वह इस कॉलेज में पढ़ा करता था...

वह कांपा, उसे याद आया, उसने इस कॉलेज में पढ़ाया भी है... वह फिर कांपा। हूक फिर उठी। उसकी आँखें भर आईं, उसने मुँह फिरा लिया। उसके सामने वह रास्ता था जो उसे दयानंद कॉलेज ले जा सकता था। एक दिन पंजाब विश्वविद्यालय दयानंद विश्वविद्यालय कहलाता था।

तब एक भीड़ उसके पास से निकल गई। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे, बे-घर और बे-जर, लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कड़वा हो उठा। उसने चिल्लाकर उन्हें गालियाँ देनी चाहीं। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गए। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ा। वह जल्दी-से-जल्दी कॉलेज के कैंप में पहुँच जाना चाहता था। उन दोनों व्यक्तियों में से एक ने, उसे पहचाना था, दूसरे से कहा, ''मैं इसको जानता हूँ।''

''कौन है?''

''हिंदू।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साथी अचकचाया, ''हिंदू ?''

''हाँ, हिंदू। लाहौर का एक मशहूर वकील...''

और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल ली। वह आगे बढ़ा, उसने कहा, ''जरूर यह मुखबिरी करने आया है।''

उसके बाद गोली चली। एक हलचल, एक खटपट-सी मची। देखा, एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परंतु जो अनेक व्यक्ति उस पर झुक आए थे, उनमें से एक ने उसे पहचाना और कांपकर पुकारा, ''मिस्टर पुरी ! तुम ! तुम यहाँ, ऐसे...''

मिस्टर पुरी ने आँखें खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया पड़ रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और धीरे से कहा, ''हसन... हसन...'' आँखें फिर भिंच गईं।

हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा, ''जल्दी करो। टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी...''

भीड़ बढ़ती जा रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड, सबने उसे घेर लिया। हसन जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिद्वंद्वी बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उसे अचरज से देख रहा था। उसने एक बार झुककर कहा, ''तुम यहाँ इस तरह क्यों आए, मिस्टर पुरी ?''

मिस्टर पुरी ने एक बार फिर आँखें खोलीं। वे धीमे स्वर में फुसफुसाए, ''मैं यहाँ क्यों आया ? मैं यहाँ से जा ही कहाँ सकता हूँ ? यह मेरा वतन है, हसन ! मेरा वतन...''

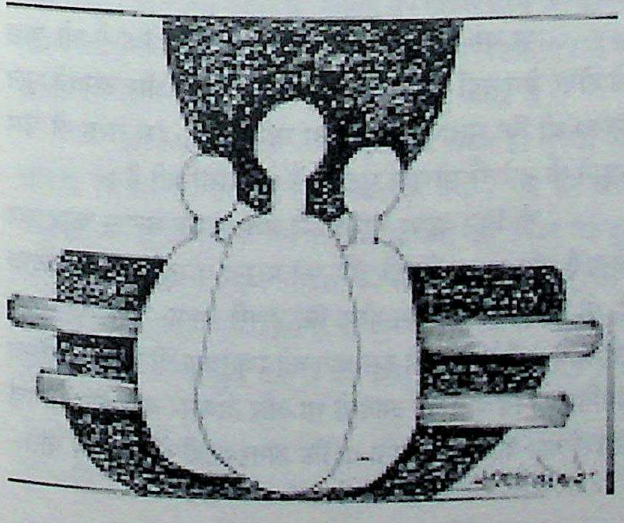

बीच प्रेम में गांधी

संतोष चौबे

सौमित्र जब कमरे में आया तो माधवी सो चुकी थी। कमरे में नीले बल्ब का हल्का-सा प्रकाश फैला हुआ था। माधवी ने पतली-सी सुन्दर रजाई सीने तक खींच रखी थी और उसके चेहरे पर एक गहरी शान्ति की आभा थी।

सौमित्र अपनी जगह पर लेट गया। फिर उसने धीरे से करवट ली और अपना हाथ माधवी के उन्नत वक्ष पर रख दिया।

वह अक्सर शुरुआत इसी तरह करता था। यह शायद भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के कारण हो, या फिर फ्रॉयड द्वारा खोजी गयी किसी ग्रन्थि के कारण, कि उसे माधवी की देह में सबसे सुन्दर चीज उसके सुडौल वक्ष ही लगते थे। वे शादी के इतने सालों बाद भी वैसे के वैसे थे और जैसा कि कई महिलाओं के साथ होता है, न तो फैले थे और न भद्दे ढंग से बेडौल हुए थे। अब वह धीरे-धीरे उनसे खेलेगा। फिर माधवी के चेहरे के हल्के से कई चुम्बन लेगा। माधवी जाग जायेगी और उसकी तरफ करवट लेकर उसे प्रगाढ़ आलिंगन में बांध लेगी। फिर बहुत देर तक वे इसी मुद्रा में रहेंगे। एक-दूसरे को सहलाते हुए, चूमते हुए, प्यार करते हुए।

प्रेम की पूरी प्रक्रिया में चुम्बन और आलिंगन उसे सबसे अच्छे लगते थे। सहज, सुन्दर और मानवीय। लेकिन जिसे असल चीज कहा जाता है, वह उसे आमतौर पर एक बड़ी भद्दी प्रक्रिया लगती थी। वैसा करते समय मनुष्य एकदम जानवरों की तरह दिखता होगा, ऐसा उसका मानना था। पर कैसी विडम्बना थी कि सोच में इतने बदलाव आने के बावजूद इस प्रक्रिया की सभी को अपनाना पड़ता था। सौमित्र को भी।

उसने धीरे-धीरे माधवी के वक्ष को सहलाना शुरू किया। माधवी ने अचानक उसका हाथ उठाया और सीने से अलग कर दूसरी ओर करवट ले ली।

सौमित्र थोड़ा अचकचा गया। उसने इस बार माधवी की कमर में घेरा बनाया और उसे पास लाने की कोशिश करने लगा।

माधवी ने एक बार फिर उसका हाथ अलग करते हुए कहा- 'सोने दो भाई।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर क्या इतनी ही कठोरता काफी है? क्या उसे कुछ और कठोर नहीं होना चाहिए? उसके तमाम विश्वास, तमाम प्यार के बदले में माधवी के इस व्यवहार के लिए सिर्फ इतनी कठोरता काफी नहीं। वह अपने आप को दुख पहुँचायेगा और उसे भी दुख देगा। वह उससे कई महीनों तक प्यार नहीं करेगा और फिर एक दिन, जब वह बाहर गयी होगी, आत्महत्या कर लेगा।

सौमित्र का उत्साह ठंडा पड़ गया। अब वह सीधा लेटकर सोने की कोशिश करने लगा। पर नींद का कहीं अता-पता नहीं था। उसने दूसरी ओर करवट ली कि नींद शायद उस तरफ हो, पर नींद वहाँ भी नहीं थी। अचानक एक विचार उसके मन में आया-

क्या माधवी आजकल अक्सर ऐसा नहीं करने लगी है?''

उसने इस विचार को दूसरी ओर झटकने की कोशिश की। पर विचार मन से गया नहीं। हाँ, ऐसा ही तो था। पहले सीने पर सौमित्र का हाथ पाते ही वह जाग जाती थी या जागते रहकर ही उसकी प्रतीक्षा करती थी। कितने प्रेम से वह उसके चुम्बन वापस करती थी, कैसे उत्साह से उसे अपने आलिंगन में भरती थी। कैसे उसके शरीर की भीनी-भीनी सुगन्ध सौमित्र के मन में फैलती जाती थी। पर अब?

अब अक्सर वह दूसरी ओर करवट कर लेती है। पिछली तीन-चार बार ऐसा ही हुआ था। शायद यह एक पैटर्न ही बनता जा रहा था। तो क्या, तो क्या...

क्या मुझमें आकर्षण नहीं रहा? सौमित्र ने सोचा। पिछले तीन-चार वर्षों में उसके बाल अचानक सफ़ेद हुए थे और मूंछें भी। सामने माथे की ओर से गंजापन झांकने लगा था। शरीर का वजन भी कुछ बड़ा था। पर उसने कभी इन बातों की चिन्ता नहीं की। उसका मानना था कि प्रेम में दिल और दिमाग ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं और उसे अपनी संवेदनशीलता और बुद्धिमत्ता का पूरा भरोसा था।

पर ये भी तो हो सकता है कि माधवी के लिए शरीर ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो? और अब उसे मेरे शरीर में ज़्यादा आकर्षण न दिखता हो सौमित्र ने सोचा। उसने एक सात वर्षीय ग्रन्थि के बारे में सुन रखा था जिसके अनुसार करीब सात सालों में आम स्त्री अपने पति से बोर हो जाया करती है और कहीं और सहारा खोजती है। कहीं माधवी भी मुझसे बोर तो नहीं हो गयी।

सौमित्र का दिल गहरी निराशा से बैठने लगा। वाकई ऐसा ही था। अब न तो वह सुन्दर रह गया था, न आकर्षक। अगर माधवी की रुचि उसमें कम होती जा रही थी, तो इसमें उसका कोई दोष न था।

उसके मन में एक अज़ीब विचार आया। अच्छा हो अगर उसे कोई बड़ी बीमारी हो जाये। जैसी टी.बी. या किडनी की खराबी या कैंसर... तब शायद दो-तीन साल लोग उसकी फिक्र करेंगे ओर माधवी भी चिन्ता करेगी। उसने जैसे कि स्वप्न में देखा, माधवी उसके सिरहाने बैठी है, उसे दवा दे रही है, उसके स्वास्थ्य की चिन्ता कर रही है, किसी कोने में छिपकर दो आंसू बहा रही है, उसके उसके लिए फिक्रमन्द है। उसके लिए डॉक्टरों से मिल रही है और रिश्तेदारों की चिन्ताओं का धैर्यपूर्वक समाधान कर रही है।

पर यह सब सोचने के बाद उसे लगा कि ये जो कुछ भी होगा, प्रेम नहीं होगा। दया या करुणा होगी और उसकी मूल चिन्ता थी कि माधवी उससे प्रेम करे। नहीं, इस तरह से प्रेम बढ़ाने के बारे में सोचना मूर्खता है। मॉरबिडिटी है।

तो फिर अगर माधवी ने उसे पसन्द करना कम कर दिया है और शायद किसी और को पसन्द करना शुरू कर दिया है, तो क्या यह बेहतर न होगा कि उससे साफ-साफ बात कर ली जाये, और फिर उसे इस बात की स्वतंत्रता दी जाये। सौमित्र प्रगतिशील विचारों का आदमी था और अक्सर बातचीत में गर्व से इस बात का जिक्र करता था कि अगर शादी के बीच में पति-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्नी में ऊब पैदा होती है तो उन्हें दूसरी जगह सहारा खोजने का अधिकार है, और अगर उसकी पत्नी ने ऐसा किया, तो वह उसे नहीं रोकेगा। पर इस वक्त वह इस तरह की किसी स्वतंत्रता की कल्पना नहीं कर पाया। वह माधवी से बहुत प्यार करता था और अगर उसने किसी दूसरे व्यक्ति का उसके स्थान पर रखा, तो उसे बहुत चोट पहुँचेगी।

उसका मन एक दार्शनिक उदासी से भर गया। ठीक है अगर माधवी उससे दूरी बनाना चाहती है तो वह भी उससे दूरी रखेगा। उसका भी तो कोई आत्मसम्मान है? वह घर में रहेगा, पर न तो माधवी से प्यार करने की कोशिश करेगा और न ही अपनी ओर से कोई शुरुआत करेगा। हाँ अगर उसने कभी रूचि दिखाई तो...

नहीं, यह भी नहीं। माधवी को अपनी कठोरता का कुछ तो फल मिलना ही चाहिए। यह नहीं हो सकता कि अगर चाहे तो मुझसे प्यार करे ले और चाहे तो कहीं और सहारा खोज ले। नहीं, अगर उसने मुझमें रुचि भी दिखायी तब भी मैं उससे प्यार नहीं करूँगा...।

पर क्या इतनी ही कठोरता काफी है? क्या उसे कुछ और कठोर नहीं होना चाहिए? उसके तमाम विश्वास, तमाम प्यार के बदले में माधवी के इस व्यवहार के लिए सिर्फ इतनी कठोरता काफी नहीं। वह अपने आप को दुख पहुँचायेगा और उसे भी दुख देगा। वह उससे कई महीनों तक प्यार नहीं करेगा और फिर एक दिन, जब वह बाहर गयी होगी, आत्महत्या कर लेगा। उसने एक और चित्र देखा। माधवी बाहर से लौटी है और बिस्तर पर उसकी मृत देह पड़ी है। माधवी पहले तो कुछ समझ नहीं पाती। फिर उसे आवाज लगाती है। उसके साथ जो अन्याय उसने किये थे उन्हें सोच-सोच कर वह गहरे पश्चात्ताप में डूब जाती है। उदास होती जाती है, उदास होती जाती है...

अचानक उसकी तन्द्रा टूटी। ये बहुत ही टुच्चा और घटिया विचार है, उसे लगा आत्महत्या क्यों? वह हर समय आत्महत्या के खिलाफ रहा है। उसे माधवी की उपेक्षा का दुख एक सहृदय और धैर्यवान आदमी की तरह झेलना चाहिए। अगर वह अपने आपको मार लेता है तो इससे क्या सिर्फ माधवी को दुख होगा? उसके ध्रुव तारे से बेटे और रोशनी-सी बिटिया का क्या होगा? क्या उन्हें अगाध कष्ट नहीं होगा? दुख नहीं उठाना पड़ेगा।

तब उसे लगा कि वह इस दुख से बचने के लिए कुछ वर्षों के लिए घर छोड़ दे। उसे राजा भर्तृहरि की याद आयी। सब कुछ था उनके पास, राज-पाट गाड़ी-घोड़े सभी कुछ। बस रानी के प्रेम के सिवा। कैसे उन्होंने एक दिन सब छोड़कर संन्यास ग्रहण किया होगा। कितनी हिम्मत से वे झोली लेकर भीख मांगने निकले होंगे, और कितनी पीड़ा के साथ वे खड़े हुए होंगे जाकर रानी के द्वार पर कितना बड़ा दुख, कितनी गहन निराशा, कैसी महान उदासी...

पर घर छोड़ने से भी बेहतर क्या यह नहीं होगा कि जिस कारण से उसे यह कष्ट उठाना पड़ रहा है, जिस कारण माधवी उसे नीचा दिखा पा रही है, वह उस कारण को ही छोड़ दे? यानी प्रेम करने की इच्छा का ही त्याग कर दे?

अचानक उसे गांधी की याद आयी। सबसे सही आदमी गांधी जी ही थे, उसने सोचा, अगर वह प्रेम और सेक्स की इच्छा का ही परित्याग कर दे, तो जाने कितने कष्टों से बच जायेगा। न उसे माधवी की उपेक्षा की चिन्ता होगी, न ही उसके किसी दूसरे पुरुष से प्रेम करने पर कष्ट होगा। क्योंकि तब वह प्रतियोगिता में ही नहीं होगा। गांधी जी लगभग उसकी उम्र के ही रहे होंगे। जब उन्होंने सेक्स का परित्याग किया, उसके बाद कितना समय, कितना ध्यान वे अपने मुख्य लक्ष्य की ओर लगा पाये, यह सब जानते हैं, यही सबसे ठीक है, उसने सोचा।

त्याग और तप का एक उजाला-सा उसके दिल में फैलने लगा। वह कठिन निश्चय लेने की ओर अग्रसर होने लगा।

तभी माधवी ने उसकी ओर करवट ली और अलसायी आवाज में कहा, 'सो गये क्या?'

वह जाग रहा था, पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। माधवी ने फिर कहा, 'नाराज हो गये? सुनो, आजकल हम दिन भर काम के कारण बहुत थक जाते हैं।'

फिर वह उठी, अपने सौमित्र के माथे पर एक भरपूर चुम्बन लिया और उसे अपने चिर-परिचित आलिंगन में बांध लिया।

गांधी जी पता नहीं कहाँ चले गये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी की तलाश में हत्यारे

प्रदीप पंत

दिल्ली में यमुना किनारे राजघाट पर गांधी समाधि। चारों ओर हरियाली। समाधिस्थल के गेट पर बड़े से ताले। गेट के अंदर ताला, गेट के बाहर ताला।

गेट के सामने चौड़ी सड़क। दिल्ली को घेरे हुए इधर से उधर जाती गोलाकार सड़क। गांधी समाधि के प्रवेश-द्वार के लगभग सामने, सड़क के उस पार मैदान। मैदान में शामियाना है। शामियाने के अंतिम छोर पर बने भव्य मंच से भाषण चल रहे हैं। एक के बाद दूसरा भाषण। दूसरे के बाद तीसरा, चौथा, पाँचवाँ भाषण। हर भाषण का निष्कर्ष यह कि गांधी ने अहिंसा के रास्ते पर चल कर देश को कमज़ोर बनाया, कि देश के बंटवारे के लिए गांधी जिम्मेदार है, कि गांधी अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली था, कि अच्छा ही हुआ कि हमारे कुछ लोगों ने आज़ादी के दिखावटी संघर्ष में भाग नहीं लिया, कि बहुत अच्छा हुआ जो नाथूराम गोडसे ने...

सामने कुर्सियों पर बैठे लोगों के ऊँची आवाज में नारे- ''नाथूराम गोडसे जिंदाबाद! नाथूराम गोडसे अमर रहें।''

मंच से ललकार कि ''उठो, भारत माता के सपूतों उठो! बढ़ो, कर्तव्य-पथ पर बढ़ो! बड़े चलो! अभी नहीं तो कभी नहीं।''

भीड़ में जोश आ गया है। वह कर्तव्य-पथ पर बढ़ने के लिए उठ खड़ी हुई है। वह 'गांधी मुर्दाबाद' और 'गोडसे जिंदाबाद' के नारे लगा रही है।

चैनल यह सब लाइव दिखा रहे है। चैनल देखने वाले फेसबुक पर सक्रिय हो गए है।

एक की टिप्पणी- ''लो जी, बापू भी ताले में। हे राम!''

दूसरे की पोस्ट- ''कहाँ तो देश-विदेश के सैकड़ों लोग रोजाना यहाँ आते हैं, राष्ट्रपिता को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं, राजघाट कभी बंद नहीं होता, कहाँ इन शोहदो की वजह से राजघाट को बंद कर देना पड़ा है।''

''खबरदार, अगर इन्हें शोहदा कहा। साले, शोहदा होगा तू, तेरा बाप। ये देशभक्त हैं, सच्चे देशभक्त। और वो गांधी ? महा डरपोक, इसीलिए गेट पर ताला ठुकवा दिया। गांधी मुर्दाबाद! गोडसे जिंदाबाद!''-चौथे की सबको काटते हुए धमकी भरी टिप्पणी।

''गांधी, अहिंसक गांधी से डरने वाले ही गांधी मुर्दाबाद, गोडसे जिंदाबाद के नारे लगाते हैं।'' -एक और पोस्ट। फेसबुक पर पोस्ट ही पोस्ट, टिप्पणियाँ ही टिप्पणियाँ।

इस बीच भीड़ ने सड़क पार कर ली है। सड़क के दोनों ओर रुकी हुई कारें, ट्रक, ऑटो, बसें आदि आगे बढ़ गई हैं। भीड़ में ज्यादातर के हाथों में लट्ठ है। चार-छः, लट्ठ ट्रकों, बसों और कारों पर भी पड़ जाते हैं। कुछ शीशे टूटते हैं। टूटकर जमीन पर गिरते हैं, लेकिन लट्ठधारी देशभक्तों के सामने कोई किसी तरह का विरोध प्रकट करने का साहस नहीं दिखा पाता।

भीड़ गांधी को ललकार रही है। उन्मत्त होकर उनके खिलाफ नारे लगा रही है। नारों के साथ-साथ गालियां भी।

भीड़ ने अब गांधी समाधि के गेट के बाहर खड़े पुलिस वालों को दौड़ा दिया है। पुलिस वाले इधर-उधर भागे चले जा रहे हैं। लट्ठधारी खिलखिला रहे हैं, ठहाके लगा रहे हैं। उन्होंने ताले तोड़कर गेट खोल दिया है। आठ-दस लट्ठ गेट पर भी पड़ गए हैं। गेट के अंदर खड़े पुलिस कर्मी भी भाग चुके हैं। अब चारों तरफ भीड़ का साम्राज्य है।

चैनल सब कुछ 'लाइव' दिखा रहे हैं, एकदम साक्षात। फेसबुक पर दनादन पोस्ट जारी है।

भीड़ आगे बढ़ती हुई अब समाधि स्थल पर पहुँच गई है। वह उत्तेजित और आंदोलित है। भीड़ को लगता है, गांधी अपनी ही समाधि पर अपना पतली डंडियों वाला चिर-परिचित चश्मा लगाए और लंगोटीनुमा धवल-उज्जवल धोती पहने खड़े हैं।

तभी एक अपने साथी से कहता है, ''देखो तो कैसा देहाती लग रहा है।''

''सुना है, इसी पोशाक में यह अंग्रेजों के साथ कोई बैठक करने लंदन भी चला गया था।''

''और अंग्रेज इसे देख कर हँसे होंगे।''

''हाँ, हँसे तो होंगे ही।''

पहला वाला अब सामने की ओर इशारा करते हुए कहता, ''इस छोटे से आदमी का कद आज इतना बड़ा कैसे हो गया ?''

''हमें डराने के लिए।''

''किसकी हिम्मत है जो हमें डरा सके। बस, कुछ ही देर की बात है इसका काम तमाम होने में।''

''देख-देख, गौर से देख, गांधी खड़ा किस बेशर्मी से मुस्करा रहा है।''

''मुस्करा नहीं रहा, मुँह चिड़ा रहा है।''

तभी भीड़ में से कई लोग लट्ठ भांजते हुए आगे दौड़ पड़ते है। कुछ के हाथों में ईंट-पत्थर है। जिनके हाथों में लट्ठ या ईंट-पत्थर नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं, उनकी मुट्ठियाँ तनी हुई है। सभी गांधी को ललकार रहे हैं। ललकारते हुए गालियाँ दे रहे है।

''मारो छोड़ना नहीं इसे।'' चीखती हुई कई आवाजें एक साथ।

तभी उन्हें लगता है, गांधी पाल्थी मारकर जमीन पर बैठ गए है।

आश्चर्य से वे एक-दूसरे की ओर देखने लगते हैं। मन ही मन सोचते हैं कि हम तो इसकी ज़िंदगी का खेल खत्म करने के लिए यहाँ आए है, लेकिन ये है कि हमारे ही सामने पाल्थी मार कर इत्मीनान से बैठ गया है। हिम्मत तो देखो इसकी। लेकिन कब तक ऐसी हिम्मत दिखाएगा ? आज मरना तो होगा ही इसे।

''ढोंगी, पक्का ढोंगी है ये गंजी खोपड़ी वाला।'' भीड़ में से बीच-पच्चीस लोग एक साथ चिल्लाते हैं।

गांधी पर गालियों की बौछार होने लगती है। हरेक के होठों पर गाली। हाथों में उठे हुए लट्ठ और ईंट-पत्थर और तनी हुई मुट्ठियाँ और चेहरों पर आक्रोश।

जमीन पर बैठे हुए गांधी अब अपना प्रिय भजन गाने लगे हैं- ''वैष्णव जन तो तेने कहिये, पीर पराई जाणे रे....''

भीड़ आश्चर्य में है कि लो, इसने भजन भी शुरू कर दिया। भीड़ में शामिल लोग गांधी का मुँह बंद कर देना चाहते हैं, लेकिन तभी भजन को दुहराते हुए एक साथ कई स्वर उठने लगते हैं, स्त्रियों और पुरुषों के समवेत स्वर, लेकिन दिखाई कोई नहीं देता। कहाँ से उठ रहे हैं ये समवेत स्वर ? भीड़ का है यह प्रश्न, लेकिन उत्तर किसी के पास नहीं है।

भीड़ अब उत्तेजित हो गई है। उत्तेजित और उन्मत्त। उन्मत्त और उग्र। लट्ठ और ईंट-पत्थर वाले हाथ फिर ऊपर उठ गए है। मुट्ठियाँ फिर तन गई है। भीड़ में कुछ की आँखों में खून उतर आया है, यह सोचकर कि पहले समाधि से निकल गांधी सामने आ खड़ा हुआ, फिर पाल्थी मारकर इत्मीनान से बैठा, बैठकर भजन गाने लगा, फिर और भी कई अदृश्य स्त्री-पुरुष समवेत स्वर में भजन दुहराने लगे।

''हमारे आगे इतनी हिम्मत गांधी और इन लोगों की। क्या समझता है ये गांधी अपने को और क्या समझते हैं इसके ये लोग ? दम हो तो सामने आएँ।''

तभी भीड़ का नेतृत्व कर रहा और हाथ में सबसे बड़ा लट्ठ लिए लंबा-चैड़ा आदमी सभी को आदेश देता है- ''घेर लो, अच्छी तरह घेर लो, गांधी भाग कर जाने न पाए। छिपे हुए इसके कीर्तनिये भाग कर निकल न पाएँ। एक-एक को ढूंढ कर कूट डालो। इतना कूटो कि इनके होठों से भजन-कीर्तन तो क्या एक शब्द निकल न पाए और एक-एक हड्डी के चार-चार टुकड़े हो जाएँ।''

भीड़ लट्ठ और ईंट-पत्थर हाथों में लिए चारों ओर फैल जाती है। गांधी समाधि पूरी तरह घेर ली गई है।

पाल्थीमार कर जमीन पर बैठे गांधी अब अपना एक और प्रिय भजन गाने लगे, ''ईश्वर-अल्ला तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान।'' साथ ही स्त्री-पुरुषों का समवेत स्वर।

''कहाँ छिपे हैं ये सब।'' लंबा-चौड़ा आदमी चीखते हुए अपने साथियों से कहता है, ''सुन रहे हो इस धूर्त को ? ईश्वर के साथ खड़ा कर रहा है अल्लाह को।''

''और भगवान से कह रहा है कि वह हमें सन्मति दे। अरे सन्मति तो इसे आनी चाहिए।'' एक अन्य लट्ठधारी की गुस्साई हुई आवाज।

भीड़ एक के बाद एक गांधी विरोधी नारे लगाने लगती है। बीच-बीच में सुनाई देता है- ''नाथूराम गोडसे जिंदाबाद! मोहनदास करमचंद गांधी मुर्दाबाद! नाथूराम गोडसे अमर रहें।''

गेट के बाहर सड़क किनारे चैनलों की गाड़ियाँ खड़ी है। भीड़ के आसपास चैनलों के संवाददाता हाथ में माइक लिए धाराप्रवाह बोलते चले जा रहे हैं। बीच-बीच में लठैतों से इंटरव्यू। कैमरामैन अपने काम में सक्रिय। लाइव प्रसारण जारी है।

चैनलों में एक-दूसरे से अधिक टी.आर.पी. बटोरने की स्पर्धा चल रही है, मानो चैनल नहीं खेल का मैदान हो जहाँ हर दौड़ने वाला दूसरे को पूछा ? कर खुद आगे निकल जाना चहाता है, लेकिन मैदान में बेईमानी से किसी को पछाडने की संभावना बहुत कम होती है, जबकि चैनलों में खेल ही बेईमानी और उठा पटक का चलता है। खेल चल रहा है, लगातार चल रहा है। चैनलों को कई दिन बाद एक रोमांचक खबर मिली है, जो चौबीसों घंटे चलेगी। शायद दो-तीन दिन लगातार चलती रहे, जिसकी वजह से शेयर मार्केट की भांति टी.आर.पी. भी उछालें मारता चला जाएगा। अपने-अपने न्यूज रूम में एँकर वीर रस में टिप्पणियाँ करते हुए इस खेल को उत्तेजक बनाने में जुटे हैं। एकाध एँकर ने तो नाथूराम को राम का अवतार ही घोषित कर डाला है। बीच-बीच में एक छोटे से ब्रेक में मिर्च-मसालों, डिटरजेंट, आर.ओ, फ्रिज, ए.सी, हर्बल टुथपेस्ट, हर्बल साबुन वगैरह के बड़े-बड़े विज्ञापन चले आ रहे हैं। इन्हें बनाने वाली कम्पनियों के मालिक चैनलों के माई-बाप हैं।

और मोबाइलों पर फेस-बुक वाले सक्रिय हैं। फिर नई पोस्ट, फिर नई टिप्पणियाँ। और बीच-बीच में गालियों का आदान-प्रदान।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भीड़ अब समाधि-स्थल पर लट्ठ चलाने लगी है। एक के बाद एक दनादन, कुछ लट्ठ और ईंट-पत्थर चलाने के साथ ही चीख रहे हैं, ''मारो साले को।''

''छोड़ो मत तब तक, जब तक ये गांधी का बच्चा चित्त न हो जाए।''

''और इसके भजन-कीर्तनियों की भी दौड़ा-दौड़कर धुनाई कर दो, तब पता चलेगा इन्हें कि 'सब को सन्मति दे भगवान' का मतलब क्या होता है?''

भीड़ को लट्ठ चलाने और ईंट-पत्थर फेंकने में मजा आ रहा है लेकिन कुछ देर में ये मजा थकान में बदल जाता है। अब लट्ठ उन्हें दे दिए जाते हैं जो मुट्ठियाँ ताने हुए चीख चिल्ला रहे थे। अब उनकी बारी है गांधी और उनके भजन-कीर्तनियों पर लट्ठ बरसाने की। वे पूरी ताकत से लट्ठ बरसाने लगते हैं। इस क्रम में आठ-दस लट्ठ टूट भी जाते हैं। कुछ देर में लोग भी थक जाते हैं। थके हुए लोग समाधि-स्थल से गेट की ओर लौटते हैं। लौटते हुए वे गेट पर भी दो-चार लट्ठ जड़ देते हैं। अब वे सड़कर पार करके उधर ही लौटने लगते हैं जिधर शामियाना तना है। एब बार फिर ट्रैफिक कुछ देर के लिए रुक गया है। इन थके हुए लोगों को लगता है कि वे जांबाज हैं, कि उनसे बड़ा शूरवीर कोई नहीं हैं उनका प्रेरणा स्रोत है नाथूराम गोडसे, जिसके उन्होंने कुछ जगह मंदिर बनवाए हैं और इन मंदिरों में गोडसे की मूर्ति स्थापित की है।

भीड़ में शामिल इन लोगों के सीने तन जाते हैं। तने हुए सीनों के साथ वे शामियाने में पहुँचते हैं, जहाँ शौर्य-प्रदर्शन के बाद उनके लिए चाय-पानी का इंतजाम है।

चाय पीते हुए कोई कहता है, ''हमने इतने लट्ठ चलाए, पर लगे समाधि के फर्श पर ही। हाथ झुन्ना उठे, लेकिन न गांधी को लगे, न उनके भजन-कीर्तनियों को।''''ऐन मौके पर वह भजन-कीर्तनियों को लेकर गायब जो हो गया।''

''गायब नहीं हुआ, भाग निकला।''

''हाँ, वही। पक्का भगोड़ा समझो''

''आखिर भाग कर गया कहाँ होगा?''

''ये तो नहीं पता, लेकिन जब हम लट्ठ बरसा रहे थे, तब भी हमारे कानों को 'वैष्णव जन' सुनाई दे रहा था।''

''और इसके बाद हमें 'ईश्वर-अल्ला' सुनाई पड़ा।''

''तुम लोगों को भ्रम हुआ होगा।'' किसी अन्य का मत।

''नहीं-नहीं भाई जी, कोई भ्रम नहीं, हम तो सोच रहे हैं कि गांधी और उसकी भजन-कीर्तन मंडली एकाएक लोप कहाँ हो गई?''

''समझ लो कि अजब मायावी प्राणी है वह, किसी पहुँचे हुए जादूगर जैसा।''

''लेकिन वह भले ही मायावी हो, उसे छोड़ना नहीं है। खोजना होगा, किसी भी कीमत पर।''

उन्मत्त भीड़ अब नए जोश के साथ अलग-अलग समूहों में शहर भर में फैल गई। शहर-शहर, कस्बे-कस्बे, गाँव-गाँव में फैल गई है। वह गांधी को ढूंढ़ रही है। गांधी इसके सामने हैं, पर गांधी उसे नहीं मिल रहे हैं। भीड़ की तलाश जारी है। भीड़ खीझ रही है। खीझ कर वह 'नाथूराम गोडसे जिंदाबाद' का नारा लगाते हुए किसी की भी हत्या कर देती है। वह हत्या का उत्सव मनाती है। उसे ऐसा उत्सव मनाने में आनंद आता है। उसे खून से लथपथ छटपटाते-तड़पते लोगों को देखने में आनन्द आता है। वह उन इश्तहारों को फाड़ देती हैं। लेकिन उसे गांधी नहीं मिलते। वह एक बार फिर गांधी की हत्या करना चाहती है। उसे आश्चर्य होता है गांधी मर कर भी जिंदा है।

लाइव टेलिकास्ट अपने पूरे क्लाइमैक्स के साथ जारी है। विभिन्न शहरों, कस्बों से चैनलों के संवाददाता अपनी-अपनी रिपोर्ट दे रहे हैं।

किसी चेनल के संवाददाता को अचानक सद्बुद्धि आ जाती है। वह कहता हुआ सुनाई देता है- ''गांधी की जितनी बार हत्या होगी, वह उतनी बार जी उठेंगे। गांधी एक विचार का नाम है और विचार की कभी हत्या नहीं हो सकती।''

चैनलों ने लाइव प्रसारण की पूरी रिकॉर्डिंग कर ली है। रिकॉर्डिंग चैबीसों घंटे जारी है। मिर्च-मसालों, डिटरजैंट, आर.ओ., फ्रिज, ए.सी., हर्बल टुथपेस्ट, हर्बल साबुन के साथ ही अब वस्त्रों, जूतों, कारों, दुपहियों आदि के विज्ञापन भी आ गए है। एंकर खुश हैं, संवाददाता खुश है। सबसे अधिक चैनल मालिक खुश हैं। टी.आर. पी. चढ़ रही है, आमदनी बढ़ रही है। वे चाहते हैं कि हर चार-छः महीने में इसी तरह गांधी-हत्या की कोशिश होती रहे।

कोशिश करने वाले, करते है, लेकिन गांधी हैं कि उनकी मौत ही नहीं होती।

मो.9013266057

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राम और गांधी

ध्रुव शुक्ल
(प्रसिद्ध कवि, कथाकार व आलोचक)

हमारा जीवन एक उपवन जैसा ही तो है जहाँ अपने-अपने स्वभावों की खरपतवार हटाकर सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, स्वाध्याय और प्रणति के फूल खिलाये जा सकते हैं। जीवन की पूजा के लिए महात्मा गांधी ने इन्हीं फूलों के संचय करते रहने की याद दिलायी।

महात्मा गांधी ने रामायण पढ़ी थी। रामायण पढ़ने से उजड़ी हुई अयोध्या फिर बस जाती है। उनके सामने उजड़ता हुआ देश था। देश और देह में दूरी नहीं होती। अपनी देह के बसाव को जानकर उसमें अपनी नागरिक चेतना की भूमिका को पहचान लेने से ही देश आबाद बना रहता है। अपनी प्रकृति के अनुरूप सबके अलग स्वभाव होते हुए भी चेतना की एकता सब में होती है। अनादि और नश्वर प्रकृति में ही वह चेतना अपनी जगह बनाये हुए है जो दिखाई नहीं देती और हमारी नश्वर देह उसके बिना किसी काम की नहीं। उसी सर्वचेतन सत्य को अपने आत्मभाव से पहचानते हुए एक ऐसे सत्याग्रही जीवन की कल्पना की जा सकती है जो स्थानीय रूपों और साधनों के बीच आपसी सहकार और सद्भाव में गुँथा हुआ हो। इसके बिना संसार में किसी का गुजारा नहीं हो सकता। महात्मा गांधी का सत्याग्रह परायेपन का त्याग है, इस त्याग के बिना जीवन में अहिंसा की सिध्दि नहीं हो सकती ।

नाम-रूपों से भरे संसार में सदियों से सर्वचेतन सत्य को हज़ारों नामों से पुकारा गया है। गांधी जी इन्हीं नामों से राम-नाम चुनकर उसी सर्वचेतन सत्य को पुकारते हैं जो सबका हमदम है और हमराह है । उसी का एक नाम रहीम भी हो सकता है। गांधी जी का राम केवल दशरथनंदन नहीं है, वह तो राम निरंजन है जिसमें सारा जगत पसारा है। महात्मा गांधी सृष्टि के उसी सनातन चैतन्य को राम कहते हैं जो सब में बसा हुआ है। ज्ञानी कहते ही आये हैं कि हमारा संसार पानी पर लिखी लिखत जैसा है। जैसे जल और उसकी लहर के बीच कोई दूरी नहीं होती, बिलकुल ऐसे ही सब एक-दूसरे से अभिन्न हैं। सागर सबके आँसुओं से खारा होता रहता है और सब मिलकर उसके जल को सबके पीने योग्य बना सकते हैं। संसार में कुछ भी अच्छा और बुरा नहीं होता। कुयोग और सुयोग पाकर ज़िन्दगी और चीजें अच्छी या बुरी कहलाने लगती हैं। कुसंगति में फँसा धुँआ मुँह पर कालिख पोतने के अलावा और कर ही क्या सकता है। वही धुँआ आग, पानी और हवा के सुसंग से सबको जीवन देने वाला बादल बन जाता है। भवसागर के खारेपन को सबके पीने योग्य बनाने की इस अनादि कला को पहचानकर ही लोकतंत्र का पालन-पोषण संभव है। महात्मा गांधी देश के आकाश पर इसी तरह बादल बनकर छा गये और सबके जीवन पर झरकर सबके करीब आ गये। गांधी जी के राम ऋतुकाल में बसकर बिलकुल ऐसे ही जीवन जल होकर सबके करीब आते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारा जीवन एक उपवन जैसा ही तो है जहाँ अपने-अपने स्वभावों की खरपतवार हटाकर सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, स्वाध्याय और प्रणति के फूल खिलाये जा सकते हैं । जीवन की पूजा के लिए महात्मा गांधी ने इन्हीं फूलों के संचय करते रहने की याद दिलायी। वे यह भी याद दिलाते रहे कि आँखों का पानी मर जाने से जीवन का उपवन सूखने लगता है क्योंकि इस उपवन को सींचने के लिए सबकी आँखों का पानी चाहिए। सबका निर्मल मन ही इस उपवन का माली है। जहाँ सबको अपने जीवन की रोज निंदाई-गुड़ाई करना पड़ती है।

गांधी के राम का चरित उस मनुजरूप नायक की खोज है जिसकी छाया में नागरिक धर्म फलता-फूलता है। तुलसीदास विषमता के अभाव को ही सच्चा रामप्रताप कहते हैं, जहाँ जीतने के लिए कोई दूसरा नहीं है, सबको अपने-अपने मन को ही जीतना पड़ता है। तुलसीदास की तरह गांधी जी के राम सबके स्वार्थ रहित सखा जैसे हैं जो सेवा और स्वार्थ के बीच सेतु बाँधने की कला सिखाते हैं। यह सेतु बँध-बँधकर बार-बार टूटता भी है। तभी तो कवि निराला के राम के भावित नयनों में जल छलक आता है, वे अकेले में रोते हैं। महात्मा गांधी भी अकेले में रोते थे।

राम का अयोध्या लौट आने का अर्थ अपनी ओर वापसी है। रामत्व हमारा ही अर्जित किया हुआ जीवन जल है। इससे पहले कि हमारी आँखों का पानी ही मर जाये, हमें प्रकृति की तरफ जाना होगा जो राम का आश्रय है। जब वह हर ली जाती है तो राम उसी का पता पूछते फिरते हैं। रामायण गांधी जी और हम से कहती है, हमारा शरीर ही अयोध्या है और हृदय राम का घर है। याद करें तुलसीदास रचित उस दो पक्षियों (कागभुसुण्डि और गरुड़) के संवाद को जहाँ सबकी देह को ही मुक्ति की सीढ़ी कहा गया है,किसी सांप्रदायिक विचारधारा से और किसी मंदिर की सीढ़ियों पर किसी को मुक्ति नहीं मिलती। सीढ़ियाँ तो हमारी देह के भीतर ही हैं जिनके सहारे अपनी ही गहराई में उतरना पड़ता है।

दरिद्रता से अगर दुख उपजता है तो वह अपनी ही मेहनत से जायेगी। परदेसी पूँजी निवेश ने कभी किसी की दरिद्रता को कम नहीं किया बल्कि बढ़ाया ही है। वे पक्षी कह रहे हैं कि परनिन्दा से बड़ा कोई पाप नहीं है। वे किसी धर्म को नहीं, अहिंसा को परमधर्म कह रहे हैं। संसद से सड़क तक हम परनिन्दा के पाप को ही तो ढो रहे हैं। गंगा सूख रही है, पता नहीं यह पाप किस डिटर्जेंट से धोया जायेगा या परमाणु उर्जा उसे धोयेगी। रामायण में परनिन्दा से बड़ा कोई पाप नहीं और गांधी जी इस पाप से सदा दूर बने रहे। राम तो अपनी प्रजा से कहते हैं कि अगर मैं कोई भूल-गलती करूँ तो मुझे बिना किसी भय के टोकते रहना। गांधी जी के रामराज्य का अहिंसक और बलशाली प्रतिमान 'सविनय अवज्ञा' रामायण में मिल जायेगा।

आधुनिक सभ्यता सृष्टि की देह को विखण्डित करके ही समग्र को देखने की चाहत से भरी है जहाँ कुछ अस्थिपंजर ही हाथ आते हैं। संग्रहालयों में रखे यही चेतनाहीन अवशेष आधुनिक सभ्यता के ज्ञान की निशानी हैं। जेण्डर कांशस दुनिया यह समझने के लिए तैयार ही नहीं कि खुदाई न्यूट्रल है। वह होते हुए भी नहीं जैसी है। उसका न्याय साभ्यतिक न्याय से भिन्न है - वहाँ स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, ऊँच-नीच जैसा कुछ भी नहीं। पैगम्बरी न्याय की सीमा में बंदिनी देह असीम के स्वराज्य में बसना भूल जाती है। फिर उसे न्याय के लिए सदा दूसरा चाहिए। आधुनिक सभ्यता उस प्राकृतिक परिवेश को बचाकर नहीं रख सकी जहाँ मानुस-तन अपने आपसे अपना न्याय करने में समर्थ होता है। निमित्तमात्र होकर जी रही हमारी स्वराजी देह को पर-राज्य का संसाधन बनाया जा रहा है। महात्मा गांधी आधुनिक सभ्यता के इस विकृत रूप को रामायण की रौशनी में जल्दी ही पहचान गये। रामायण तो कहती है कि भवसागर को पार करने के लिए अपने शरीर को ही नौका बनाना चाहिए। जीवन तो नदी जैसा है, उसे अपने हठ के किनारों से नहीं बाँधा जा सकता।

कोई प्रभु किसी को पार नहीं उतारते, प्रजा ही पार उतारती है और प्रभु चाहें तो उन्हें भी पार उतार देती है, उनसे कोई उतराई भी नहीं लेती। प्रजा को तो बस अपनी देह की नाव की चिंता होनी चाहिए कि कहीं यह पत्थर की न हो जाये। उसे तो भवसागर में निर्भार तैरना आना चाहिए। पत्थर की नाव तो डूब जाती है और प्रभु को भी डुबाती है। जब फिरंगियों की बंदिनी प्रजा पार नहीं उतर पा रही थी तब महात्मा गांधी ने उसे राम-नाम की पतवार थमाकर स्वराज्य की स्वयं-प्रकाशित रौशनी में भवसागर को पार करने की कला सिखायी।

हम सब पानी की बिरादरी के हैं और हमारी नौका आज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्व बाजार की विषय-बयारों के बीच डोल रही है। बहुराष्ट्रीय डबरों के ठहरे हुए पानी में हमारी नौका फँसती जा रही है। महात्मा गांधी बार-बार याद दिलाते रहे कि हमारी देह ही साधन है और आत्मबल ही साध्य है। हमारा हृदय ही राम का घर है और राम ही आत्मबल हैं। असहयोग किसी और से नहीं, अपने मन से है। हमारे मन को ही यह आधुनिक सभ्यता लुभाती और ललचाती है। क्यों न हम अपनी देह के कपास को धुनककर उतनी चादर बुनना सीख लें जिसके बाहर पैर पसारने की जरूरत ही नहीं रहती। गांधी जी देह पर आने वाली विपदाओं से सामना करना ही तो सिखाते रहे क्योंकि गुलामी स्वीकार करती देह ही देश की विपत्ति बन जाया करती है। तुलसीदास विनय पत्रिका रचते हुए अपने आपसे ही तो कह रहे हैं -'मैं केहि कहौं बिपति अति भारी।' मेरे ही मोह, लोभ और अहंकार मुझे अनाथ बना रहे हैं, उस हृदय-भवन पर डाका पड़ा है जो राम का घर है, मेरी देह में बसे राम के धाम को तस्कर और उपद्रवी लूट रहे हैं, मैं कैसे अपने इस घर को बचाऊँ।

अपने तन की चादर से बाहर पैर नहीं पसारे जा सकते। पर मन तो स्वभाव से ही उपनिवेशवादी है। पैर पसारे बिना उसे चैन नहीं। घर और घाट मनमानी से भरते जा रहे हैं। दुनिया में आते-जाते लोगों को देखकर नहीं लगता कि इन्हें कुछ मिल गया है। सब अपने-अपने दुख का मुकुट लगाकर दूसरों के दुख पर राज्य कर रहे हैं। दुख की ठेकेदारियाँ चल रही हैं। सब दुख को और बड़ा बनाकर राज्य का विस्तार कर रहे हैं। अपने ही दुखों के साम्राज्य में अपने आपसे हार भी रहे हैं और कहते फिरते हैं कि दूसरों ने हरा दिया। जो अपने आपको नहीं जीत सकते वे दूसरों को क्या जीतेंगे। फिर कोई दूसरा है भी तो नहीं जिस पर आक्रमण किया जा सके। सारी लड़ाई तो अपने आप से है। महात्मा गांधी से उनकी गीता माता कहती हैं कि - विजय का क्षण वही है जो कामनाओं से खाली है। बाकी तो हर पल हार होती ही रहती है। कोई हठ काम नहीं करता।

बापू याद दिलाते हैं कि हमारी देह जन्मजात स्वराजी है। वह किसी और का नमक नहीं खाती। किसी और का नमक खाते ही वह पर-राज्य में जीने लगती है और अपने आपको भूलती ही चली जाती है। अपने आपसे दूर निकल आयी देह अपनी मुक्ति के लिए अकुलाती है। - 'पास होते हुए भी प्रकाश दूर क्यों लगता है। जो सर्वव्यापी है, वह अछूत क्यों

है। महात्मा गांधी इसी सर्वव्यापी प्रकाश की ओर बढ़ते चले आये' यह प्रकाश ही उनका राम है ।

अपने पाँवों पर खड़ा जीवन प्रार्थनाओं से भर जाता है। आकाश में उठते अजान के स्वरों को गोधूलि बेला में गायों के गले में झूलती घण्टियाँ सहज संगीत देती हैं। आकाश में टकटकी लगाये पूरा गाँव दूज का चाँद खोजता है। गाँव के एक छोर पर साँझ घिरते ही दीया टिमटिमाने लगता है। कंधों पर हल रखे खेतों से लौटते किसानों को देखो तो लगता है कि आज फिर वे अपना शरीर मिट्टी में मिला आये हैं। उनकी परछाई भी उनके साथ नहीं। तभी तो वे हर अजनबी राहगीर के हृदय में बसे राम को पहचान लेते हैं, उससे राम-राम कहते हैं।

सागर तट पर डूबते सूर्य को देखो तो पल भर के लिए लगता है कि यह बुझ जायेगा। पर वह कभी नहीं बुझता, दीये की लौ बनकर झिलमिलाता है, फिर सूर्य होने के लिए व्याकुल-सा लगता है। झलमिलाते दीये को देखो तो लगता है कि जैसे वह अपने आपको बुला रहा है। महात्मा गांधी ने अपने आपको बुलाने और सबके पास जाने के लिए राम का नाम चुना।

मो. 094253 01662

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी का अस्पृश्यता चिंतन

जयप्रकाश कर्दम
(सुप्रसिद्ध दलित चिंतक, लेखक)

गांधी का नाम आते ही सहसा आँखों पर गोल ऐनक लगाए, शरीर पर एक लँगोटी पहने, हाथ में लाठी पकड़े तेज़ चाल से चलने वाले व्यक्ति की तस्वीर मस्तिष्क में उभर आती है, जो शरीर से दुबला लेकिन मानसिक रूप से दृढ़ और मज़बूत इरादों वाला है। गांधी के साथ उनके प्रिय भजन 'रघुपति राघव राजा राम' और 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर परायी जाने रे' भी साथ-साथ याद आ जाते हैं। किसी व्यक्ति की सम्माजनक और विशिष्ट पहचान एक दिन या साल में नहीं बनती, लम्बे समय तक उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों एवं आचरण के आधार पर बनती है। गांधी की यह छवि भी देश की स्वाधीनता के लिए उनके दीर्घ एवं सतत संघर्ष और उनके लोक व्यवहार के आधार पर बनी है। गांधी जीवित रूप में अब नहीं हैं लेकिन विचार के रूप में वह आज भी जीवित हैं तथा देश के जन-मानस में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। गांधी आज एक उदाहरण हैं। और यह सहज स्वीकार्य तथ्य है कि अपने समय में राजनीति में गांधी जी का जितना ज़बरदस्त प्रभाव था, वैसा अन्य किसी नेता का नहीं था। यद्यपि कांग्रेस में भी उनके वैचारिक प्रतिद्वंदी मौजूद थे और एक अधिवेशन में गांधी समर्थित उम्मीदवार कांग्रेस का अध्यक्ष नहीं बन पाया था। किंतु इस सब के उपरांत समाज और राजनीति में गांधी की बात सबसे अधिक सुनी और मानी जाती थी।

दलित संदर्भ में गांधी की भूमिका एक लम्बे समय से विचार और विवाद का विषय रही है। गांधी जी के समर्थक और अनुयायी, विशेष रूप से सवर्ण हिंदू, अस्पृश्यता उन्मूलन के संबंध में गांधी जी के विचार और प्रयासों का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए उनको दलितों का मसीहा और नायक मानते और प्रचारित करते हैं तो दलित इस संदर्भ में उनको अपना मसीहा और नायक मानने से इंकार कर डॉक्टर अम्बेडकर को अपना मसीहा और नायक मानते हैं। गांधी जी द्वारा किए गए अछूतोद्धार के प्रयासों की प्रशंसा करने वाले लोगों की दृष्टि में भी अछूतों का गांधी जी से बड़ा कोई उद्धारक नहीं हुआ। गांधी के समक्ष अम्बेड़कर द्वारा अछूतों के हित-संरक्षण और उन्नति के लिए किए गए दीर्घ एवं व्यापक संघर्ष और कार्य भी उनको गौण लगते हैं। शरीर पर न्यूनतम वस्त्र, साधारण रहन-सहन, खान-पान और मनुष्यों में सबसे निम्न और हे समझे जाने वाले अछूतों के प्रति उनकी दया और करुणा तथा उनकी बस्ती में जाना, यह सब सामान्य से अलग और विशिष्ट था। इस सब के आधार पर ही गांधी जी को उनके अनुयाइयों द्वारा महात्मा कहा जाता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी जी को अपने लिए यह उपाधि या सम्बोधन स्वीकार्य था। उन्होंने कभी इसका विरोध नहीं किया। आज भी देश और दुनिया में मोहनदास गांधी को प्राय: महात्मा गांधी के नाम से ही जाना जाता हैं। गांधी जी को महात्मा गांधी शायद उनके पहनावे, रहन-सहन, भक्ति भावना आदि के आधार पर ही कहा गया था। महात्मा कहते ही आत्मा का बोध होता है। मोहनदास गांधी को महात्मा कहते ही यह बोध होता है कि वह एक महान आत्मा थे। आत्मा शब्द को पवित्र माना जाता है क्योंकि यह धर्म से जुड़ा है। वस्तुत: आत्मा एक धार्मिक सत्ता है। जो व्यक्ति धार्मिक रूप से महान है वह महान आत्मा या महात्मा हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, किसी भी क्षेत्र में कितनी ही बड़ी उपलब्धि हासिल क्यों न की हो, और उस क्षेत्र का वह कितना ही महान व्यक्ति क्यों न हो, वह महान व्यक्ति या महापुरुष हो सकता है, महात्मा नहीं हो सकता। जबकि दूसरी ओर नितांत अयोग्य, अशिक्षित और उपलब्धि-शून्य, किन्तु धार्मिक प्रपंचों को जीने वाला व्यक्ति सहजता से महात्मा कहलाने का अधिकारी हो जाता है। यही कारण है कि समाज में, गेरूएँ रंग के कपड़े पहनने वाले हर व्यक्ति को बहुत सहजता से महात्मा कहा जाता है।

गांधी को महात्मा कहना गांधी को देखने और प्रस्तुत करने की एक दृष्टि है, जो धर्म से प्रेरित और प्रभावित है। सामाजिक संदर्भों में माहात्म्य एक ख़तरनाक शब्द है। बहुत सी जरूरी चीजें बहुत सहजता से माहात्म्य के नीचे दब जाती हैं या दबायी जा सकती हैं। महापुरुषों को देखने की दृष्टि भिन्न होती है और वह धर्म के आत्मवाद से बंधी नहीं होती है। सामान्य रूप से भी किसी भी व्यक्ति को देखने और समझने की एक ही दृष्टि नहीं हो सकती। गांधी को भी एक ही दृष्टि से देखना और समझना एकांगी होगा। जिन अछूत अर्थात् दलितों की पक्षधरता के आधार पर गांधी जी का इतना उच्च मूल्यांकन किया गया है, वे दलित स्वयं गांधी जी के विषय में क्या दृष्टि रखते हैं, यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। दलित संदर्भ में गांधी तभी महान हो सकते हैं जब वह दलित चेतना अथवा दलित दृष्टिकोण की कसौटी पर भी उतने ही खरे उतरें।

अछूतों के संबंध में गांधी के विचार और कार्यों में एक द्वंद्व सा दिखायी देता था। वह जो कहते थे, उनका व्यवहार उससे अलग होता था। एक ओर वह अछूतों के प्रति दया, करुणा और

जिन अछूत अर्थात दलितों की पक्षधरता के आधार पर गांधी जी का इतना उच्च मूल्यांकन किया गया है, वे दलित स्वयं गांधी जी के विषय में क्या दृष्टि रखते हैं, यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सहानुभूति व्यक्त करते थे तो दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्था को सही ठहराते हुए उसका समर्थन करते थे। गांधी का इस बात पर ज़ोर था कि सभी लोगों को वर्ण-व्यवस्था द्वारा अपने वर्ण के लिए निर्धारित धंधों को ही अपनाना चाहिए। वह अपने विचारों और कार्यों से प्राय: वर्ण-व्यवस्था के पोषक तथा हिन्दू धर्म के रक्षक और प्रवक्ता के रूप में सामने आते हैं तथा अछूतों को निरंतर हिन्दू बताकर तथा हिंदू बनाए रखने की कोशिश कर वह हिन्दू धर्म को विस्तृत और मज़बूत करने का काम करते हैं। गांधी यदि यह सब कार्य एक धार्मिक नेता के रूप में कर रहे होते तो उनसे कोई शिकायत नहीं होती किंतु वह यह सब एक राजनीतिक नेता के रूप में कर रहे थे, जो देश की स्वाधीनता के लिए संघर्षरत था और जिसके शब्द और कार्य स्वाधीन भारत की दिशा-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे थे।

इतना ही नहीं, पंडित मदन मोहन मालवीय और बाल गंगाधर तिलक जैसे कट्टर हिन्दू नेताओं द्वारा दलित-पिछड़ों अर्थात् शूद्रों को भारत की नागरिकता का किए जाने पर उनका विरोध करने के बजाए उनके सुर में सुर मिलाते हुए गांधी जी ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी शूद्रों (दलित-पिछड़ों) की नागरिकता का विरोध करने किया। अपनी पुस्तक 'भारत का वर्णाश्रम धर्म और जाति-व्यवस्था' में वह लिखते हैं, 'शूद्र वर्ण और हरिजनों को भारत की नागरिकता की माँग नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जाएगा।' गांधी स्वयं को अछूतों का नेता और प्रतिनिधि होने का दावा करते थे तथा अछूतों के लिए स्वयं को समर्पित मानने थे। किंतु 1932 में लंदन में हुए गोलमेज़ सम्मेलन में अछूतों के बारे में व्यक्त उनके विचार और बाद में डॉक्टर अम्बेडकर के प्रयासों से कम्यूनल अवार्ड के ज़रिए अछूतों को मिलने वाले वयस्क मताधिकार और अन्य सहूलियतों के विरोध में पुणे की यरवदा जेल में आमरण अनशन करना गांधी जी के दलित प्रेम पर प्रश्नचिह्न लगाता है। इसके अलावा, डॉक्टर अम्बेडकर की पुस्तक 'कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया?' इस बात को बताते है कि अछूत उद्धार का बढ़-चढ़कर ढोल पीटने वाली कांग्रेस की सरकार ने अछूतों के कल्याण के नाम पर बजट में जो धनराशि का प्रावधान किया वह इतनी नगण्य थी कि ऊँट के मुँह में ज़ीरा की कहावत को ही चरितार्थ करती है।

अछूतों को स्वतंत्र भारत की नागरिकता दिलाने की लड़ाई गोलमेज़ सम्मेलन में डॉक्टर अम्बेडकर ने लड़ी थी, जिसमें भास्कर राव जाधव, और प्रो. जयकार से उनको पूरा समर्थन और सहयोग मिला था। उसके परिणामस्वरूप ही शूद्रों एवं अछूतों को भारत राज्य की नागरिकता मिल सकी। डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा लिखित भारतीय संविधान में संविधान की नागरिकता संबंधी शर्तों को पूरा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारत का नागरिक है, चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, जाति अथवा जनजाति का हो। वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, गाँव में रहता हो अथवा शहर में। उसकी चाहे जैसी आर्थिक स्थिति अथवा हैसियत हो, और वह चाहे कोई भी कार्य करता हो। भारतीय संविधान में नागरिकता को इस तरह परिभाषित किया गया है, 'इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत का प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत के राज्य क्षेत्र में अधिवास है, और (क) जो भारत के राज्य क्षेत्र में जन्मा था (ख) जिसके माता या पिता में से कोई भारत के राज्य क्षेत्र में जन्मा था, या (ग) जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम पाँच वर्ष तक भारत के राज्य क्षेत्र में मामूली तौर से निवासी रहा है, भारत का नागरिक होगा।' संविधान की इस परिभाषा के तहत ही देश के सभी दलित, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यकों को भारत राष्ट्र की नागरिकता प्रदान की गयी है। संविधान में शूद्र और अछूतों को समानता का अधिकार देने का प्रावधान करने के कारण डॉक्टर अम्बेडकर कट्टरवादी हिंदुओं के दुश्मन और उनकी आँख की किरकिरी बने रहे। उन सब के बीच निश्चित रूप से गांधी ऐसे नेता थे जिन्होंने अम्बेडकर और अछूतों के प्रति सवर्ण हिंदुओं के गुस्से को शांत कर उन्हें समझाने का प्रयास किया। लेकिन उनके समझाने का कितना असर हुआ आज देश भर में दलितों का निरंतर दमन तथा दिन-प्रतिदिन बढ़ती हिंसा, उत्पीड़न और उनके संविधान प्रदत्त आरक्षण पर संस्थागत हमले की घटनाएँ सारी कहानी स्वयं कह रही हैं।

गांधी नहीं चाहते थे कि डॉक्टर अम्बेडकर को अछूतों के नेता के रूप में स्वीकार किया जाए, इसके विपरीत वह स्वयं अछूतों के नेता के रूप में स्थापित होना चाहते थे। गोलमेज़ सम्मेलन के समय उन्होंने स्वयं को अछूतों का प्रतिनिधि बताकर प्रकारांतर से अछूतों के नेता के रूप में अंबेडकर का विरोध किया था। उस सम्मेलन में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के समक्ष देश की स्वतंत्रता के पक्ष में अपने विचार रखते समय अछूतों के संबंध में कहा था कि अछूत हिन्दू समाज का ही अंग हैं और अलग से कोई वर्ग नहीं हैं। अछूत समस्या हिंदुओं की आंतरिक समस्या है। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दू अपनी इस समस्या का स्वयं समाधान कर लेंगे। जबकि डॉक्टर अम्बेडकर का इस बात पर ज़ोर था कि अछूत हिंदुओं से अलग एक पृथक वर्ग हैं और उनकी समस्याओं का अलग से ही समाधान किया जाना आवश्यक है। अछूत हितों के प्रति कटिबद्ध डॉक्टर अम्बेडकर देश की स्वतंत्रता से पहले अछूतों के हित और मानवीय अधिकारों का संरक्षण और गारंटी चाहते थे। क्योंकि उनको हिंदुओं की नीयत पर कोई विश्वास नहीं था। सैंकड़ों साल का भारत का इतिहास, जिसमें मानवीय अधिकारों से वंचित तथा अस्पृश्यता के कारण घृणा, उपेक्षा के साथ-साथ अनेक प्रकार के निषेध और वर्जनाओं का दंश झेलने को बाध्य अछूत वर्ग सवर्ण हिंदुओं की दासता का शिकार था, उनकी इस धारणा का पुष्ट आधार था।

दलित संदर्भ में गांधी का सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्य अस्पृश्यता के विरुद्ध जागरूकता का अभियान और अपील थी। अस्पृश्यता शब्द कहने-सुनने में जितना सरल लगता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यवहारिक अर्थों में उतना ही जटिल है। यह शब्द जितना समाजशास्त्रीय अर्थ रखता है उतना ही आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक भी। कुछ लोगों के लिए यह एक सामान्य शब्द हो सकता है जिसका समाज में व्यवहार होता है। कुछ लोगों के मन में इस शब्द के प्रति घृणा का, कुछ के मन में करुणा का और कुछ के मन में तटस्थता का भाव हो सकता है। यह प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक-मानसिक चेतना और संवेदन-शीलता पर निर्भर करता है। अलग-अलग स्थानों पर इस शब्द का भाव, अभाव और प्रभाव हो सकता है। वस्तुत: अस्पृश्यता अस्पृश्यों के लिए एक कटु, तीक्षण एवं अपमानजनक अनुभव है, जबकि समाज के लिए यह एक व्यवहार है, एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य के साथ किया जाने वाला व्यवस्थागत अमानवीय व्यवहार। शब्द से अधिक यह एक धर्म और संस्कृति है। यूं तो अस्पृश्यता कहीं भी किसी के भी साथ और किसी भी रूप में हो, एक निंदनीय और घृणित अमानवीय व्यवहार है, किन्तु धार्मिक व्यवस्था बनकर यह कितनी भयावह हो जाती है, अस्पृश्यता का दर्द और दंश नहीं भोगे व्यक्ति के लिए इसकी कल्पना करना भी कठिन है। अस्पृश्यता को नहीं भोगा व्यक्ति केवल अस्पृश्यता को देखकर उसकी पीड़ा और प्रभाव का अनुमान लगा सकता है, वह अस्पृश्यता के असली मर्म को नहीं समझ सकता। अस्पृश्यता का असली प्रभाव उस व्यक्ति पर पड़ता है, जिसके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है। इसलिए, अस्पृश्यता क्या होती है, यह वही समझ सकता है जो अस्पृश्यता का दंश भोगता है।

गांधी जी अस्पृश्यता की पीड़ा को अच्छी तरह समझते थे। उनको अस्पृश्यता का अनुभव था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने स्वयं गोरे अंग्रेज़ों द्वारा अपने साथ की गयी अस्पृश्यता का दंश और दर्द झेला था। इसलिए बहुत संभव है कि अस्पृश्यता के विरुद्ध आवाज़ उठाने और सार्वजनिक अपील करने की प्रेरणा का आधार दक्षिण अफ्रीका में मिला उनका यह अनुभव ही रहा हो।

शूद्र-अतिशूद्र या अंत्यज समाज अस्पृश्यता के कारण हजारों साल से सामाजिक सम्मान से लेकर शिक्षा, संपत्ति तक के अधिकार से वंचित तथा समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग, बहिष्कृत और उपेक्षित रहा है। अस्पृश्यता उसके ऊपर थोपा गया विधान है जिसके कारण वह हिंसा, दमन, शोषण, घृणा, अपमान और अन्याय का शिकार रहा है। इसका आधार अपौरुषेय कहे जाने वाले ऋग्वेद के गर्भ से निकली वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म की संहिता मनुस्मृति है। ऋग्वेद ने जहाँ पुरुष ब्रह्म के शरीर के विभिन्न अंगों से चार वर्णों की उत्पत्ति कर वर्ण-व्यवस्था का दैवीय सिद्धांत विकसित किया, वहीं मनुस्मृति ने शूद्रों के लिए निषेध और वर्जनाओं के क्रूरतम नियम बनाकर अस्पृश्यता को हिंसक और अमानवीय आधार दिया। धर्म-संस्था ने वेद, स्मृति आदि को धर्म-शास्त्र, आम जनता में शास्त्रों के प्रति सम्मान को धार्मिक बाध्यता या धार्मिक-आदेश और सामाजिक व्यवहारों को पाप-पुण्य के धार्मिक पाखण्ड के रूप में प्रचारित कर अस्पृश्यता की जड़ों को पुख्ता किया। धर्म और शास्त्रों का सहारा लेकर ब्राह्मणवाद के पोषक सवर्ण हिन्दू समाज ने अस्पृश्यों के साथ हिंसा और बर्बरता का इतना दमनात्मक व्यवहार किया कि अस्पृश्य समाज आतंक के साए में जीने को विवश हुआ। गाँवों के अंदर न रहकर गाँव से बाहर घास-फूस के अथवा कच्ची मिट्टी के मकानों में रहना, मंदिरों और अन्य सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश का निषेध, सार्वजनिक कुओं या तालाबों से पानी लेने की वर्जना, नए वस्त्र और घुटनों से नीचे धोती पहनने की वर्जना, मिट्टी के बर्तनों में ही खाना पकाने और खाने की बाध्यता, दूध, घी आदि सहित पोष्टिक और स्वादिष्ट भोजन न खाना, सड़क या रास्तों पर चलते हुए सवर्णों का स्पर्श अथवा उन पर अपनी परछायीं नहीं पड़ने देना, शिक्षा ग्रहण करने की वंचना, देवभाषा संस्कृत में लिखे वेदों के पढ़ने, सुनने या उच्चारण करने का निषेध, इनके अलावा और भी न जाने कितने प्रकार के निषेध और वर्जनाओं का शिकार दलितों को होना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पड़ा है और आज भी हो रहे हैं।

गांधी जी अस्पृश्यता की पीड़ा को अच्छी तरह समझते थे। उनको अस्पृश्यता का अनुभव था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने स्वयं गोरे अंग्रेज़ों द्वारा अपने साथ की गयी अस्पृश्यता का दंश और दर्द झेला था। इसलिए बहुत संभव है कि अस्पृश्यता के विरुद्ध आवाज उठाने और सार्वजनिक अपील करने की प्रेरणा का आधार दक्षिण अफ्रीका में मिला उनका यह अनुभव ही रहा हो। किंतु गांधी के साथ अस्पृश्यता का कारण रंगभेद था, जबकि भारत में दलितों के साथ की जाने वाली अस्पृश्यता का कारण जाति है, जो जन्मना है, और जिसका आधार धर्म है। अस्पृश्यता का विरोध या उन्मूलन करने के लिए अस्पृश्यता की जनक धार्मिक व्यवस्था में सुधार अथवा उन्मूलन की आवश्यकता है। वर्ण-व्यवस्था का समर्थन और पोषण करते हुए अस्पृश्यता उन्मूलन की बात करना अपने आप में बहुत बड़ा विरोधाभास और पाखंड है। गांधी इस विरोधाभास के शिकार थे। उनके अस्पृश्य चिंतन की यही सबसे बड़ी कमज़ोरी है।

गांधी जी का ज़ोर आत्मा की शुद्धि पर रहा। उनका कहना था कि अस्पृश्यता ईश्वर और मानवता के प्रति पाप है। यहाँ यह उल्लेख करना अन्यथा नहीं होगा कि वर्ण-व्यवस्था का आधार समाज नहीं धर्म है, इसलिए वर्ण-व्यवस्था सामाजिक नहीं धार्मिक व्यवस्था है। जबकि अस्पृश्यता समाज द्वारा की जाती है। यह एक सामाजिक व्यवहार है। पाप-पुण्य धार्मिक क्षेत्र के शब्द हैं। इसलिए अस्पृश्यता के व्यवहार को पाप पुण्य से जोड़कर देखना विशुद्ध धार्मिक दृष्टि है। न्याय के क्षेत्र में इन शब्दों का कोई महत्त्व नहीं है। न्याय के समक्ष अस्पृश्यता एक अपराध है और अस्पृश्यता का व्यवहार करने वाला व्यक्ति अपराधी है। गांधी जी एक बेरिस्टर थे। कानून की धाराओं से लेकर उसकी भाषा, शब्दावली और पदावली तक के ज्ञाता थे। किन्तु, इसके उपरांत उन्होंने सवर्णों द्वारा अस्पृश्यता के व्यवहार को अस्पृश्यों के प्रति उनका अपराध नहीं माना। अपितु अस्पृश्यता को ईश्वर के प्रति पाप कहकर वह कानून के विषय को धर्म के क्षेत्र में घसीटकर ले गए। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज द्वारा अस्पृश्यता को आपराधिक का गैर-कानूनी कृत्य न मानकर एक पाप-कर्म माना गया। गंगा में डुबकी लगाकर पापों से मुक्त हो जाने की परंपरा का निर्वाह करते हुए, दलितों से अस्पृश्यता का व्यवहार करने वाले लोग गंगा में डुबकी लगाकर या दूसरे धार्मिक अनुष्ठान कर इस पाप से मुक्त होते रहे, और अस्पृश्यता के इस पाप कर्म को दोहराते रहे।

यही कारण रहा कि गांधीजी का अस्पृश्यता-उन्मूलन का कार्यक्रम सामाजिक परिवर्तन का बड़ा आंदोलन न बनकर आत्मा की शुद्धि का एक यज्ञ बनकर रह गया। इसी धार्मिक बोध के चलते गांधी जी ने अस्पृश्यों को हरिजन कहकर अस्पृश्यता को ईश्वर और आध्यात्म से जोड़कर देखने की दृष्टि दी। जिसने प्रकारांतर से अस्पृश्यता और तदजनित सामाजिक शोषण, अन्याय, उपेक्षा, अपमान, घृणा आदि के विरुद्ध बाबासाहब डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा चलाए जा रहे समाज-परिवर्तन के आंदोलन की धार को कुंद करने का काम किया। गांधी जी द्वारा शुरू किए गए आत्मा की शुद्धि के इस यज्ञ में आहुति देकर उनके अनुयायी दलितों के प्रति उदारता का दिखावा करते रहे। दलितों की समस्याओं का समाधान कर उनको सामाजिक समानता और समान मानवीय अधिकार दिलाने के प्रति वे प्रायः अनुत्साही और उदासीन बने रहे। अस्पृश्यता का धर्म और आध्यात्म के साथ जुड़ाव अस्पृश्यता-निवारण की दिशा में कोई सार्थक परिणाम नहीं दे सका। धर्म का आवरण या प्रभाव सामाजिक प्रश्नों और समस्याओं को ढंक देता है। धर्म हर चीज को भक्ति के रस में डुबो देता है। गांधी जी के महात्म्य के प्रचार से भी यही हुआ। धर्म की शिक्षाएँ और उपदेश सुनने में अच्छे लगते हैं, उन पर आचरण करने की कोई अनिवार्यता नहीं होती। यही अस्पृश्यता के साथ हुआ। गांधी जी के धार्मिक और आध्यात्मिक संदेश में अस्पृश्यता उन्मूलन पर अमल करना अनिवार्य नहीं रहा। यह हृदय परिवर्तन का मामला रहा। व्यक्ति की इच्छा पर छोड़ दिया गया कि वह अपनी इच्छा और रूचि के अनुसार चाहे तो अस्पृश्यता का व्यवहार करना छोड सकता है। कुछ लोगों ने इस पर अमल भी किया, किन्तु ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम रही।

गांधी जी ब्राह्मणवाद के पक्षधर थे। उनका कहना था कि 'सभी हिन्दू स्वयं को शूद्र कहने लगें तो यह सच्चा ब्राह्मणवाद होगा।' स्वयं को शूद्र कहने और स्वयं शूद्र होने में बहुत अंतर होता है। शूद्र होना एक अत्यंत अमानवीय, दुःखद और पीड़ादायी अनुभव है। शूद्र वर्ण या जाति का कोई भी व्यक्ति शूद्र होना या रहना नहीं चाहता, वह इससे मुक्ति चाहता है। क्योंकि समाज में शूद्र की परिस्थिति सम्मानजनक नहीं, उपेक्षा और अपमानजनक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। लेकिन गांधी शूद्रों को इस अपमानजनक अनुभव से मुक्ति दिलाने का प्रयास करने की अपेक्षा उच्चवर्णीय हिंदुओं से स्वयं को शूद्र कहने की अपील करते हैं। भारतीय समाज का जो ढांचा है उसमें वर्ण और जाति के रहते सामाजिक समानता संभव नहीं है। क्या अस्पृश्यता से मुक्ति के लिए सभी हिंदुओं का शूद्र होना आवश्यक है? इस बात को गांधी जी भी जानते रहे होंगे कि ब्राह्मण कभी स्वयं को शूद्र नहीं कहेंगे। शूद्र कहने का ढोंग कोई भी कर सकता है, और बहुत से लोग करते भी हैं। वे बड़े गर्व से कहते हैं कि हम कोई भेदभाव और छूयाछूत नहीं मानते, और दलितों के घर जाकर खूब खाते-पीते हैं। वे लोग जितनी सहजता से दलितों के घर के अंदर जाते हैं, उतनी ही सहजता से कितने दलितों को अपने घर के अंदर, चौके में बैठाकर उनके साथ खाते-खिलाते हैं? यदि ईमानदारी से तहक़ीक़ात की जाएगी तो इस प्रश्न का उत्तर बहुत नकारात्मक और निराशाजनक मिलेगा।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है केवल अस्पृश्यता-उन्मूलन एक मात्र मुद्दा नहीं है। शताब्दियों से आर्थिक दरिद्रता, शोषण और पर-निर्भरता से भी जब तक मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक दलितों का उत्थान और विकास संभव नहीं होगा। इस यथार्थ को समझते हुए ही बाबासाहब अंबेडकर ने जातिविहीन और वर्गविहीन समाज की स्थापना पर बल दिया था और इसके लिए लंबा आंदोलन चलाया। बहुत कुछ चीजें राजनीतिक सत्ता तय करती है। राजनीति के महत्त्व को देखते हुए उन्होंने राजनीति को हर ताले की चाबी कहा और यह प्रयास किया कि देश की राजनीतिक सत्ता की चाबी दलितों के हाथ में आए। इसके लिए उन्होंने अंग्रेज़ सरकार के साथ लंबी दलीलें कर दलितों के लिए प्रथक निर्वाचन की व्यवस्था कराई, जिसके तहत संसद के लिए दलित प्रतिनिधि केवल दलितों के वोट के द्वारा ही चुने जाएँ तथा अन्य प्रतिनिधियों के चुनाव में भी दलितों को वोट देने का अधिकार हो। किन्तु गांधी जी ने इसका विरोध किया। इस व्यवस्था को बदलने के लिए गांधी जी ने आमरण अनशन किया तो बाहर सवर्ण हिन्दू समाज के लोग दलितों के विरुद्ध हिंसा और दमन पर उतारू हो गए। ऐसे तनाव और दबाव के माहौल में बाबासाहब अंबेडकर को गांधीजी के प्राण बचाने के लिए हिंदु नेताओं के साथ एक समझौता करना पड़ा, जो इतिहास में 'पूना पेक्ट' के नाम से दर्ज है। शिक्षा, राजनीति और सरकारी सेवाओं में दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था इसी समझौते के तहत की गई थी। इस समझौते के बाद गांधी जी ने अपना अनशन तोड़ा था।

अछूतों के प्रति जिस हृदय परिवर्तन का आह्वान गांधी जी करते थे और उस पर ज़ोर देते थे, भारत जैसे रूढ़ और परंपरावादी समाज में, जहाँ जातिगत भेदभाव, ऊँच-नीच और अस्पृश्यता को अनिवार्य धार्मिक कर्म की तरह माना जाता हो, वहाँ यह उतना सहज नहीं था कि लोग अछूतों के प्रति भेदभाव बंद कर उनको अपने सामान समझने लगते और समानता का व्यवहार करते। उनसे मरे हुए पशुओं को उठाने, घरों की सफाई तथा घर और खेतों में काम कराना बंद कर, ये सब काम वे खुद करने लग जाते। धर्म द्वारा संचालित समाज में हृदय परिवर्तन द्वारा यह काम कदापि संभव नहीं था। गांधी जी के इस सुधारवादी क़दम से वास्तव में अछूतों का हित बहुत कम हुआ, लेकिन इससे अछूतों को हिंदू धर्म से जोड़े रखकर हिंदू धर्म की शक्ति बढ़ाने में अधिक सहायक मिली।

गांधी जी की दलितों के प्रति सहानुभूति थी तथा दया और करुणा का भाव भी था। उनका अस्पृश्यता उन्मूलन कार्यक्रम उनकी इसी दया भाव का परिणाम था। यद्यपि उस समय में जब देश में अस्पृश्यता ज़ोरों पर थी और सामान्य जनता के अलावा स्वाधीनता आंदोलन के बहुत से नेता भी शुचिता का ध्यान रखते हुए अस्पृश्यता को धर्म की तरह मानते और जीते थे, गांधी जी का अस्पृश्यों की ओर सहानुभूति से देखना और अस्पृश्यता उन्मूलन का कार्यक्रम चलाना भी उल्लेखनीय बात थी। किन्तु केवल दया अथवा सहानुभूति काफी नहीं थी। किसी अन्य नेता की अपेक्षा गांधी जी से ही सर्वाधिक अपेक्षा थी कि वह दया और करुणा से आगे बढ़कर दलितों को सम्मान और स्वाभिमान दिलाने के लिए कुछ ठोस काम करते और अपने समकालीन नेताओं को इसके लिए कुछ रचनात्मक प्रयास करने के लिए कहते और प्रेरित करते। क्योंकि सत्ताधारी कांग्रेस सहित तत्कालीन सभी नेताओं पर गांधी जी का गहरा प्रभाव था। गांधी जी अपने अन्तर्मन की ताकत से कोई बात कहते तो यह संभव नहीं था कि उनकी बात को पानी नहीं दिया जाता। वह चाहते तो अस्पृश्यता निवारण सहित समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग और उपेक्षित पड़े दलितों को सामाजिक न्याय और समानता दिलाने को अपने स्वाधीनता आंदोलन के एजेण्डा का एक अनिवार्य हिस्सा बना सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। गांधी जी का ज़ोर इस बात पर था कि पहले अंग्रेजों की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आधीनता से मुक्त होकर स्वराज की स्थापना की जाए, अस्पृश्यों की समस्याओं के समाधान पर उसके बाद विचार किया जाए। उनके लिए अस्पृश्यों की समस्या कोई बड़ी समस्या नहीं थी और देश की स्वतंत्रता और स्वराज में ही वह दलितों की स्वतंत्रता देखते थे। जबकि डॉ. अंबेडकर के लिए यह अस्पृश्यों के अस्तित्व का सवाल था। वह निरंतर यह कह रहे थे कि देश की स्वतंत्रता और व्यक्ति की स्वतंत्रता दोनों एक नहीं हैं, दोनों अलग अलग हैं। उनका इस बात पर ज़ोर था कि देश की स्वतंत्रता से पहले अस्पृश्यों को समानता और स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

भारतीय संविधान की नागरिकता संबंधी शर्तों को पूरा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति को भारत का नागरिक है, चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, जाति अथवा जनजाति का हो। वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, गाँव में रहता हो अथवा शहर में। उसकी चाहे जैसी आर्थिक स्थिति अथवा हैसियत हो, और वह चाहे कोई भी कार्य करता हो। भारतीय संविधान में नागरिकता को इस तरह परिभाषित किया गया है, 'इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत का प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत के राज्य क्षेत्र में अधिवास है, और (क) जो भारत के राज्य क्षेत्र में जन्मा था (ख) जिसके माता या पिता में से कोई भारत के राज्य क्षेत्र में जन्मा था, या (ग) जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम पाँच वर्ष तक भारत के राज्य क्षेत्र में मामूली तौर से निवासी रहा है, भारत का नागरिक होगा।' संविधान की इस परिभाषा के तहत ही देश के सभी दलित, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यकों को भारत राष्ट्र की नागरिकता प्रदान की गयी है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि यदि गोलमेज़ सम्मेलन में डॉक्टर अम्बेडकर नहीं होते तथा संविधान सभा के सदस्य नहीं होते और उन्होंने संविधान नहीं लिखा होता तो कट्टरवादी सवर्ण हिंदू नेताओं का प्रयास अवश्य ही सफल हो जाता और आज के दलित, पिछड़े, आदिवासी भारत राज्य के नागरिक नहीं होते तथा संवैधानिक अधिकार और सुविधाओं से वंचित रहते।

गांधी जी के ग्राम स्वराज में भी कृषि तथा लघु एवं कुटीर उद्योग आदि पर जितना बल है, अछूतों की सामाजिक समानता और आर्थिक बेहतरी पर उतना नहीं है। गांधी जी का यह दलित विरोधी आचरण उनको दलितों का खलनायक बनाता है। देश के स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी की अग्रणी भूमिका रही है। इस भूमिका के लिए ही उन्हें राष्ट्रपिता कहा जाता है, किन्तु स्वतंत्रता की उनकी अवधारणा अधूरी है। दलितों को सामाजिक समता और मानवीय अधिकार दिलाए बिना स्वतंत्रता अर्थहीन है। आज स्वतंत्रता के सत्तर साल बाद भी दलितों की सामाजिक स्थिति में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है। देश के बहुत से गाँवों में दलितों को हिन्दू मंदिरों में प्रवेश से रोका जाना, सार्वजनिक नल और कुओं से पानी नहीं लेने देना, दलित दूल्हों को घोड़ी पर बैठकर नहीं निकलने देना, जातिगत आधार पर अपमानित, शोषित और उत्पीड़ित करना और दलितों के आरक्षण के विरोध की घटनाएँ, हर रोज सोशल मीडिया पर सामने आ रही हैं। इस सब की जड़ में बहुत हद तक तक गांधी जी का वही महात्म्य है। यदि उस समय गांधी जी धार्मिक और आध्यात्मिक रूख अपनाने के बजाए, भारतीय समाज के चरित्र और यथार्थ को समझते हुए दलितों की समस्याओं के प्रति व्यावहारिक रूख अपनाया होता तो बहुत संभव है कि आज भारतीय समाज की तस्वीर कुछ बदली दिखाई देती। इसलिए अन्य किसी भी मामले में गांधी जी कितनी भी प्रासंगिक रहे हों, दलितों के संदर्भ में उनकी प्रासांगिकता बहुत सीमित है।

किंतु इस सब के उपरांत यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपने समकालीन नेताओं में जहाँ एक ओर दामोदर सावरकर, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, मदनमोहन मालवीय आदि कट्टर शुद्धतावादी और अछूतों के प्रति उपेक्षा भाव रखने वाले नेता थे, उनके बीच गांधी द्वारा अछूतों के प्रति करुणा और सहानुभूति व्यक्त करना, अस्पृश्यता उन्मूलन और अछूतोद्धार की बात करना अथवा उनके पक्ष में बोलना कम बड़ी बात नहीं थी। इसके लिए गांधी जी की प्रशंसा करनी पड़ेगी। उग्र हिंदुओं के बीच वह उदार हिंदू थे, जो उग्र हिंदुओं के मन में अछूतों के प्रति दया और करुणा का भाव पैदा करने की कोशिश करते थे तथा अछूतों के प्रति सांत्वना की बात करके उनके सदियों के ज़ख्मों पर मरहम लगाते थे। साथ ही, यह भी कि डॉक्टर अम्बेडकर के साथ तमाम तरह के मतभेदों के उपरांत तथा उनसे असहमत और कभी-कभी उनके विरोधी होते हुए भी अन्य नेताओं की तुलना में गांधी उनके प्रति उदार थे। डॉक्टर अम्बेडकर के संविधान निर्माण समिति का अध्यक्ष बनने में गांधी की उदारता का भी योगदान था। इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता।

मो. 9871216298

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी, गांधीवाद और भारतीय संविधान

धीरंजन मालवे

(वरिष्ठ मीडिया विशेषज्ञ, लेखक)

बीसवीं सदी की जिन चंद महापुरुषों के कारण विश्व इतिहास में याद किया जाता रहेगा उनमें गांधी जी प्रमुख स्थान रखते हैं। विशालकाय तेजपुँज के समान उनके व्यक्तित्व ने राजनीतिक सामाजिक और आध्यात्मिक स्तरों पर विश्व मानवता को निंरतर रूप से प्रकाशित रखा है। यह प्रकाश इतना तीव्र है कि मन और बुद्धि दोनों ही चका-चौंध से भर जाते हैं और गांधी जैसे बहु आयामी, संश्लिष्ट और अतिमानवीय व्यक्तित्व का सही, सटीक और संपूर्ण आकलन कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। ऐसा लगता नहीं कि गांधी को उनकी संपूर्णता में कोई समझ पाया है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।'

गांधी को हम किस रूप में ग्रहण करें! राजनीतिक रणनीतिकार के रूप में, संगठनकर्ता के रूप में, जननायक के रूप में, समाज सुधाकर के रूप में, किसी संत महात्मा के रूप में, शिक्षा शास्त्री के रूप में, अर्थशास्त्री के रूप में, लेखक-पत्रकार के रूप में, या फिर स्वतंत्रता संग्राम के एक अगुआ सिपाही के रूप में! ये सभी रूप गांधी के ही हैं।

गांधी का लोकमान्य और सर्व प्रचलित रूप भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नायक का है। 'दे दी हमें आज़ादी बिना खडग बिना ढाल, साबरमती के संत तू ने कर दिया कमाल'। मगर क्या इतने से ही गांधी के अवदान को सीमाबद्ध किया जा सकता है! यदि हम ऐसा करना भी चाहें तो इसके अपने खतरे हैं। इस बात को चुनौती देने वालों की भी कमी नहीं हैं कि हमें गांधी की वजह से ही आज़ादी मिली। गांधी के कई आलोचक ऐसा मानते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थितियों उसके बाद उभरे वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य, इत्यादि के कारण केवल भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में उपनिवेशवाद पर पटाक्षेप हो गया।

मगर इस से कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि गांधी वे पहले नेता थे जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को एक जन आन्दोलन का रूप दिया।

गांधी के पूर्व का स्वतंत्रता अभियान या तो छिटपुट क्रांतिकारियों के द्वारा चलाया जा रहा था या फिर कांग्रेस पार्टी के बुद्धिजीवियों और वकीलों के जमघट के रूप में था। आम जनता की इसमें कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी। गांधी ने स्वतंत्रता की इस कमी को पहचाना और महसूस किया कि न केवल आज़ादी के लिए, बल्कि एक नए भारत का निर्माण करने के लिए, आम जनता के भीतर घर कर चुकी 'कोउ नृप होंहि हमें का हानी' वाली भावना को समाप्त करना और उन्हें सत्ता में भागीदारी के लिए तैयार करना आवश्यक है। यह गांधी का ही कमाल था कि स्वतंत्रता संग्राम एक जन आंदोलन बन गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और कांग्रेस पार्टी एक ऐसे मंच के रूप में उभरी जिसे पूरे भारत में अंग्रेजों के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता मिल गयी। अगर अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो की अपनी नीति को अंतिम समय तक जारी नहीं रखा होता तो कांग्रेस के नेतृत्व में एक अंखड भारत का निर्माण हआ होता। सच पूछा जाए तो अगर कांग्रेस न गांधी का साथ पूरे मन से दिया होता तो भारत का विभाजन भी नहीं हुआ होता।

आज़ादी की प्राप्ति गांधी का अंतिम उद्देश्य कहीं से नहीं थी। यह मात्र उनका पहला पड़ाव भर था। असली यात्रा- भारत का नव निर्माण यहाँ से प्रांरभ होनी थी।

गांधी देश के नवनिर्माण से जुड़ी समस्याओं से भली-भाँति अवगत थे। भारत से जुड़ी कटु और कठोर वास्तविकताओं से जुझते हुए एक ऐसे भारत का निर्माण होना था जिसमें किसी भी प्रकार का शोषण न हो। किसी के पास न तो आवश्यकता से कम हो न अधिक, जहाँ किसी काम को छोटा या बड़ा नहीं माना जाता हो और इसके आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता हों, जहाँ जाति, धर्म, लिंग, इत्यादि के आधार पर मानव और मानव के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं हों। जहाँ सामाजिक समरसता आपसी भाई चारा और परस्पर सहयोग का एक चिंरतन माहौल हो। ऐसा था गांधी के सपनों का भारत। गांधी इस स्वप्न को साकार रूप में देखना चाहते थे और इसका प्रस्थान बिन्दु था औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति।

गांधी के सपनों के भारत को वास्तविकता में बदलने का उनका सूत्र था, ग्राम स्वराज्य। इस आदर्श भारत के सभी लगभग सात लाख गाँव अपने आप में स्वायत्त इकाई थे। हर गाँव कोस आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होना था और दैनन्दिन आवश्यकताओं की अपनी समस्त वस्तुओं का निर्माण स्वयं ही करना था। इस आदर्श गाँव में काम को किसी बोझ के रूप में देखने की बजाय उसे आनंद के एक स्रोत के रूप में देखा जाना था। हर व्यक्ति को उतना ही काम करना था जितना उसे आनंद दे सके। साथ ही, हर व्यक्ति को अपना निर्धारित काम करने के बाद अन्य ग्रामवासियों के काम में आवश्यकतानुसार सहयोग देना था- नितांत स्वैच्छिक रूप से। उस आदर्श गाँव में एक पंचायत की कल्पना थी जिसके सदस्य ग्रामवासियों के द्वारा निर्वासित हुए हों और जो ग्रामवासियों के सुखी जीवन के लिए नियम बनाने, गाँव के विकास के लिए काम करने, गाँव के

गांधी लोभ और संग्रह के विरोधी थे। उनका मानना था कि किसी भी व्यक्ति के पास न तो उसकी आवश्यकता से अधिक होना चाहिए और न ही उससे कम। असंग्रह के अपने सिद्धांत के अनुसार वे पूँजीवाद के पहले विरोधी थे और इस अर्थ में हमें गांधी और मार्क्स को साथ-साथ पाते हैं। लेकिन मार्क्स के विपरीत, गांधी केवल पूँजीवाद के विरोधी थे, पूँजीपतियों के नहीं।

प्रबन्ध से जुड़े दायित्वों के निर्वहन करने और आपसी विवादों को निपटाने का काम करती हो।

गांधी के सपने को भारत ऐसे ही स्वायत्त गाँवों की एक विशालकाय माला के रूप में था जिसके प्रत्येक मनके की अपनी पहचान और अस्तित्व को अक्षुण्ण रखा गया था। देश के संचालन की इस व्यवस्था में सभी सामुदायिक संसाधनों पर समुदाय का अधिकार था और सत्ता का प्रवाह देश की राजधानी से उतर कर गाँव तक पहुँचने के बदले गाँव से शुरू होकर ऊपर की ओर जाता था। सच पूछा जाए, तो गांधी के सपनों के भारत में गाँव के ऊपर की किसी सत्ता की भूमिका नहीं के बराबर थी।

गांधी के सपनों का यह भारत मार्क्सवाद द्वारा प्रतिपदित मानवता के अंतिम लक्ष्य के काफी निकट था। गांधी और मार्क्स, दोनों के साध्य समान थे- समानता पर आधारित शोषण मुक्त समाज का निर्माण। मगर साध्य की प्राप्ति के निमित्त यानि साधन में स्पष्ट अंतर था। मार्क्स मनुष्य को मूलरूप से एक स्वार्थी प्राणी के रूप में देखते थे और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनका मानना था कि शोषक अथवा सुविधा संपन्न व्यक्ति कभी भी अपनी मर्जी से अपने अधिकार या विशेष स्थिति का परित्याग नहीं करेगा। अत: यदि यथास्थिति को बदल कर आदर्श समाज का निर्माण करना है तो इसके लिए हिंसा और सशस्त्र क्रांति का सहारा लेना ही होगा।

इसके उलट गांधी को मनुष्यों में अंतर्निहित देवत्व पर असीम विश्वास था और वे मानते थे कि सत्य और अहिंसा का सहारा लेकर उस देवत्व को जाग्रत किया जा सकता है। एक बार उस देवत्व के जग जाने के बाद तो आगे का मार्ग अपने आप ही सुगम हो जाता है। मानव हृदय के परिवर्तन के लिए सत्य और अहिंसा पर आधारित जिस हथियार का गांधी ने आविष्कार किया, उसका उन्होंने नाम दिया- सत्याग्रह, यानि सत्य के लिए आग्रह। एक सच्चे उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हिंसा नहीं, बल्कि आग्रह।

परंतु हर व्यक्ति सत्याग्रही नहीं हो सकता। दूसरों से सत्य की प्रति आग्रह करने के पूर्व स्वयं का आंतरिक परिष्कार कर अंतरात्मा को स्वच्छ और निर्मल बनाना होता है। साथ ही सत्य, अहिंसा और प्रेम के मार्ग के प्रति मन में अटूट श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करना होता है। हिंसा का प्रतिकार हिंसा से न करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होना होता है। सत्याग्रही बनने के लिए स्वयं के भीतर एक अत्यंत ही सबल चरित्र को विकसित करना होता है, एक ऐसा चरित्र जो किसी भी हिंसक उकसावें के समक्ष अपने संयम को बनाए रखे और अहिंसा के पथ पर टिका रहे। ऐसा चरित्र विकसित करने के लिए एक दीर्घ साधना की आवश्यकता है और गांधी अपने आश्रम के निवासियों को इस साधना के लिए निरंतर प्रेरित करते रहते थे। उन्होंने आश्रम वासियों के लिए ग्यारह सूत्री बुनियादी जीवन मूल्य निर्धारित किए थे जिसका पालन उन्हें करते रहना होता था। इसे 'एकादश व्रत' का नाम दिया गया था और इसके लिए एक संस्कृत का श्लोक भी रचित किया गया था, जो इस प्रकार है-

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचारी असंग्रह,
सर्वधर्म समानत्व स्वदेशी न अस्पृश्यता,
शरीर श्रम अस्वाद अभयव्रत आश्रमे।

साधना की इस आग में तपने के बाद व्यक्ति में स्वाभाविक रूप में सत्याग्रह का आत्मबल आ जाता है और वह एक सच्चा सत्याग्रही बन जाता है।

गांधी जी का मानना था कि यदि हर भारतीय साधना के द्वारा स्वयं को एक सच्चा सत्याग्रही बना ले तो न केवल भारत में औपनिवेशिक शासन को समाप्त किया जा सकता है बल्कि उसके पश्चात् ग्राम स्वराज्य के माध्यम से एक ऐसे आदर्श और मानवीय भारतीय समाज का निर्माण किया जा सकता है जो शोषण और असमानता से मुक्त होगा, जिसमें जाति धर्म इत्यादि के आचार पर भेदभाव नहीं होगा और जिसमें लोग मिल जुलकर परस्पर सहयोग द्वारा समाज और समुदाय के लिए कार्य करेंगे।

गांधी लोभ और संग्रह के विरोधी थे। उनका मानना था कि किसी भी व्यक्ति के पास न तो उसकी आवश्यकता से अधिक होना चाहिए और न ही उससे कम। असंग्रह के अपने सिद्धांत के अनुसार वे पूँजीवाद के पहले विरोधी थे और इस अर्थ में हमें गांधी और मार्क्स को साथ-साथ पाते हैं। लेकिन मार्क्स के विपरीत, गांधी केवल पूँजीवाद के विरोधी थे, पूँजीपतियों के नहीं। अपने अहिंसा के सिद्धांत के अनुरूप वे पूँजीपतियों के विरुद्ध किसी हिंसक कारवाई के विरुद्ध थे और उनमें अंतर्निहित सद्गुणों और मानवीय भावनाओं पर विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि अगर किसी पूँजीपति में उसके अंतर्निहित सद्गुण सोए हुए हैं तो उन्हें सत्याग्रह द्वारा जाग्रत किया जा सकता है। उनकी इसी धारणा और विश्वास पर आधारित है उनका ट्रस्टीशिप का सिद्धांत।

गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत के अनुसार किसी भी पूँजीपति से उसकी संपत्तियों को छीना नहीं जाना चाहिए। हर पूँजीपति अपनी संपत्ति का स्वामी बना रहेगा मगर अपनी निजी आवश्यकताओं के लिए उसका प्रयोग उतना ही करेगा जितना मूलभूत रूप से आवश्यक है। वह अपनी स्वेच्छा से हर प्रकार की विलसिता का त्याग कर अपनी संपत्ति का मात्र ट्रस्टी बन कर उसकी देखरेख करेगा और उसे समाज की भलाई में लगाएगा। यानि, पूँजीपति भी एक सच्चा सत्याग्रही बन जाएगा और उसकी अपनी निजी जीवन शैली वैसी ही होगी जैसी अन्य साधारण लोगों की होती हैं। उद्योग और व्यापार के संचालन का उसका अनुभव और कौशल समाज की भलाई के काम आएगा। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि गांधी सरकार को पूँजीपतियों के विकल्प के रूप में नहीं देखते थे और चाहते थे कि व्यक्ति तथा समाज के जीवन में सरकार की भूमिका नगण्य हो।

गांधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा में बड़े उद्योगों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी अपने समय से बहुत आगे थे और भविष्य की विभीषिका को उन्होंने एक सदी पूर्व ही देख लिया था। पूँजीवाद, औद्योगीकरण तथा इनके कारण लगातार बढ़ती विलसिता के प्रकृति और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का उन्हें पूर्वाभास था उनका मानना था कि प्रकृति के संसाधन हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो पर्याप्त हैं मगर हमारे लोभ-लालच को पूरा करने के लिए अत्यंत कम हैं।

का कोई स्थान नहीं था। उनकी आर्थिक संकल्पना के केन्द्र में गाँव थे और इसीलिए वे कृषि और कुटीर उद्योगों को ही अर्थ व्यवस्था के मुख्य संचालकों के रूप में देखते थें उनका मानना था कि इनके माध्यम से ही गाँव के सभी लोग अपने लिए आवश्यक रोजगार प्राप्त कर लेंगे और हर किसी की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाएगी। वे बड़े उद्योगों को मनुष्यों के शोषक के रूप में देखते थे। मगर वे मशीनों के खिलाफ नहीं थे। उनका मानना था कि कोई पागल ही मशीनों के पूरी तरह से विरुद्ध हो सकता है। जिस सीमा तक मशीनें मनुष्य को अपना गुलाम नहीं बनाती है और रोजमर्रे के काम-काज में उसकी सहायता कर उसके जीवन को सहज कर देती हैं उस सीमा तक मशीनों का मानव जीवन में स्थान दिया जा सकता है।

गांधी को बीसवीं सदी के भारतीय राष्ट्रवाद के प्रणेता के रूप में देखा जाता है। उन्होंने ही स्वतंत्रता आंदोलन के सीमित फलक का विस्तार देकर उसे एक देशव्यापी राष्ट्रीय आंदोलन का रूप दिया। भारत को एक उपनिवेश से एक आधुनिक राष्ट्र में परिवर्तित करने की दिशा में गांधी का योगदान अमूल्य, असीम और अप्रतिम है लेकिन गांधी को भारतीय राष्ट्रवाद के दायरे में कैद कर देना गांधी के प्रति घोर अन्याय होगा। गांधी केवल भारत के ही नहीं थे, पूरे विश्व के थे, पूरी मानवता के थे। उसके समस्त सिद्धांत और सूत्र संपूर्ण वैश्विक समाज के लिए थे। वे एक विश्वपुरूष थे। वे संपूर्ण विश्व में उपनिवेशवाद और मानव शोषण की समाप्ति तथा आपसी भाईचारा चाहते थे। उनके विचारों और दर्शन में प्राचीन भारतीय मनीषियों, महापुरुषों और ग्रंथों के साथ-साथ आधुनिक विश्व के विचारकों और चिन्तकों का भी समावेश था। वे जहाँ गीता को अपने मार्गदर्शक के रूप में देखते थे और जैन धर्म के अहिंसा के सिद्धांत में अटूट आस्था रखते थे वहीं वे टॉल्सटाय, थोरो, रस्किन और इमर्सन से भी अत्यंत प्रभावित थे। साथ ही उन्होंने सुकरात और ईसा मसीह के सिद्धांतों का भी अध्ययन किया था। वे प्राचीन और अर्वाचीन के संगम थे। मगर गांधी का वैश्विक दर्शन सोपानों में विभाजित था। उनका अपना मानना था कि वे सबसे पहले काठियावाड़ी हैं, उसके बाद गुजरती, फिर भारतीय और अंतत: विश्व मानव समुदाय के सदस्य। दक्षिण अफ्रीका और भारत को उन्होंने सत्याग्रह के अपने हथियार के लिए प्रयोग भूमि के रूप में प्रयुक्त किया- उपनिवेशवाद और शोषण के विरुद्ध अगर उनके लिए संभव हो पाता तो वे भारत का इस्तेमाल समस्त विश्व के हित में ग्राम स्वराज की प्रयोग भूमि के रूप में करते। सत्याग्रह के उनके हथियार और अहिंसा के उनके सिद्धांत आगे चलकर विश्व के अनेक नेताओं के लिए मार्गदर्शक बने और नेल्सन मंडेला, मार्टिन लूथर किंग तथा आंग सान सूकी जैसे नेताओं ने इनका प्रयोग अपने राजनीतिक संघर्षो में किया। गांधी संपूर्ण मानवता के लिए सदियों तक प्रेरणा के प्रदीप बने रहेंगे।

गांधी अपने समय से बहुत आगे थे और भविष्य की विभीषिका को उन्होंने एक सदी पूर्व ही देख लिया था। पूँजीवाद, औद्योगीकरण तथा इनके कारण लगातार बढ़ती विलसिता के प्रकृति और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का उन्हें पूर्वाभास था उनका मानना था कि प्रकृति के संसाधन हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो पर्याप्त हैं मगर हमारे लोभ-लालच को पूरा करने के लिए अत्यंत कम हैं। उनका मानना था कि संसार के हर व्यक्ति को अपनी आवश्यकताएँ सीमित कर लेनी चाहिए ताकि प्रकृति और उनके संसाधनों पर ज्यादा ज़ोर न पड़े और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार अपनी क्षति की पूर्ति करती रहे। इसीलिए गांधीवाद में स्वेच्छा से ओढ़ी गई गरीबी पर बल दिया गया है, कुटीर उद्योगों का समर्थन किया गया है और गाँवों को स्वशासित इकाइयों के रूप में निरूपित किया गया है। अगर सचमुच यह अवधारणा अपना साकार रूप ले लेती है तो किसी को अपने गाँव के स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण से पलायन कर रोजगार के लिए शहरों के तंग भीड़ भरे, प्रदूषित, मशीनों और संवेदना विहीन माहौल में रहने की जरूरत ही क्यों पड़ेगी। क्या उसे गाँव में अपना स्वैच्छिक काम छोड़कर मशीनों ज़िन्दगी से निजात न ही मिल जाएगी। गाँव में एक सादे और स्वाभाविक माहौल में वह न केवल अधिक स्वस्थ जीवन जीएगा बल्कि पर्यावरण को अपनी भावी पीढ़ियों के लिए बचाकर रखने में भी अपना योगदान करेगा। आज पर्यावरण प्रदूषण को लेकर सारी दुनिया में जितना हाहाकार मचा हुआ है, विलसिता उससे कहीं ज्यादा बढ़ रही है। सारी अर्थव्यवस्था मांग को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाते जाने और उपभोक्ता संस्कृति को अधिकतम प्रोत्साहन देने पर ज़ोर देती है और उसी से अपनी संजीवनी पाती है। ऐसे में क्या इस विश्व को उलटी दिशा में मोड़कर वापस सादगी, संतोष और असंग्रह के मार्ग पा ला पाना संभव हो सकेगा। अगर हो जाए तो विश्वव्यापी पर्यावरण संकट का समाधान अपने आप ही हो जाएगा। इतना अवश्य है कि यदि स्वेच्छा से ऐसा संभव न हुआ तब भी मजबूर होकर ऐसा करना ही पड़ेगा। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मानव के पास अन्य कोई मार्ग शेष रह ही नहीं जाएगा।

लेकिन वास्तविक जीवन में गांधीवाद और ग्राम स्वराज क्या सचमुच संभव है? यह सवाल गांधी के मन में भी अवश्य ही रहा होगा। और शायद इसीलिए उन्होंने वास्तविक जीवन में इससे संबंधित अनेक प्रयोग किये। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार की शोषणकारी और रंग भेदवादी नीतियों की मुख़ालवत उन्होंने अपने अहिंसक संघर्ष से की। भारत की अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध अपना आंदोलन उन्होंने सत्य और अंहिसा के रास्ते पर ही चलाया। 1922 में जब गांधी के देश व्यापी असहयोग आंदोलन के दौरान चौरी चौरा में आंदोलनकारियों की भीड़ हिंसा पर उतारू हो गई और पुलिस थाने में आग लगा कर थाने के अंदर के सभी लोगों को जिंदा जला दिया तो गांधी ने आंदोलन को तुंरत रोक दिया क्योंकि वे आंदोलन को हिंसक मार्ग पर ले जाने के विरुद्ध थे। भविष्य के आंदोलन उन्होंने अंहिसक तरीके से ही चलाए।

गांधी के आश्रम वास्तव में उनके ग्राम स्वराज की अवधारणा की प्रयोगशालाओं के समान थे। दक्षिण अफ्रीका का टॉल्सटाय आश्रम तथा भारत के सेवा ग्राम और साबरमती के आश्रमों में उन्होंने इस संबंध में अनेक प्रयोग किए। आश्रमवसियों को सादा जीवन जीकर अपने सारे काम स्वयं ही करने होते थे। यहाँ तक कि आश्रम के मलमूत्र की सफाई के साथ-साथ स्वच्छता से जुड़े अन्य कामों को भी उन्हें ही करना होता था। ताकि उनके अंदर किसी काम को छोटा न समझने की भावना जगाई जा सके। प्रतिदिन चरखा चलाना अनिवार्य था ताकि आवश्यकता के अनुसार वस्त्र की व्यवस्था हो सके। गांधी अपने स्वप्न में विश्व मानव समाज को ऐसे ही आश्रम रूपी गाँवों के समूह के रूप में देखते थे और शुरुआत स्वतंत्र भारत से करना चाहते थे।

गांधी जी को ग्राम स्वराज के अपने सिद्धांत पर अटूट विश्वास था और वे इसकी व्यावहारिक संभाव्यता को लेकर भी निश्ंित थे। उन्हें पक्का यकीन था कि इस अमली जामा पहनाया जा सकता है यदि लोग स्वयं को सत्याग्रहियों के रूप में साध लें। मगर अधिकांश लोगों को गांधी के विचार करे आदर्शवाद से अधिक कुछ नहीं लगते थे । इनमें काग्रेसियों की भी बहुत बड़ी संख्या थी। स्वयं गांधी के उत्तराधिकारी माने जाने वाले और उनके अत्यन्त प्रिय पात्र नेहरू जी ने भी गांधी को पत्र लिख कर ग्राम स्वराज के सिद्धांत से अपनी गहरी असहमति जताते हुए इसे अव्यावहारिक बताया था। यानि यह तय था कि देश के भावी कर्णधार इसे गांधी के सपनों का भारत नहीं बनाने वाले थे।

देश के संचालन के लिए जो संविधान सन् 26 जनवरी, 1950 से प्रभावी हुआ है वह स्वायत्त गाँवों के समूह की अवधारणा से काफी दूर है। संविधान के अनुसार भारत एक शक्तिशाली केन्द्र द्वारा संचालित राज्यों का एक संघ है जिसमें सत्ता का प्रवाह दिल्ली से नीचे उतरते हए राज्यों की राजधानियों, जिलों, प्रखड़ों इत्यादि से गुजर कर सबसे अंत में गाँवों तक पहुँचता है। गांधी की कल्पना का भारत इसके ठीक विपरीत था। राजीव गांधी ने अपनी एक प्रसिद्ध में एक बार कहा था। कि केन्द्र से जो एक रुपया चलता है उसमें से केवल पंद्रह पैसा गाँवों तक पहुँचता हैं। काश स्थिति इसके उलट होती।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मूल संविधान में ग्राम पंचायतों का लेकर एक हल्की सी चर्चा भर थी, एक नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में इसके कार्यान्वयन को लेकर कोई ठोस योजना नहीं थी।

इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम चार दशक बाद सन् 1992 में उठाया गया-तिहत्तरवें संविधान संशोधन द्वारा। इस संशोधन के माध्यम से संविधान संशोधन में ऐसे कई प्रावधान किए गए जिनके द्वारा ग्राम पंचायतों के सुचारू रूप से संचालन की अनेक व्यवस्थाएँ की गई। लेकिन ग्राम पंचायतों को स्वशासन का अधिकार देने की दिशा में यह एक कमज़ोर कोशिश ही मानी जाएगी। तेहत्तरवें संशोधन में राज्य सरकारों को ग्राम पंचायतों के मामलों के नियमन संबंधी व्यापक अधिकार प्राप्त है। पंचायतों की तिज़ोरी की चाबी भी बहुत कुछ राज्य सरकारों के ही हाथों में हैं 73 वाँ संशोधन ग्राम स्वराज की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम अवश्य है मगर रास्ता अभी काफी लंबा है।

लेकिन यह मानना भी संविधान निर्मामाओं के प्रति अन्याय होगा कि भारतीय संविधान में गांधी के सिद्धांतों को सिरे से नकार दिया गया है संविधान में हम वैसे अनेक मूल्यों और सिद्धांतों को प्रतिविम्बित होता देखते है। जिनमें बापू का अटूट विश्वास था। और जिन्हें सामने रखकर उनके नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई लड़ी गई। संविधान की प्रस्तावना को ही देखें। इसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाइचारे के जिन मूल्यों को आधार बना कर देश का निर्माण करने की बात कही गई है उनके मूल में हम गांधी जी की छवि का ही दर्शन करते है। ठीक उसी प्रकार जब हम मूलभूत संवैधानिक अधिकारों के अध्याय पर दृष्टिपात करते है। तो वहाँ भी हम गांधी जी के मूल्यों पर आधारित एक ऐसे समाज के निर्माण का संकल्प पाते है। जिसमें कानून के आगे सभी बराबर है, जहाँ धर्म नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है, जहाँ सभी को निर्भीकतापूर्वक अपनी बात कहने और सम्मान जनक जीवन जीने का अधिकार है, और जहाँ सर्वधर्म समभाव के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी धार्मिक आस्था के अनुसार जीवन जीने का अधिकार है।

गांधी के दर्शन की कुछ कुछ झाँकी हमें संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में भी मिलती है। इन सिद्धांतों के अंतर्गत राज्य को यह भी निर्देश दिया गया है कि वह जनकल्याण को ध्यान में रखकर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए भरसक प्रयत्न करे जिसमें राष्ट्रीय जीवन से जुड़ी सभी संस्थाएँ सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय के आधार पर संचालित हों ।

नीति निर्देशक सिद्धांतों में गाँवों और ग्रामीणों के विकास तथा कल्याण को भी ध्यान में रखा गया है। इसके लिए राज्य को कुटीर उद्योगों के विकास पर ध्यान देने को तो कहा ही गया है,

कृषि और पशुपालन के वैज्ञानिक आधार पर आधुनिकीकरण की बात कही गई है मगर यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि आधुनिकीकरण में मशीनों के योगदान की सीमा क्या होगी।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में एक और कदम 2011 में उठाया गया जब सत्तानवें वे संशोधन द्वारा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में एक और बात जोड़ दी गयी। सहकाारिता को प्रोत्साहन। राज्य का इस संशोधन द्वारा निर्देश दिया गया कि सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त संचालन लोकतांत्रिक नियंत्रण और पेशेवर प्रबंधन की प्रोत्साहित करने हेतु उपाय करे।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारतीय संविधान मूलरूप से पाश्चात्य संवैधानिक दर्शन से अनुप्राणित और उसी पर आधारित है। मगर उसमें जहाँ तहाँ गांधी दर्शन की बानगियाँ दिखाई दे जाती हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के संवैधानिक ढाँचे की कल्पना अन्य आधुनिक राष्ट्रों को ध्यान में रखकर की गांधी के स्वप्न को आधार बना कर नहीं। तत्कालीन आंतरिक और वैश्विक परिस्थितियों को देखते हुए उन्हें यही लगा होगा कि देश के हितों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हए एक शक्तिशाली केन्द्र अत्यावश्यक है।

मगर इसका यह अर्थ कहीं से नहीं है कि गांधी दर्शन कोई निरर्थक और अप्रासंगिक कपोल कल्पना या दिवास्वप्न है। समस्या गांधी दर्शन के साथ नहीं बल्कि विश्वमानवता के साथ है। गांधी अपने चिन्तन में सदियों आगे थे। विश्वमानवता को गांधी के समकक्ष आने में एक लंबी विकास यात्रा तय करनी होगी। जिस दिन विश्वचेतना गांधी के चिन्तन के समकक्ष आ जाएगी गांधी जी की कल्पना भी साकार होने लग जाएगी। गांधी विश्व मानवता के लिए एक सुदूर, कंटकाकीर्ण परन्तु अभीष्ट और अनिवार्य लक्ष्य छोड़कर गए है।

मो. 9810463338

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी और स्वाधीनता आन्दोलन के कुछ ऐतिहासिक सन्दर्भ

रश्मि चौधरी
(चर्चित युवा चिंतक, इतिहास लेखन में पहचान)

1919 के बाद के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में गांधीवादी राष्ट्रवाद के समानान्तर जो दूसरी धारा खड़ी दिखाई पड़ती है, उसे निम्नवर्गीय इतिहासकारों ने किसान-राष्ट्रवाद अथवा जन-राष्ट्रवाद के नाम से संबोंधित किया है। गांधी पर केन्द्रित अपने विश्लेषण में मैंने इस बीच (1919 से 1947) रचित जन-कविताओं के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया कि गांधी के समानान्तर, पर उनसे प्रभावित जन राष्ट्रवाद की एक सशक्त धारा दिखलाई पड़ती है, जिसमें असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन, अहिंसा, स्वराज्य और चरखा एवं खादी जैसे रचनात्मक कार्यों के माध्यम से आम जनता गांधी के राष्ट्र मुक्ति आंदोलन से जुड़ती है। लेकिन कई बार आम जनता गांधी के सिद्धांतों को दरकिनार करते हुए स्थानीय प्रभाव एवं दबाव के कारण तत्काल कोई निर्णय लेती है और इस प्रक्रिया में वह हिंसा का भी सहारा लेती है। इसीलिए भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में गांधीवादी राष्ट्रवादी आंदोलन के समानान्तर भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, चंद्रशेखर आज़ाद, बटुकेश्वर दत्त आदि जैसे क्रांतिकारियों की भी एक सशक्त धारा दिखाई पड़ती है जो गांधी के समझौतावादी नीतियों का विरोध करते हुए स्वाधीनता आंदोलन की उग्र धारा का विकास करते हैं। जनता पर इस धारा का गहरा असर दिखाई पड़ता है और इसीलिए इस दौरान रचित जन-काव्य के नायकों में गांधी के समानान्तर भगत सिंह और चंद्रशेखर आज़ाद जैसे क्रांतिकारी भी दिखलाई पड़ते हैं। लेकिन यहाँ, मैं जिस बात को रखना चाहती हूँ, वह यह कि राष्ट्र मुक्ति आंदोलन की इन दोनों धाराओं के समानान्तर कुछ ऐसी निर्मितियाँ भी दिखाई पड़ती हैं जो साम्राज्यवादी छल के खिलाफ आम जनता के प्रतिरोध को दर्ज करती है और उन नीतियों का विरोध करते हुए राष्ट्र के पुनर्निर्माण की तरफ संकेत भी करती है।

खासकर, 1919 से 1947 के बीच तीन ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ दिखलाई पड़ती हैं, जिसका गहरा संबंध ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीतियों से है तथा जिनके खिलाफ जाकर (कई बार) आम जनता सशक्त प्रतिरोध और राष्ट्रव्यापी आंदोलन करती है और जिसको लेकर खड़ी बोली हिंदी और भोजपुरी के जन-साहित्य में अनेक अभिव्यक्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। विशेषकर, 1919 का रौलेट बिल, 1927 का साइमन कमीशन और 1942 का क्रिप्स मिशन, जिनके खिलाफ गांधी के साथ और उनके समानान्तर आम भारतीय जनता आंदोलन करती है। आधुनिक भारतीय इतिहास में अगर हम जलियांवाला बाग (1919), साइमन, वापस जाओ (1927) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942) जैसी ऐतिहासिक घटनाओं को देखें तो साफ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पता चलता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ मुख्यधारा के साथ ही आम जनता द्वारा निर्मित इन आंदोलनों के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन को एक नया अर्थ मिलता है। खासकर, इस दौरान रचित जन-साहित्य में इन घटनाओं और आंदोलनों को लेकर कु छ ऐसी निर्मितियाँ दिखलाई पड़ती हैं जो राष्ट्रवाद के इतिहासलेखन की अभिजन धारा को एक अन्त: संवाद के लिए बाध्य करती है।

स्पष्टत: 1942 के आंदालन से जुड़ी ये कविताएँ जन-राष्ट्रवाद की उस संरचना से परिचय कराती हैं जहाँ पर आम जनता पराधीनता से मुक्ति और स्वाधीन राष्ट्र के निर्माण के लिए अपने को कुर्बान कर देती है।

इन सभी घटनाओं में भारत छोड़ो आंदोलन (1942) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि 1919 के बाद राष्ट्रवादी आंदोलन की संरचना में जन-साहित्य को एक प्रमुख स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने के प्रयास कई बार बेहतर निष्कर्ष नहीं दे पाते हैं, जैसा कि चौरी चौरा (1921) का इतिहास लिखने की प्रक्रिया में शाहिद अमीन 1931 में प्रकाशित बुलन्द शहर निवासी श्री पी.एस. वर्मा कृत 'गांधी की लड़ाई उर्फ सत्याग्रह संग्राम' नामक पुस्तिका में शामिल 'सन् 1921 असहयोग आंदोलन का रुकना' पर विचार करते हुए प्रकट करते हैं, लेकिन साथ ही अपने निष्कर्षों में वह यह तथ्य भी रखते हैं कि ऐसी साहित्यिक रचनाएँ आम जनता की 'राष्ट्रीय चिंता' और इस बहाने 'जन-राष्ट्रवाद' को समझने में मदद करती है।

दरअसल, स्वाधीनता आंदोलन के दौरान रचित जन-काव्य में आम जनता की राष्ट्रीय चिंता के केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा फैलाया जा रहा वह 'छल' केन्द्रीय भूमिका के रूप में दिखाई देता है जो राष्ट्र की गुलामी का कारण भी है। राष्ट्रीय अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित एवं ब्रिटिश राज में प्रतिबंधित 'देशभक्ति के गीत' में एक जन कवि ने राष्ट्र की गुलामी का कारण ब्रिटिश सरकार की उन नीतियों को माना है जिसके प्रभाव में आकर देश के कुछ तथाकथित लोग 'रायबहादुर' बन बैठे थे और जनता को गुमराह कर रहे थे। उदाहरण के लिए इस प्रसंग में साम्राज्यवादी छल का बयान करती निम्नलिखित कविता को देखा जा सकता है-

दुश्मन का डंका भारत में, बजवा दिया पदवी वालों ने।
बे-पैसे के नौकर बनना, सिखला दिया पदवी वालों ने।।
बे-मांगी रायें दे देकर, ये राय बहादुर बन बैठे।

स्पष्टत: इस काव्य में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, परन्तु कुछ ऐसे संदर्भ जरूर हैं, जिनसे आम जनता की राष्ट्रीय चिंता का पता चलता है।

वास्तव में, स्वाधीनता आंदोलन के दौरान घटित इस प्रकार की घटनाएँ, आम जनता के मन में अभिजन समाज के समानान्तर राष्ट्र की एक नई छवि निर्मित करती है और वह छवि है गुलामी से मुक्त एक नए और स्वाधीन राष्ट्र के पुनर्निर्माण का, जिसकी व्यापक अभिव्यक्ति सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन और 1946 के नौ सैनिक विद्रोह के समय दिखलाई पड़ती है।

भारत छोड़ो आंदोलन में जनता जहाँ अंग्रेजी शासन के खिलाफ 'करो या मरो' का नारा लगाते हुए सड़कों पर उतर आती है, वहाँ 1946 के विद्रोह में नौ सैनिक इस बात की मांग करते हैं कि उन तक देश की सूचनाएँ न पहुँचने दिये जाने की नीति गलत है। ज्ञातव्य हो कि नौसेना में भारतीय सैनिकों को पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने की आज़ादी नहीं थी, इसलिए कि अगर अंग्रेजों के अत्याचार की ख़बरें उनतक पहुँचेंगी तो वे विद्रोह कर बैठेंगे बाद में यह विद्रोह पूरी भारतीय फौज में फैलती है तथा उनके समर्थन मे कई जगह मजदूर भी हड़ताल करते हैं। इसीलिए इस बीच रचित जन कविताओं में एक स्वाधीन राष्ट्र की परिकल्पना दिखलाई पड़ती है। ख़ासकर भोजपुरी कविताओं में 1942 के आंदोलन की एक ऐसी छवि दिखलाई पड़ती है, जिसके बारे में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इतिहासकारों का मानना है कि इसका गहरा संबंध 1857 के बागी सैनिक मंगल पाण्डे, भोजपुर के कुंवर सिंह और पटना के पीर अली से है। चंदन मित्र ने 'जन विरोध: भारत छोड़ो आंदोलन' में कांग्रेस द्वारा 8 अगस्त, 1942 को प्रस्तावित इस आंदोलन में आम जनता की उपस्थिति को कांग्रेस के प्रभाव से अलग करके देखा है। इस संदर्भ में उन्होंने तत्कालीन वायसराय की चिंता को प्रकट करते हुए लिखा है-

वायसराय को सर्वाधिक चिंता इस बात से हुई कि ''जो कुछ भी घटित हुआ है उसमें से अधिकांश पर कांग्रेस की छाप नहीं है, जहाँ-जहाँ भी स्थिति सर्वाधिक ख़राब हुई वहाँ कांग्रेस की सामान्य कार्यविधि का कोई चिह्न देखने को नहीं मिलता ... उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत में शराब की दुकानों के सामने प्रभावहीन धरने से बिहार में की गई निर्दयतापूर्ण तोड़-फोड़ को जोड़ना पूर्णत: बेतुकी बात होगी।''

स्पष्टत: वायसराय की इस चिंता से साफ पता चलता है कि सन् 42 के भारत छोड़ो आंदोलन में कांग्रेस की संरचनात्मक (सैद्धांतिक) भूमिका तो दिखाई पड़ती है, परन्तु व्यवहारिक स्तर पर इस दौरान जो घटनाएँ घटती हैं वे कांग्रेस के प्रभाव से मुक्त दिखाई पड़ती हैं। चित्तू पाण्डेय के नेतृत्व में जिस तरह बलिया की आम जनता शहर को तीन दिनों के लिए ब्रिटिश शासन व्यवस्था से मुक्त करती है वह भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में दर्ज है। एक भोजपुरी जन-काव्य में बलिया के स्वाधीनता आंदोलन के जन-नेता चित्तू पाण्डेय की इसी ललकार का उल्लेख मिलता है:

चाहे करू कतनो उपाई,
भल-भल मजवा उड़वले एहि देसवा में,
अब जइहें कोठिया बिकाई। लड़इया नाहीं जीतबो ... रे फिरंगिया।

(अर्थात् चित्तू पाण्डेय अंग्रेजों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि 'हे फिरंगी ! कितने भी उपाय कर लो, अब भारत की जनता से यह लड़ाई नहीं जीत सकते। तुमने इस देश में खूब मजे उड़ाए। अब तुम्हारी कोठियाँ बिक जाएँगी।)

वास्तव मे इसी प्रकार की ऐतिहासिक घटनाएँ जन-काव्य के माध्यम से आम जनता के राष्ट्रवाद को समझने में मदद करती हैं। सन् 42 के भारत छोड़ो आंदोलन में बलिया की आम जनता के दो रूप दिखाई पड़ते हैं, जिनको लेकर जन-कवियों ने काव्य की रचना की है - एक, आम जनता द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ की गई कार्रवाही और दूसरा, 42 के आन्दोलन के बाद ब्रिटिश शासन के अधिकारियों द्वारा वहाँ की जनता पर किया गया अत्याचार। भोजपुरी के प्रसिद्ध जन-कवि प्रसिद्ध नारायण सिंह ने सन् 42 के आंदोलन पर 'बलिया बलिहार' नामक काव्य ग्रंथ में 42 की उत्साही जनता और उसके बाद अंग्रेजों के अत्याचार से त्रस्त जनता - दोनों का ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेख करते हुए लिखा है:

एक :

आइल अगस्त के आंदोलन, फरके लागल सबके तन, मन,
बिजुली दौड़ल जागल बलिया, चलले मुसलिम, हिन्दू, हरिजन,
मचि गइल लड़ाई बस जुझार।
थाना, डाकखाना, रेल, तार, सबपुलिस, अदालत, अहलकार
हाकिम, हुकाम, गोली, गोला, बजि गइल विजय डंका हमार।

(अर्थात् अगस्त 42 के आंदोलन 'करो या मरो' के आते ही बलिया के लोगों के शरीर में बिजली दौड़ गई। सबका तन-मन फड़कने लगा। हिन्दू, मुसलमान, हरिजन सभी एक साथ मिलकर घर से निकल पड़े। चारों तरफ- थाना, पोस्ट ऑफिस, रेलवे स्टेशन, तार घर, अदालत सभी जगह आंदोलन- कारियों ने धावा बोल दियां गोलियाँ चलीं, पर अंत में बलिया की जनता की ही विजय हुई।)

दो : गाँवन पर दगलनि गनमशीन,बेंतन सन मरलन बीन-बीन,
बैठाई डाल पर नीचे से,
जालिम भोंकलन खच-खच संगीन,
बहि चलल खून के तेज धार।
घर-घर से निकललि त्राहि-त्राहि, कोना-कोना से आहि-आहि,
गाँवन-गाँवन में लूट फूँक, मारल, काटल, भागल, पराहि
फिर कवन सुने केकर गुहार।

(अर्थात् ज्यों ही बेरहम अंग्रेज फौज 42 के आंदोलन-कारियों से बलिया का शासन वापस लेती है, उनका अत्याचार वहाँ की जनता पर बढ़ जाता है। गाँवों में ब्रिटिश फौज की बंदूकें चलने लगती है। लोगों की चुन-चुनकर बेतों से पिटाई की जाने लगती है, जालिम अंग्रेज फौज लोगों को पेड़ की डाल पर बैठाकर संगीनों से भोंक-भोंक कर मारने लगती है। चारों ओर खून की तेज धार बहने लगती है। गाँवों में हाहाकार मच जाता है। घर-घर में जनता त्राहि-त्राहि करने लगती है। अंग्रेज फौज घरों को लूटकर गाँवों में आग लगा देती है। जनता तबाह हो जाती है। अब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनकी पुकार सुनने वाला कोई नहीं है।)

स्पष्टत: 1942 के आंदालन से जुड़ी ये कविताएँ जन-राष्ट्रवाद की उस संरचना से परिचय कराती हैं जहाँ पर आम जनता पराधीनता से मुक्ति और स्वाधीन राष्ट्र के निर्माण के लिए अपने को कुर्बान कर देती है। दासता कितनी भयावह होती हे इसका अनुमान कविता के दूसरे हिस्से से लगाया जा सकता है। यही कारण है कि सन् 42 के आंदोलन में गांधी जब 'करो या मरो' का नारा देते हैं, तब आम जनता घरों से बाहर निकल पड़ती है तथा जनकवियों के शब्दों में यह नारा लगाते हुए अपना प्रतिरोध दर्ज करती है कि - 'है यही नारा हमारा/हम करेंगे या मरेंगे।'

वास्तव में, सन् 42 के आंदोलन में बलिया अथवा भारत के अन्य प्रांतों में आम जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ जो प्रतिरोध दर्ज करती है तथा जनकवि उनके समर्थन में जो कविताएँ लिखते हैं, वह भारतीय राष्ट्रवाद की संरचना पर विचार करने के लिए अनेक सूत्र प्रदान करता है कि आम जनता का राष्ट्रवाद क्या और कैसा होगा ? उसके मुख्य कारक क्या-क्या होंगे तथा अभिजन राष्ट्रवाद से उसका संबंध किस प्रकार का होगा ? खासकर 1919 के बाद सन् 42 के आंदालन को लेकर रचित जन-कविताओं में जिस जन-राष्ट्रवाद का स्वरूप उभरकर सामने आता है, वहाँ स्वाधीनता और बेहतर सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण कारक है क्योंकि आम जनता पराधीनता में सबसे अधिक परेशान लगान और कर्ज से दिखाई पड़ती है इसीलिए वह एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना करती है जहाँ पर उन्हें लगान नहीं देना पड़ेगा और कर्ज उनकी ज़िंदगी सबसे बड़ी त्रासदी नहीं रहेगी।

अर्थात् जनता का राष्ट्रवाद वही होगा जो आम जनता के व्यापक हित को लेकर निर्मित किया जाएगा। साथ ही जहाँ पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और न्याय के आदर्श तथा राष्ट्र विकास एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होगा। इसीलिए आम जनता गांधी के स्वराज्य की धारणा का सबसे अधिक समर्थन करती है तथा वह महसूस करती है कि उस स्वराज्य में उनका दमन और शोषण खत्म होगा, उन पर लगान तथा दूसरे तरह के टैक्स के बोझ कम होंगे और जिसमें निर्णय लेने में वे सभी लोग भागीदार होंगे, जो उस निर्णय से प्रभावित होंगे। सन् 42 के आंदोलन में यह बात दिखाई पड़ती है।

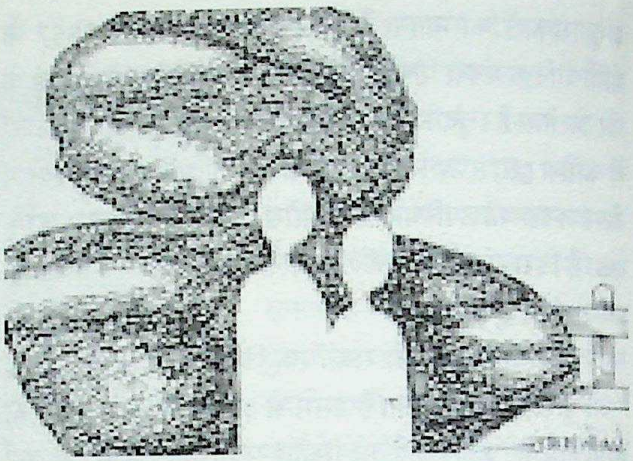

इसमें संदेह नहीं कि जन-काव्य के माध्यम से राष्ट्रवाद का जो स्वरूप निर्मित होता है उसमें जनता एक बेहतर भविष्य का सपना देखती है लेकिन उसे पता है कि यह बेहतर भविष्य बिना संघर्ष और बलिदान के नहीं आएगा। जन-कविताएँ भी इस बात की पुष्टि करती हैं। इन कविताओं से यह भी पता चलता है कि मुख्यधारा के स्वीकृत नेताओं की अनुपस्थिति में भी आम जनता अपना मंतव्य प्रकट कर सकती है, जैसा कि चौरी चौरा और भारत छोड़ो आंदोलन में दिखलाई पड़ता है। यद्यपि इन आंदोलनों में जनता गांधी की संस्कृति के खिलाफ जाकर हिंसा करती है लेकिन यह हिंसा हमारी संस्कृति का उतना ही महत्त्वपूर्ण भाग है जितना कि अहिंसा और धर्म आदि, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वाधीनता आंदोलन की ये परिघटनाएँ और उनको लेकर रचित जन-कविताएँ राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में अभिजन आंदोलनों के समानान्तर जन-आंदोलनों के महत्त्व को स्थापित करती हैं तथा भारतीय राष्ट्रवाद को एक नया रूप देती हैं।

संदर्भ: *शाहिद अमीन और ज्ञानेन्द्र पाण्डेय द्वारा सम्पादित निम्नवर्गीय प्रसंग भाग-1 और भाग-2, श्रीधर मिश्र: भोजपुरी लोक साहित्य: सांस्कृतिक अध्ययन, रामलखन शुक्ल द्वारा सम्पादित 'आधुनिक भारत का इतिहास' में शामिल चन्दन मित्रा का लेख 'जन-विरोध, भारत छोड़ो आंदोलन, रुस्तम राय: प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, देशभक्ति के गीत (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, 1985), शिव कुमार मिश्र: आज़ादी की अग्नि शिखाएँ, उदय नारायण तिवारी: भोजपुरी भाषा और साहित्य (बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, वर्ष 1984),*

मोबाइल: 881040 34 30

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुमन पोखरेल

आसमान से

(नेपाली से कवि द्वारा स्वयं अनूदित)

नीचे तमन्नाओं से खेलते हुए जिन्दगियाँ दिखाई नहीं देती
आसमान से ।
ना तो पहाडों की सहनशीलता टूटकर फिसले हुए जमीन के
घाव की गहराई ही दिखाई देती है ।

बादल से ढका हुआ आसमान से
आँखों पे ही सटा हुआ आसमान भी दिखाई नहीं देता
नीचे-नीचे ही बह चलता है, हवा भी दिखाई नहीं देती ।
ना तो आँधी लेकर थरथराए हुए पेड़ों के दिल का
कम्पन ही दिखाई देता है ।

आसमान से
कोमल होते-होते मर जाने के बाद
जीने के लिए कठोर बने हुए पत्थरों के
मन को सहलाया नहीं जा सकता,
बारी-बारी से ताप और पाला के मार खा कर भी मुस्कुरा रहे
फूलों की कोमलता को छुआ नहीं जा सकता,
बरसों तक निरन्तर दब जाने के बाद जाग उठा हुआ
भूकम्प की शक्ति नापी नहीं जा सकती
गन्तव्य तक पहुँचे बिना न रुकने का अठोट लेकर दौड़े हुए
वेगों का
सामर्थ्य का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता,
बगीचे के पास एक दूसरे के मन पे सो रहे प्रेमियों के
सपनों को देखा नहीं जा सकता ।

बस्ती दर बस्ती इतिहास को बहाते हुए दौड़ रही नदी भी
स्थिर दिखाई पडती है आसमान से ।
पहाड़ों की सृजनशील गोद भी प्रभावहीन दिखाई देती है ।
मैदानों पे लहलहाते हुए सृष्टि की
कलियाँ और फूल भी सुवासहीन लगते हैं ।
किसी साहस का कभी न चढ़ सका हुआ हिमालय भी
नाटा दिखाई देता है ।
इन्सानों की आस्था से तराश कर उठाया हुआ धरहरा भी
बौना दिखाई देता है ।

कुछ देर तो ऐसा भी लगता है कि
आसमान से देखने पे
धरती के कोन-कोने के संवेदन को छुआ जा सकता है
हवा और विचारों के रंगों को भी देखा जा सकता है।
और सैकड़ों क्षितिज के उस पार तक सम्पूर्ण सृष्टि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सनातन से ही शान्त है जैसा दिखाई देता है ।
सदा आसमान पे बैठकर बोलने वालों से
पूछ लें अब एक बार,
क्या संसार की वास्तविकता वैसा ही है
जैसा आसमान से दिखाई देता है ?

दफ़्तर

(नेपाल के प्रधानमंत्री का)

दफ़्तर के अन्दर
धरती का सर्वाधिक मूल्यवान हो के भी
शासक द्वारा
बाढ़ के समय की बारिस जैसा सस्ता समझे हुए
जनता के पसीने से बनी हुई आलमारियाँ हैं ।

और आलमारियों के अन्दर हैं,
नौकर का काम कर मालिक बना भ्रम पाले हुए इन्सानों के
बदनियत और असक्षमता की दुर्गन्ध आने वाली फाइलें।

जहाँ हमारी कमज़ोरियों के लेस से बँधा हुआ
एक वीभत्स इतिहास है,
हमारे निर्लज्जता से लिखा जा रहा
एक गूँगा वर्तमान है,
एक अनिश्चित भविष्य है ।

क्या आपको पता है,
उस दफ़्तर का नाम
अगर सिंहदरबार नहीं तो
और क्या है ?

यात्रा में निकलते हुए

कदम
चल रहे थे, रूक रहे थे ।

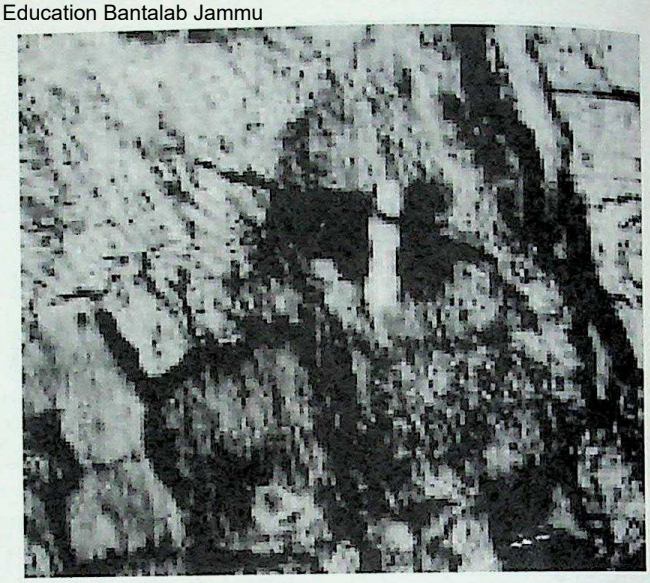

ज़िन्दगी को जिंदा रखने के लिए
जब मैं छोड़ के जा रहा था पाँव के नीचे की जमीन को,
मिट्टी मुझे पकडना चाह रही थी
कूबड़े और चट्टाने मेरा रास्ता रोकना चाह रहे थे ।
उस रात को
वास्तव में कितना ज्यादा विषादमय समय जीना पड़ रहा था,
उन तारों को,
उस चाँदनी को
कैसी अन्धरकारमय परिस्थिति में हँसना पड़ रहा था ।

मुझे लेकिन, चलते रहना था ।
अनदेखा करना था
पत्तो में अटके हुए रात के उन आँसूओं को
उन फूलों की चोट और निरीहता को
टहनियाँ टूट जाने पे हो रहे वृक्षों की पीड़ाओं को ।

और छुपाना था
ख़ुद की आँखों से लौटकर मन में पहुँच जमा हुआ तालाब को भी ।

ख़ुद का भी कभी न समझ पाया हुआ कोई नियम को पालन करना था
अकेला, निर्जन रास्ते पे चलता रहना था ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो होना था, वो तो बाद में होना ही था।
पर ज़िन्दगीभर
मुझे जिंदा ना रहना था ।

नहीं आ रही कविता (एक)

एक कविता लिख डालने की चाह से बैठा हूँ
सृष्टि के कुछ सौन्दर्य को बटोर लूँ कह कर बैठा हूँ
ज़िन्दगी ख़ाली होने के बाद बचा हुआ
इस सौन्दर्यविहीन भोथरी आपा-धापी पे
जीने का अर्थ भर लूँ कह के बैठा हूँ ।

हर पल मृत्यु नाचने वाला यह धूमिल उजियारे पे
अनहोनी हो सकने की यह अनिश्चितता में
किस वीभत्सता में से निकाल लाएँ सुन्दरता को
और लिख लें कविता !

हर तरफ प्रलय बिखरी हुई इस घड़ी
अरण्यरोदन से ज्यादा हृदयविदारक है
शहर की विक्षिप्त मुस्कान ।
मानव के आधिपत्य रहे आयें इस धरती पे
मानव होना कितना विषम, कष्टकर और पीड़ादायक !
जीने की चाह करना कितना बोझमय, असुरक्षित और विदीर्ण ?

कितना दुष्कर
कितना कठिन
कितना वीभत्स यह समय !

लेकिन
चाहे भूख खा कर रोग जिए
चाहे धूप ओढ़कर ताप जिए
चाहे वर्फ सो कर ठंड जिए
चाहे अभाव पी कर मृत्यु जिए
एक बार मानव हो चुकने के बाद
आजीवन अभिशप्त है मानव
एक लम्हा के लिए भी मानव न हो पाने के लिए ।

संवेदनाओं की गुफाओं में छुपा हुआ इस वक्त
आपस में झगड़ते हुए ऐसे सत्यों को बटोरकर
क्या क्या ना बनाऊँ मैं ?

समय सर्वाङ्ग नग्नता ओढ़कर सोया हुआ इस घड़ी
काले अक्षर भी लाल दिखाई देते हैं
नीले अक्षर भी लाल दिखाई देते हैं
खून से तर इस धरती में
पसीने के अक्षर भी लाल दिखाई देते हैं ।

स्वयम्भू के आँखों का
सिर्फ टकटकी लगाकर देखते रहने से क्या होगा ?
कबूतर उड़ नहीं सक रहे हैं
बारुद के लाल बोझ के नीचे दबकर ।
सर्वे भवन्तु सुखिनः, कहाँ है सुख ?
मा गामः पथो वयम्, कहाँ है रास्ते ?
बिस्-मिल्लाह इर रहमान इर रहीम !, अब क्या शुरु करें ?

कयामत ढाये हुए इस वक्त पे
शान्ति का एक शब्द से क्या करें, क्या न करें ?

यह असुरक्षित जीवन और मृत्यु का मध्यान्ह में
मानव ढूँढ़ रहा है अपने अन्दर से निकल भागे हुए मानव
को ख़ुद को मृत्यु का असुरक्षित बाजार तले बिछाकर ।

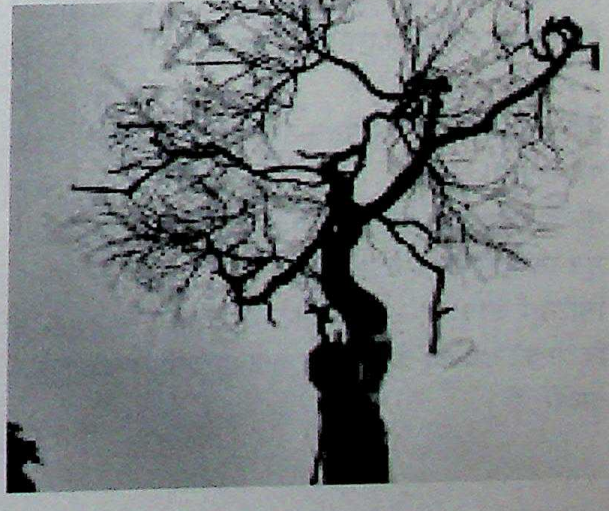

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आत्मा निकल भाग कर बचे हुए
खोखले मानवों की इस भीड़ में
हर चीज मृत्यु बनकर खडी हुई है ।

ऐसे में सुरक्षाविहीनता ही सुरक्षा हो सकता है
जहाँ एक सुरक्षित मृत्यु मरा जा सकता है ।

ऐसे समय में
लिख भी लें तो
मृत्यु की कविता लिखी जा सकती है ।

आ भी गयी तो
निरीह जनता और असक्षम शासन के
षडयन्त्रों की कविता आ सकती है,
भूख और रोगों की कविता आ सकती है
नङ्गे शरीर और रुआंसी हँसी की कविता आ सकती है
और फिर एक लहर मृत्यु की कविता आ सकती है ।

मुझे जीवन सा जी पाने वाले जीवनों की कविता लिखने का मन है ।
समय मृत्यु में चढ़कर दौड़ रहा इस क्षण
नहीं आ रही है मेरे पास कोई कविता ।

(2)

इस वक्त कविता नहीं आ रही है
लेकिन मुझे कविता ही लिखने का मन हुआ ।

यहाँ संसार को खुद में समेट कर सो रही किताबें और पत्रिकाएँ हैं,
मुझे ही पहरा देकर खडी रह रही दीवारें और खिडकियाँ हैं
मुझ सा ही पिघलने के लिए तैयार
चिट्ठियाँ और
किसी को याद कर के टकटकी लगा रहे जैसी दिखने वाले तस्वीरें हैं ।

इस वक्त यहाँ नामौजूद चीजों के अलावा सब कुछ हैं ।
लेकिन उन को बाधा डालने का मन नहीं हुआ ।

मुझे मोमबत्ती या रेडियो लिखने का मन नहीं हुआ ,
टेबुल, कलम या कागज लिखने का मन नहीं हुआ
कविता लिखने का मन हुआ है।

धरती का इस कतला में
पढ़ने का फुर्सत नहीं गिट्टी फोड़ना छोड़कर,
सोचने का हौसला नहीं, भूख को बिछाकर,
सुमधुर बोलने की जरुरत नहीं, राजनीति को उतारकर,
जीने की फुर्सत नहीं, जीवन को घसीटना छोड़कर ।

इस अन्यौल में,
गिट्टीयाँ फोड़ते फोड़ते खुद टूटे हुए जीवनों की कहानियाँ लिखी जा सकती है,
आजीवन नंगे ही गुज़ार चले हुए वक्तों का निबन्ध लिखा जा सकता है,
दिन भर जीवन को ढूँढ़ के न मिलने पर
रात के तरफ लौटते हुए थकित शामों पे उपन्यास लिखा जा सकता है,
लेकिन
सौन्दर्य से सजाई हुई कविता के पैदा होने का आसार नहीं दिखाई देता ।

अविवेक की हंडिया से सर ढकने से
नहीं रोका जा सकता अनियन्त्रित बहा हुआ अव्यवस्था की पागल बाढ़ को ।
निर्लज्जता और मूर्खता को चबा लेना जैसा आसान नहीं है
टूटे हुए समय के टुकड़े को चबाना ।

ऐसे में
फिर एक विदीर्ण कालखण्ड का प्रलाप लिखा जा सकता है,
शायद
उल्लास की मिठास से भिगी हुई कविता किसी भी हाल में नहीं आ रही ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझे,
जीवनमय उमंगों के धुन पे नाच रहे युग की कविता लिखने का मन है ।

सृष्टि के सारे सौन्दर्य एक एक कर के पलायन हो रहे
इस धरती पे
इस वक्त नहीं आ रही है मेरे पास कोई कविता ।
मेल: suman_pokhrelayahoo.com

बसंत त्रिपाठी

हिंदी में हिंदी की कविता

मैं हिंदी में पोलिश कविताएँ लिख सकता हूँ
फ्रैंच, स्पेनिश, अंग्रेज़ी, जापानी
और कोरियन कविताएँ भी

मैं सिर खपाए बिना
फिलीस्तीनी कविता से रँग सकता हूँ
बीसियों पन्ने

चीनी और रूसी कविता लिखना तो
और भी आसान है

मैं हिंदी में लिख सकता हूँ
दुनिया की तमाम भाषाओं की कविताएँ
जो चमत्कृत करे
मैं आवेगहीन पंक्तियों का
महल खड़ा कर सकता हूँ
यांत्रिक आवेगों का दरिया बहा सकता हूँ
जो जीवन मैंने नहीं जिया
उसकी कविता लिखने में क्या मुश्किल !

लेकिन हिंदी में हिंदी की कविता लिखना
मेरे लिए आसान नहीं
खुद का ही जीवन पलटना पड़ता है बार-बार
बार-बार पार करना पड़ता है
खुरदुरे शब्द के चप्पुओं से
उबलता हुआ समुद्र

वह जो फैला हुआ है इर्द-गिर्द
सूखे पपड़ाए होंठों में छिपी है भूख जो
वह जो कोयल और झिंगुर की आवाज है
आम की महक चंपा की गंध
वह जो देर तक रुकी हुई रुलाई है
और चिथड़ों का निस्संग संसार
और अकारण मौतें
इन सबको समेटने के लिए
एक उम्र का धँसाव चाहिए
मान लो धँस भी गया
तो उपेक्षा ही मिलेगी
ज्यादा से ज्यादा एक नामालूम मौत
जो बाद में शायद चमक उठे

इससे तो अच्छा है
कि मैं हिंदी में लिखूँ विदेशी कविताएँ
थोड़ी चर्चा वर्चा के बाद
छुट्टी पाऊँ इस मुई कविता से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कम्बख़्त
पीछा ही नहीं छोड़ती !

हिंदी प्रदेश

घर की बुनियाद हिलने लगी है
रंग-रोगन, पलस्तर और सजावट की
साँस उखड़ गई है
नृंशसताएँ अपने नंगेपन के साथ ठीक सामने हैं
कोई उजाड़ पास खड़ा मुस्कुरा रहा है
लगता है कि वह जल्द ही
अपनी विजय पताका फहराएगा
बस कुछ ऐसा ही लगता है
जब भी मैं सैद्धांतिक महानता से लिथड़े
अपने हिंदी प्रदेशों को देखता हूँ

इसकी खड़ी भाषा में
सांस्कृतिक रूप से उन्नत
और उम्रदराज़ भाषाओं की फुफकारें हैं
अनगिन भाषाओं की चीत्कारें
और दम तोड़ती चीखें भी

गीता प्रेस की केसरिया किताबों से
अपनी खुराक पाकर पल बड़ा प्रदेश
थोड़ा फूलकर अँगरेजी में पुट्ठे खुजाता है
अकसर रेबेन का चश्मा आँखों पर चड़ाए
हर नागरिक नियमों को धत्ता बताता
दंबगई को स्वाभाविक प्रकृति प्रदत्त अधिकार मानता
भावुक होकर लोकगीत में भाव बहाता है
यही तबका तो बनता है इस विशाल प्रदेश का निकृष्ट राजदूत

इसका एक और अलक्षित उपेक्षित तबका है
जो धर्म की ध्वजा लोकरीत में लहराता है
चुप रहता है मेहनत करता है
कारखानों से हकाल दिया जाता है
सब्जी और फलों के ठेले लगाता है
पंजाब में खेत गोड़ता है
दक्षिण में तार बिछाता है
मुंबई में ऑटो चलाता है
यानी हर जगह दुरदुराया जाता है

तीज-त्योहार, हारी-बीमारी, शादी-बिहाव में
जब लौटता है देस
महुआ, हँड़िया, ठर्रा खेंचकर
मगही, छतीसगड़ी, मैथिली, भोजपुरी में
मोटी गालियाँ बकता है
जो गालियाँ कम
लोक की कलपती आत्मा अधिक लगती है

ओ मेरी जनता, मेरे प्रिय जन,
मैं तुमसे कहता हूँ -सांप्रदायिकता के विरुद्ध
गोलबंद हो जाओ
तुम्हें मेनीफेस्टो पढ़कर सुनाता हूँ
लेनिन, फिदेल और चेग्वेरा के किस्से बाँचता हूँ
संविधान की याद दिलाता हूँ
लेकिन जहाँ तुम रहते हो
मेरी आवाज वहाँ पहुँचने के बहुत पहले ही
दम तोड़ देती है

तब मैं तुम्हारे उस भद्रजन को ढूँढता हूँ
जिसके बारे में कहा जाता है
कि वे साहित्य, संस्कृति और कला को ज़िंदा रखते हैं
लेकिन वे तो सोशल मीडिया की क्रांति में व्यस्त हैं
या फिर मार्केज में ही खोये हैं दिन रात

तो ओ मेरे जन,
मैं तुम्हें ही देखता हूँ आशा से
तुमसे प्यार करता हूँ
तुमसे कुढ़ता हूँ, चिढ़ता हूँ,
तुम्हें बुलाता हूँ
लेकिन तुम आओ भी तो क्योंकर भला ?
तुम अचीह्नी नजर से देखते हो मुझे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सर खुजाते हो
और गाड़ी पकड़कर चले जाते हो
पंजाब, हैदराबाद, बंगलोर, चेन्नई या दिल्ली !

यह सोचकर

यह सोचकर
मेरी रूह काँप जाती है
कि एक दिन मधुमक्खियाँ
इस पृथ्वी में नहीं होंगी

यह चिंता
केवल शहद की चिंता नहीं है,
उन्हीं के अम्लीय डंकों में छिपा है
हमारी दुनिया का मीठापन
जिसका स्वाद चखने के लिए
तमाम मिथकों के ईश्वर
बार बार लौटते हैं पृथ्वी में

मेरी रूह यह सोचकर भी काँप जाती है
कि एक दिन किसान भी नहीं होंगे इस पृथ्वी में
हाँ, वे सचमुच नहीं होंगे
मधुमक्खियों और तितलियों के न होने से

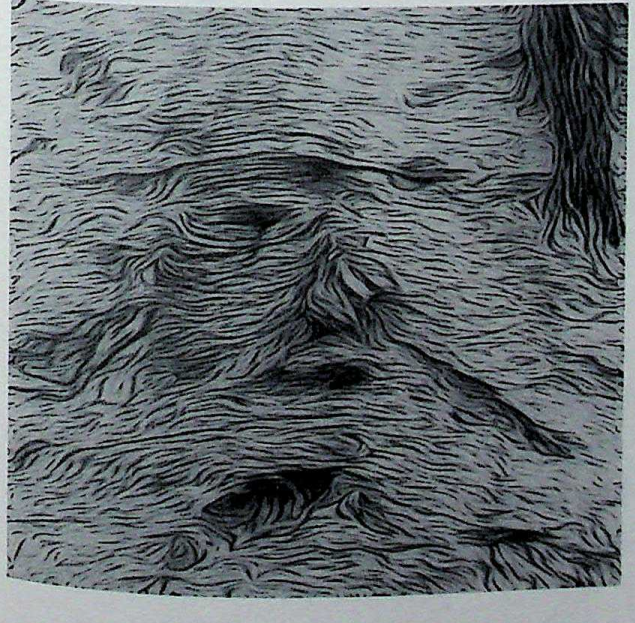

वे वैसे भी किसान कहाँ रह जाएँगे !
फिर अगर वे रहना भी चाहें
तो हमारे वित्त मंत्री तोड़ देंगे
उनके मंसूबे

चींटियाँ शायद रह लें
इस धरती को बुहारने की अंतिम ज़िम्मेदारी
उन्हीं के कंधों पर है
(चींटियों के कंधे जैसे मुहावरे के लिए
आप चाहे तो मेरा मजाक उड़ा सकते हैं)
लेकिन आदिवासी भी नहीं रहेंगे
हमने छीन लिए उनके जंगल
उनके महुए पर नजर गड़ाए हैं
उनके गीतों से पक्षियों की आवाज छीनकर
अपना उत्सवी अकेलापन ठूँस दिया
उन्हें उनका रहने न दिया
और अपना भी न बनाया

जिनके होने से यह दुनिया, दुनिया है
वे ही न होंगे
तो फिर कौन रहेंगे यहाँ
यही सोचकर
मेरी रूह काँप जाती है

यह सोचकर
क्या आपकी रूह भी
नहीं काँप रही है ?

आगामी तानाशाह

हमारे लिए
राहत की बात यह नहीं है
कि मौजूदा तानाशाह की चमक
फीकी पड़ने लगी है

हमारी मुश्किल तो यह है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि हमने एक तानाशाह पर यकीन किया

इस तरह हमारा भविष्य
तानाशाहों के अंदेशों से
भरा हुआ है

चिंता यह भी
कि हर आगामी तानाशाह
पहले की तुलना में ज्यादा क्रूर होगा
ज्यादा आततायी
वह सब कुछ डंके की चोट पर करेगा।

मेरी नींद में

मैं थका हुआ था
दिनभर की आक्रामक ऊब से
कुछ भी थिर नहीं था
मेरा विवेक खुद चकराया हुआ था
कनफोडू राष्ट्रवादी मंजर से
लौटने के अलावा कोई चारा नहीं था
और मैं लौट आया था घर
अपनी काया और अपने जूतों समेत
यहाँ वहाँ की धूल और गंध के साथ

संगिनी ने स्वागत करते हुए दरवाज़ा खोला
जैसे मैं युद्ध से लौटा हुआ कोई थकाहारा सैनिक होऊँ
कमर पर टँगे बंदूक को
दीवार पर टाँगने की तरह मैंने टाँग दी थी
कील पर चाबी,
दीवारों ने दिलासा दिया
किताबें पहचानने के सुर में ज़रा सी चहचहाईं
और कहा - अब तुम उतार सकते हो अपना लबादा

घर और बाहर के बीच दीवार और दरवाज़े ही तो थे फकत
चिंताओं से मुक्ति मिलती भी तो क्योंकर !

रात ने सहलाते-पुचकारते
नींद के पालने में डाला ही था कि दु:स्वप्नों के परिंदे ने
अपनी तीखी चोंच चलाई
जैसे मैं
मैं नहीं पकने को आतुर कोई फल होऊँ

उसके डैने विशाल थे
और बारूद से बने हुए थे
मैं महज हाज़ माँस का पुतला
मेरी नींद में धुएँ और खून के अलावा कुछ भी नहीं था।

मो : 9850313062

कमल वोरा

गुजराती से अनुवाद: बिन्दु भट्ट

(1)

बापू !
पकड़ी मैंने आपकी ऊँगली,
तो सत्य क्या है
जानता हूँ
परन्तु आचरण नहीं कर सकता।
असत्य से
नफरत करता हूँ,
परन्तु त्याग नहीं सकता।
आपने सत्य के किए,
मैं धिक्कार के प्रयोगों में
डूबा हुआ हूँ।

(2)

अंदाज़ा नहीं था कि
मेरा जीवन मेरी वाणी
रट्टा लगवाते
चतुर बनिये की तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यकायक आप परीक्षा ले लेंगे बापू!
जो हृदय में था, होंठों पर आया,
मेरी वाणी
ही मेरा जीवन।

(3)

सूई के ढेर में
गुमशुदा एकाध तिनका, सूखा या कोमल
ख़ोजते-ख़ोजते
ख़ून से सने इस हाथ से
किस तरह मिलाऊँ
आप से हाथ बापू!

(4)

मिस्टर गेंढी!
वी आर काईन्ड ऑफ डन विथ यू
यू मे लीव अस नाउ
नाउ वी ऐक्टिविस्ट् इन अ डिजिटल वर्ल्ड वेअर
नथिंग इज़ रियल नथिंग अनरियल आइदर
नहीं है सत्य का जय, न असत्य का पराजय
इन फेक्ट नो ट्रुथ् एण्ड नो लाइ
ओन्ली ए स्पेक्टक्ल् ऑफ वायोलन्स्
विथ लाइव विशुअल्
नॉन-वायोलन्स् इज़ ऑल जन्क, मिस्टर गेंढी!

नो क्लेन्लिनस् नो गोडलीनेस
एव्रीथिंग कलरफुल एण्ड इन्स्टंट
इन्स्टंट डायरेक्ट ट्रांसफर
फॉर अ विलियन कन्ट्रीमेन
हेन्स नो नीड ऑफ करंसी एट ऑल
सॉरी, नो प्लेस फॉर यू मिस्टर गेंढी
श्योरली वी आर थेंक्कफूल टू यू
बट
बट, टाइम टू क्विट द नेशन, डियर फादर!

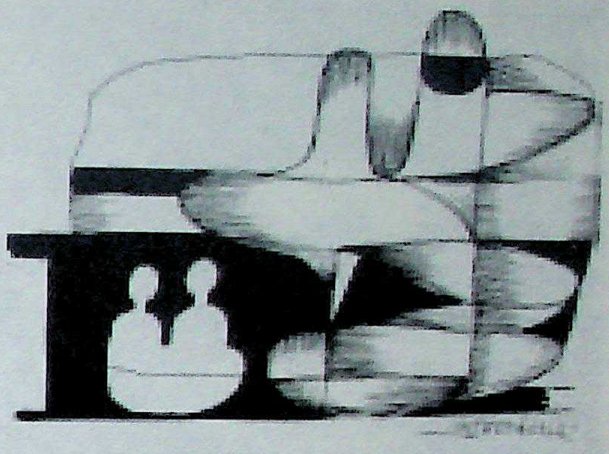

इन फेक्ट वी गाएस केन हेल्प
एंड डिलिट यू
विद अटच ऑफ फिंगर, बापू!

(5)

सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर नहीं
व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए
जीव मात्र के प्रति
आत्मवत प्रेम की परम आवश्यकता है
आत्मशुद्धि के बिना
अहिंसा धर्म का पालन सर्वथा असम्भव है
सत्यमय होने के लिए
अहिंसा ही एक मार्ग है
परन्तु यह शुद्धि का मार्ग विकट है

तह लिख रहा हूँ वह काग़ज
काग़ज पर अक्षर उकेरती कलम,
कलम को पकड़ता हाथ
अशुद्ध है।
हाथ के स्नायु का संसार,
रंगो में धड़कता हृदय अशुद्ध,
चित्त अशुद्ध
चेतना अशुद्ध है।
साधन-शुद्धि का आपका आग्रह, बापू!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डेढ़ सदी से भी
मुझे आपसे विलग रखता है।

(6)

आखिर जी जी कर
मनुष्य सौ शरद जीए,
पर आप तो डेढ़ सौ को पार कर गए प्यारे बापू!
बस, बहुत हो गया, अब सिधारे
आपका रहा सहा साया
अभी भी कभी कभार
औचक ही बीच में आ कर
हमारे तांडव का लय
भंग कर देता है।
तब कुछ पल हम बौख़लाकर
सुधबुध खो बैठते हैं।
पर फिर,
फिर हमारे विचार, वाणी, व्यवहार में
प्रकृति के प्रति
पशु के प्रति
मनुष्य के प्रति
विषैली विजालियाँ फुत्कारती है
हिंसाहारी, हिंसाचारी, हिंसाकारी के इन हाथों से
अंतिम प्याला ज़हर का पीकर, जाइए,
जाइए न अब, बापू प्यारे!

मो. 9819820286

अल्मोग बेहार (इज़राइल)

अनुवादः राजेश झा

प्रीमो लेवी के लिए

ऐसी जगहों में जहाँ प्रार्थनाएँ नहीं बचा सकती हमें,
हरेक शब्द होती है प्रार्थना,
कटोरे से सूप पीना भी बन जाता है प्रार्थना का मधुर सुर,
शरीर पर पड़ने वाले घूंसे, ठंड, भूख और
तुम्हारी बाँह पर गोदी हुई संख्या,
वे भी प्रार्थना की किताबों से लायी गयी हैं।

जब ऑस्चविच के भारी दरवाजे खुले
और लोगों की परछाइयाँ बाहर निकली,
दरवाज़े के पास खड़ा था भगवान,
रो-रो कर मांग रहा था माफी,
याचना कर रहा था लोगों से- माफ कर दो, मुझे कर दो माफ।
लाजिम है कि इंसान कर दे माफ इंसान को,
मगर भगवान को माफ करने से बुरा कुछ भी नहीं होता।

(Lines to Primo Levi-Almog Behar-Israel-English Text)

(2)

तलवार पकड़े हाथ

हाथ और बंदूक के बीच उतना ही फासला होता है,
जितना चुंबन और गालों के बीच।
जितनी मेरी ज़िंदगी और वर्तमान के बीच,
होता है जितना फासला मेरे होंठ और उससे निकलने वाली
चीख के दरमियान।
एक इंसान जमा करता है पतझड़ और सर्दियाँ,
चुप्पियों की भी आवाज होती है
उस समय जो बड़ा था फासला,
बंदूक के घोड़े को दबाते ही हो गया खत्म।
शाम की हवा में बंदूक की गोली का हुनर,
चला जाता है आत्मा के आर-
पार
मेरी स्मृति में मौजूद है तलवार को पकड़ा हुआ वो हाथ,
जहाँ से शुरू होता है धरती पर इंसान का सफर।
भले ही बिखर गया हो जमीन पर,
नहीं सुनाई देती इतनी सी चीख
गर्म रहता है जब तक खून,
सीख लिया है लोगों ने इसे नजरअंदाज़ करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाथ और बंदूक के घोड़े के बीच की दूरी,
उतनी ही है जितनी गोली और मौत के बीच,
जितना होता है फासला दीवार और इसकी दरारों के बीच,
जैसे पैदा होती है कोई लाश।

(3)
अपने दिल के दरवाज़े बंद कर लेता है जेरुसलेम

अपने दिल के दरवाज़े बंद कर लेता है जेरुसलेम
अपने दिल के दरवाज़े बंद कर लेता है जेरुसलेम,
ऊँची- ऊँची पहरे की मीनारों से ढांप लेता है खुद को
अपने और दूसरे की आँख के बीच
दीवार खड़ी कर देता है जेरुसलेम।

रात दर रात, सूरज के डूबने के बाद
पहनकर भारी पोशाक निकल पड़ता है
देखने कि सभी दरवाज़े ठीक से बंद हैं कि नहीं,
क्योंकि सभी बाशिंदे हैं क़ैद,
पेड़ों पर जड़ देता है ताले।
और रेगिस्तान से चीखती आती है कोई औरत
पत्थर की दीवारों पर पटकती है अपना हाथ
चीख-चीख कर जाहिर करती है अपने दिल की बात-
आओ मेरे प्रियतम, चलें हम साथ खेतों की ओर,
रहेंगे गाँवों में हम।
भोर होने से थोड़ा पहले चलेंगे बगीचे की ओर।
सोता रहा जेरुसलेम, जगा नहीं उसका दिल।
और वो औरत उठाकर लोहे की भारी चाबियाँ,
लगाती है तालों में,
उसकी चीख,जगा देती है
शहर की गश्त लगा रहे वर्दीधारी पहरेदारों को
जो कर देते हैं उसके माँस को घायल, छिल जाती है उसकी चमड़ी
फाड़ देते हैं उसके कपड़े,
रात दर रात।

रोज रात चाँद के ढलने के पहले,
फांदकर दीवारें और साथ लेकर भागते
देवता जाते हैं पवित्र पहाड़ी की ओर,

(4)
अतीत की याद कहने से घबराहट नहीं

मैं घबड़ाता नहीं हूँ कहने से
कि बीते वक्त की याद मुझे उदास करती है।
मैं घबड़ाता नहीं हूँ
कहने से कि मेरे दिल में उठती है चाहतों की हूक।
कि बक्से में बंद स्मृतियों की गठरी में
बंद है मेरा अतीत।
मैं अपने लिए थोड़ी सी चाबियाँ खरीदने से घबड़ाता नहीं हूँ।
दरवाज़े की फांक में आँखें डालकर झांकने से
घबड़ाता नहीं हूँ मैं।
जब तक कि सब कुछ खुल न जाए,
अपने अंदर चुपके से मैं झांक न लूं,
घबड़ाता नहीं हूँ कहने से,
कि भुलक्कड़ इंसान हूँ मैं
लेकिन मेरे पास स्मृतियाँ हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो मुझे भूल नहीं सकती।

(5)

गूंगी है मेरी अरबी
गूंगी है मेरी अरबी
दबा हुआ है इसका गला
बिना बोले एक भी शब्द
कोस रही है खुद को
मेरे हृदय की घुटनभरी छांव में सो रही है अरबी
हिब्रू के दरवाज़ों के पीछे
अपने रिश्तेदारों से छिपकर बैठी है मेरी अरबी।

और मतवाला हुआ जा रहा है मेरा हिब्रू,
कूदता फांदता फिर रहा है इस कमरे से उस कमरे, पड़ोसियों
की बाल्कनी में इधर से उधर
लोगों के बीच अपनी आवाज जाहिर करता
कर रहा है ईश्वर और बुल्डोज़र के आने की घोषणा
और फिर मेरे बैठक में जम कर बैठ जा रहा है मेरा हिब्रू
अपनी चमड़ी की भाषा में समझता हुआ खुद को बिंदास,
खुला
अपने माँस के सफों के बीच छुपा है इस तरह
एक पल में बिलकुल नंगा, दूसरे ही पल पहन कर पोशाक
आराम से बैठ जाता है आराम कुर्सी में
माँगता है माफी, मेरा हिब्रू ।

डर से मेरी अरबी हो गयी है सन्न,
चुपके से हिब्रू होने का कर रही है ढोंग
जब दरवाज़े पर दस्तक देते हैं दोस्त
कहती है फुसफुसाकर

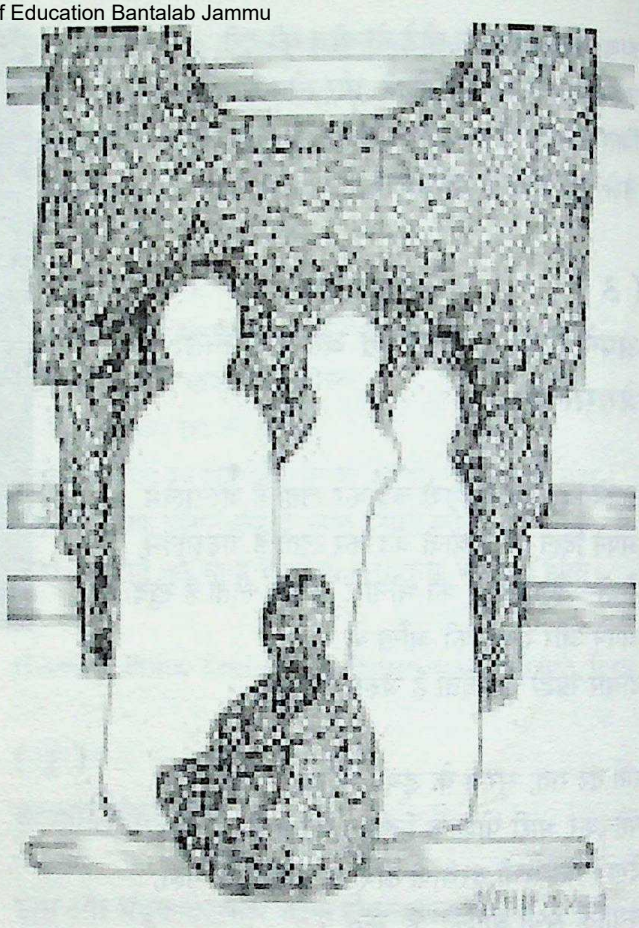

'स्वागत है अहलान, स्वागत है'
और जब गलियों में कभी पुलिस वाला दबोच लेता है इसे
निकालकर दिखाती है अपना परिचयपत्र
और इशारा करती है अपनी सुरक्षा वाले हिस्से की तरफ
अना मिन अल-यहूद, अना मिन अल-यहूद
-यहूदी हूँ मैं, यहूदी हूँ मैं
और बहरा है मेरा हिब्रू,
कभी कभी बहुत ही बहरा।

मेल : kjrajesh@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोरोना काल में गाँव गांधी और वाम दक्षिण वगैरह..

महेश कटारे
(सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, कथाकार व नाटककार)

किसी ने कब सोचा था कि ऐसा समय भी आयेगा। जी हाँ..औरों की तो क्या कहें परम ज्योतिषियों और चरम विज्ञानवादियों को भी यह अनुमान न था कि परखनली से कोई नाम, रूप, गुणहीन या अव्यक्त रिसकर बाहर आयेगा और अपनी संहारक क्षमता से संसार को धमकाने वाले अपने-अपने पी. पी. ई. खोलों में छिपते दिखेंगे। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जब अपने वैज्ञानिक खिलौनों पर अहंकार करने वाला आदमी चाँद पर हनीमून मनाने की योजना बना रहा है... मंगल को अपना उपनिवेश बनाने के उद्यम में है, तब वह एक विषाणु के बारे में लगभग तीन सौ दिनों में भी कुछ निश्चित पता नहीं कर पाया है। यह कोरोना 'अंधों का हाथी' बनकर झूम रहा है- कोई इसे सूँड़ बताता है... कोई पैर कोई.....कान, नाक, पूँछ या जो भी कहने सुनने जैसा लगे। बड़ी विषम स्थिति है कि भयंकर सामने घट रहा है पर कैसे? यह पता नहीं चल रहा। कार्य सामने है कारण नदारद। इससे बुरी स्थिति क्या होगी कि आप किसी दुकान, ठिकाने से जिस शिशु के लिए दूध लेकर आते हैं और वही शिशु जब बाहें पसार किलकता हुआ आपकी ओर दौड़ता है तो आप दूर... दूर चिल्लाते हुए उससे बचते फिरते हैं। कोरोना एक ऐसा भय है जो जितना अपने लिए है उससे अधिक अपनों के लिए है।

मैंने देखा और जाना है कि इस बीमारी से अधिक भय उस तनहाई (कोरेन्टाइन) का है जहाँ संभवत: आप गर्मी, उमस, बदबू, और मच्छरों के बीच पटक दिये जायें और खाना तो छोड़िये पीने को स्वच्छ पानी और चाय तक न मिले। फिर वह भोजन जो संदिग्धों अथवा संभावितों को दिया जाता है। मैंने उसे बनते देखा है... ठीक उसी तरह जैसे हमारे यहाँ शादी ब्याह या अन्य भोज के अवसरों पर बनाया जाता है-यहाँ दस्ताने, मुसीके (मास्क) बाँधकर काम नहीं होता...। फौजों की दाल घर के चूल्हों पर नहीं पकती। भारत इतना छोटा और मशीनीकृत नहीं है कि खाने, रहने, पहनने की हर वस्तु पर प्रामाणिकता की मुहर लगाई जा सके। फिर प्रामाणिकता कितनी प्रामाणिक होती है यह चीन से आई पी. पी. ई. किट ने प्रमाणित किया। खबरें चलीं कि उनमें से एक तिहाई से अधिक लौटाई गईं...। 63000 सही नहीं या नकली निकलीं। चीन की एक हिंसक बेशर्मी यह भी दिखी कि इटली ने जो पी. पी. ई. किट चीन की सदाशयता में मुफ्त भेजे थे, वही चीन ने इटली में पैसे लेकर बेचे। आशय यह कि कोरोना नाम के अदृश्य, अज्ञात कल्पनातीत प्रतीत होते किसी विलक्षण विषाणु ने मानवता के अनेक मुखौटे उघाड़कर रख दिये हैं और नौबत लगभग वही आ बनी है जिसके बारे में हमारे एक कवि ने कभी सोचा था-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और अगर मर जाइये तो नौहारूवां कोई न हो।।

नौहारूवां-रोने वाला

आज यही हालात है कि हर कोई एक दूसरे से बचता फिर रहा है। संदिग्ध हुए तो 'ऐसी तन्हाई कि ज़बाव नहीं'। लोग उस मुहल्ले से भी बचकर गुजरें, और बीमार पड़ गये तो तीमारदार न मिले तथा मरने पर रोने वाले भी नसीब न हों। पत्नी अपने पति को छू नहीं सकती... बस मुहँ पर माक्स कसे, सिर से पैर तक किट में फँसी कराहती हुई - सिसक रही है... छह फिट की दूरी से बच्चे बाप का मुँह देख नहीं सकते। बाप, माँ अपने बेटे, बेटी की देह पर हाथ नहीं फेर सकते। अंतिम संस्कार भी अजनबी हाथों से होते हैं। सो भी निरापद नहीं है। ऐसे कठिन समय में भी 'धर्म खतरे में पड़ने' के सवाल उठ जाते हैं। सियासत सिर उठाने लगती है।

अंतिम संस्कार का ठेका लेने वाली अब बाकायदा कम्पनी बन गई है। (खुदा न करे कि पैदा करने के भी ठेके होने लगें। मैने नवें दशक में 'अनुबंधित' नाम से एक कहानी लिखी थी जिसमें एक व्यक्ति अनुबंध के तहत वीर्य देता या बेचता है। आकस्मिक आवश्यकता से आंरभ हुआ यह उपक्रम ही उसकी आजीविका बन गया है।) अमानुषिकता की हद यह कि कुछ लोग अपने परिजन का शव अस्पताल में छोड़कर भाग रहे है। अंतिम संस्कार के लिए एन. ओ. सी. पर हस्ताक्षर करने भी नहीं पहुँचतें कि लाश उनके सिर न मढ़ दी जावे। कोरोना मरीजों को ही नहीं रिश्तों को भी मार रहा है।

आइये अब गाँव की ओर चलें क्योंकि गाँव खेतों, बसाहटों, पशुओं और जातियों से नहीं रिश्तों से बनता है। कुछ पढ़े -लिखों को शायद इस पर हँसी आये कि एक पीढ़ी पहले गाँवों में आदमी तो क्या पशुओं से भी रिश्ते थे- गाय तो माँ थी ही, भैंस को काकी कह दिया जाता था... बकरी चाची थी... बैल किसी के लिए भैया था किसी के लिए बेटा। यह सच है गाँव में गाँव आज भी इसीलिए बचा है कि वहाँ रिश्ते कमोबेश आज भी बचे हुए हैं। जाति और संप्रदाय भी इन रिश्तों को नहीं भेद पाते। ये रिश्ते तनावपूर्ण भले बने हों.... पंचायत तथा अन्य स्थानीय चुनावों के समय तो टूटने की हद तक पहुँच जाते हैं, पर बचे हुए हैं। कोरोना इसमें भी घुसपैठ कर रहा है- आंरभ में सरकारी

आइये अब गाँव की ओर चलें क्योंकि गाँव खेतों, बसावटों, पशुओं और जातियों से नहीं रिश्तों से बनता है। कुछ पढ़े-लिखों को शायद इस पर हँसी आये कि एक पीढ़ी पहले गाँवों में आदमी तो क्या पशुओं से भी रिश्ते थे- गाय तो माँ थी ही, भैंस को काकी कह दिया जाता था... बकरी चाची थी... बैल किसी के लिए भैया था किसी के लिए बेटा। यह सच है गाँव में गाँव आज भी इसीलिए बचा है कि वहाँ रिश्ते कमोबेश आज भी बचे हुए हैं।

आदेश था कि चार आदमी एक स्थान पर एकत्र न हों... निश्चित दूरी बनाये रखें। इस निश्चित दूरी से अर्थी या जनाजा तो नहीं उठाया जा सकता। गाँव की समझ में यह बात नहीं घुसती कि वर वधू दोनों पक्ष के मात्र दस जनों के बीच विवाह कैसे संपन्न हो सकता है। शहरों की बात और है, वहाँ तो मोबाइल पर ही एक दूसरे को कबूल करने की खबर भी दिखी थी और लिव इन तो है ही पर गाँव में जीना मरना अभी भी रिश्तों के बिना नहीं हो पाता।

कोरोना का हल्ला था कहें कि आक्रमण आंरभ होने के दिनों में गाँवों में रबी फसल की छिटपुट कटाई शुरू हो गई थी तो वहाँ कटाई की तैयारियों, जरूरतों की चर्चा थी कि 22 मार्च को जनता कर्फ्यू घोषित हुआ और हर अख़बार, चैनल हजार मुँह से चिल्ला उठा- सावधान! केरोना आ गया। दूर रहो दूर-दूर रहो। इतिहास की यह पहली बीमारी थी कोविड -19 जिसके विषाणु कहीं से भी आक्रमण कर सकते थे... स्पर्श, साँस, भोजन, पानी,....द्वार, देहरी, वाहन, वस्त्र। अभी लोग भयभीत न हुए थे- कर्फ्यू बड़े उत्साह से मनाया गया। जनता को धन्यवाद देने के लिए प्रधानमंत्री महोदय इस सिलसिले में दूसरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बार 'अपनी बात' अपनी बात कहने आये और महाभारत जैसे -युद्ध का आह्वान कर इक्कीस दिन का कर्फ्यू जैसा 'टोटल लाकडाउन' माँग लिया। शहरों ने ये भी मान लिया क्योंकि मृत्यु का भय धीरे-धीरे घर करने लगा था। डर को भगाने के लिए दीप जले...थालियाँ घण्टियाँ शंख बजे। गाँवों में यह इक्का दुक्का हुआ क्योंकि एक तो गाँव में बालकनियाँ नहीं होतीं दूसरे पाँच बजे पाँच मिनट या सात बजे सात मिनट जैसा निश्चित बँधा हुआ समय किसान के पास नहीं होता.... वह कभी घर पर होता है , कभी खेत, खलिहान या मार्ग में। सच है कि हारी-बीमारी, त्यौहार मेलों के लिए वह भी समय निकालता है पर जब आसमान पर बादल घिर-घिर आर रहे हों और नीचे खेतों में साल भर की मेहनत, लागत पकी खड़ी हो तो बिना मरे ही स्वर्ग नरक सब दिखने लगते हैं। यद्यपि गाँवों में थालियाँ, टीन, कनस्तर, ढोल, ताशे पीट-पीटकर कर शंख बजा-बजाकर रोग भगाने का प्रचलन आदिकाल से ही रहा होगा। हमारे यहाँ इसे 'हंकारा' कहते हैं। बचपन में उत्साहपूर्वक मैं भी इसमें अनेक बार शामिल हुआ हूँ तथा खुरपका, गलसूजा, घांसनी, फसूकरा जैसी बीमारियाँ भगाई हैं। ये हमारे पशु-परिवार की बीमारियाँ थीं। बाद में समझ आया कि यह अंधविश्वास है, हाँ बीमारी या रोग को खदेड़ने की भोली सांत्वना अवश्य मिल जाती है। तो शहर का कर्फ्यू गाँव में नहीं मनाया जा सका। वहाँ मनाया भी नहीं जा सकता... खेत खलिहान कोई दुकान दफ्तर नहीं है जिनमें ताला डाल दिया जावे। हाँ, शहर और कस्बों के आने-जाने के मार्ग बंद थे... पुलिस मुस्तैद थी। गाँव अब पहले की भाँति आत्मनिर्भर नहीं हैं कि खेती की जरूरत के सभी औजार, उपकरण गाँव में ही बन जायें और टूट-फूट पर संवर जायें। लुहार, बढ़ई की कारीगरी, मशीनीकरण ने निगल ली है- ट्रै क्टर, थ्रैसर, कम्पान... सभी के पुर्जे, ईधन शहर में मिलते हैं। बात-बात पर शहर की ओर भागना होता है। 30-40 कि. मी. की दूरी अब नहीं रही। दूध, सब्जी, जिंस, इधर से जाना... दवा दैनंदिन उपयोग की वस्तुऐं उधर शहर से लाना। शहर अब गाँव के लिए जरूरी हो गया है। गांधी जी जिस आत्मनिर्भर गाँव की कल्पना करते थे, वह अब सिर्फ कल्पना (फैन्टेसी) जैसा लगता है, पर जाने क्यों इन लॉक डाउन के दिनों में गांधी का गाँव बार-बार याद आता रहा। लोग ट्रेक्टर थ्रेसर की जगह अपने बैल, बखर, बैलगाड़ी, दांवनी आदि का स्मरण करने लगे थे जिसके लिए बाहर किसी का मुँह तो नहीं देखना पड़ता था। याद आये वे नाड़ी वैद्य जो नीम, गिलोय आदि के काढ़े से इम्युनिटी बढ़ाकर रोगों से लड़ने की क्षमता पैदा करते थे। यहाँ तो डॉक्टर अपनी दुकानें बीमारों के लिए बंद करके बैठ गये। लाखों लोगों को अपनी परंपरागत बीमारियाँ स्थगन पर रखकर भगवान भरोसे यथास्थिति बनाये रखने के लिए विवश होना पड़ा। सरकारी अस्पतालों के चिकित्सकों, स्वास्थ्यकर्मियों, सहयोगियों को सलाम करते हुए मैं कहना चाहूँगा कि मैंने दुकानदार डॉक्टरों को रोगियों से अधिक भयभीत देखा है। फीस के नोट तो सैनेटाइज कर संभाले रहे है पर मरीज को छह फीट की दूरी से देखा जा रहा है।

यह एक प्रामाणिक सच है कि लगभग सारी बीमारी, महामारियाँ शहरों से ही गाँवों की ओर जाती हैं। कोरोना के साथ भाषा में कुछ नये शब्द भी आ पहुँचे थे- कोरेन्टाइन, कोविड, पी. पी. ई, मास्क, सोशल डिस्टेंस। ये शब्द बातचीत , हास-परिहास में भी प्रयुक्त होने लगे थे। गाँव में अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी पहुँच चुका है और किसी न किसी रूप में अख़बार भी...। तो शहरों से जुड़े किसी भी गाँव में पागल और प्रमादी को छोड़ कोई भी बता देगा कि कोरोना नामक विषाणु चीन से चला और आसमानी मार्ग से सारी दुनिया में फैल गया। हिन्दी चीनी भाई-भाई का नारा लगाते हुए बुद्ध के पंचशील को माओ तथा चाऊ एन लाई ने जिस बेशर्मी के साथ चिन्दी-चिन्दी किया.... भारत के लोग उसे भूले नहीं है...। यहाँ उसे सर्वभक्षी, अविश्वसनीय माना जाता है- इतना कि यदि कोई तर्कपूर्ण ढंग से भी चीन की किसी बात पर प्रशंसा कर दे तो उस व्यक्ति को संदेह से देखा जाने लगता है। 15 जून, 2020 की घटना ने चीन के प्रति अविश्वास को और गहरा किया है। इस घटना के दूरगामी परिणाम होंगे। चूँकि इलेक्ट्रानिक मीडिया की पहुँच गाँव तक है तो इस मूढ़ मीडिया की सत्ता के चरण चुंबन वाली वृत्ति ने अनेक काल्पनिक युद्ध और उसके परिणाम जनता के सामने परोस दिये हैं। सीमा पर रक्तपात ने कोरोना का शोर कुछ धीमा किया है... सावधानी भी। कोरोना पीड़ितों की संख्या बढ़ रही है पर जाने क्या है कि महानगरों से गाँव लौटे श्रमिकों में संक्रमित व्यक्तियों की मृत्युदर कम से कम है। जितनी संख्या में रास्ते में भूख प्यास और त्रास से मर गये, उतने कोरोना नहीं मार पाया। मेरे अपने गाँव में 297 स्त्री पुरुष दिल्ली, पूना, मुंबई, अहमदाबाद आदि से लौटे। जब तक लोग आते रहे भय और आशंका सिर पर मँडराती रही....। 3 पॉजीटिव भी निकल आये...गाँव रेड जोन में आ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहुँचा.....यही स्थिति पड़ोसी और कुछ दूर के गाँवों की थी। लगभग बीस दिन से आने वाले बंद है.....पॉजीटिव ठीक होकर आ गये हैं। शहरों से खाँसी, जुकाम, बुखार के लक्षण लिये गाँव लौटे सैकड़ों लोग काढ़े वगैरह या छिटपुट गोली कैप्सूल से ठीक होकर घूम फिर या काम कर रहे हैं। अर्थ तो शायद यही निकलता है कि जो शारीरिक श्रम नहीं करते, उन्हें ही यह महामारी आसानी से चपेटती है।

इस समय गाँव ही है जिसमें मृत्यु के भय से विचलित इंडिया और देश की बहती अर्थ व्यवस्था को थामे रखा है- मेक इन इडिया, स्किल इंडिया और जाने कौन-कौन से इंडिया ठप पड़े हैं तब गाँव ही हैं जिन्होंने भरपूर अनाज, दाल, तिलहन और जिंसें पैदा की हैं। उद्योगों पूँजीपतियों के पैरोकार जो रियासतें माँगते नहीं थकते- वे जो खेती किसानी के लिए जरा सी छूट पर तिनकने लगतें हैं। एक अंग्रेजी स्तंभकार ने तो कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था पर बोझ ही बता दिया था और खेती किसानों पर मिलने वाली छोटी-छोटी सहूलियतें भी समेट लेने की सरकार को सलाह दे डाली थी। किसान ऐसे अंग्रेजों की बात सुनता है....। जानता है कि खेती अब लाभ का सौदा नहीं रही। उसके बच्चे खेत बेचकर सरकार के चपरासी बनने दौड़ रहे हैं...क्योंकि एक चपरासी की आय सुनिश्चित है तथा अच्छे खासे किसान से ज्यादा है तथा सुविधाजनक है।...पर फिर भी जाने क्या बात है कि वह तथा उसकी पीढ़ियाँ खेती में खपती चली जा रही है। गाँव खेती की छलना में भरमता चला आ रहा है। तुलसीदास ने विनयपत्रिका में अपने लिए जो कहा था, वे पंक्तियाँ गाँव पर भी मौजू बैठती हैं-

'मेहि मूढ़ मन बहुत बिगोयौ।' *बिगोयौ-छलना, भरमाना*

या के लिए सुनहु करुणामय मैं जंग जनमि-जनमि दुखा रोयौ,
डासत ही गई बीति निशा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयौ।

(किसान का किसानी पर निर्भर परिवार और समाज का सारा जीवन बिछाते ही बिछाते बीत जाता है कभी चैन की नींद नहीं सो पाता।)

चैन से नींद पाने की आशा में लाखों, गाँवों से शहरों, महानगरों की ओर दौड़े करोड़ों लोग अब फिर से गाँवों में लौट आये हैं और इन लौटे हुओं में कोई अभागा ही होगा जो रात को भूखा सो रहा हो। पर यह स्थिति स्थाई नहीं है। अगली अर्थात् खरीफ की फसल दिसंबर तक आएगी। उसके पहले खाद बीज, ईधन, औजार छाजन मरम्मत, खुराक के मसले सामने खड़े हैं। पढ़ाई और दवाई दो मद तो ऐसे हैं जिसमें आधी से अधिक कमाई चली जाती है। कुछ ही महीनों में गाँव की आर्थिकी में ये लौटे हुए परिवार अतिरिक्त महसूस होने लगेंगे... सामाजिकी प्रभावित होगी और स्थानीय राजनीति भी। शहरों से लौटे लोग वे नहीं रहे जो यहाँ से गये थे। सबसे बड़ा मुद्दा इनके रोजगार का है। गाँव या भारत तो लाकॅडाउन में भी चल रहा था, अब भी चल रहा है। 21 दिन में कोरोना को युद्ध में हराने वाले स्वर अब बदल गये कि - कोरोना के साथ जीना सीखना पड़ेगा क्योंकि 'इंडिया' को अधिक समय तक स्थगित नहीं रखा जा सकता। शादी ब्याह, प्रार्थना, नमाज के लिए सीमित छूट मिली है तो बी. सी. सी. आई. क्रिकेट कराने को कमर कस रहा है। क्रिकेट ऐसा खेल है जिसमें कुंठा भी निकल जाती है और क्रोध भी। पाकिस्तान के भद्रजन कारगिल की हार पर उतने निराश नहीं हुए थे जितने 'इंडिया के हाथों उन्हीं दिनों क्रिकेट में पराजय पर। उन्होंने अपने खिलाड़ियों का स्वागत काले झण्डो और कटूक्तियों से किया था।' तो इंडिया में आई. पी. एल. की तैयारियाँ आरंभ हो गई हैं। इससे एक बड़ा लाभ यह भी होता है कि मुखर वर्ग क्रिकेट के बुखार और खुमार में डूब जाता है। अंग्रेजी तथा उसका अहसानमंद भारतीय भाषाओं के मीडिया का ध्यान ज्वलंत मुद्दों से क्रिकेट की हार जीत, दांव पेंच, गति-प्रगति, दुर्गति की ओर मुड़ जाता है। सत्ताधीश कुछ दिन निरापद होकर विकास पर ध्यान दे लेते हैं। क्रिकेट से इतिहास आगे बढ़ने लगता है। कुछ दशकों से इतिहास बनने- बिगड़ने की सारी जिम्मेदारी किक्रेट के कंधों पर आ पहुँची है। सब इतिहास क्रिकेट मैदान पर ही रचे जाते हैं। किस महान ने गेंद पर कितनी बार थूक लगाया, पिछले भाग पर कैसे घिसा, पसीना पोंछा, पादा, मिसमिसाया, गालियाँ दीं। रनक्षेत्र में कहाँ किसको धुना या शर्मनाक हार खाकर लौटे... कब का बदला कहाँ लिया गया...इस इतिहास से भी इंडिया परिचित होता रहता है। अपनी इंडिया में करोड़ों की संख्या में ऐसी तरुण युवा पीढ़ी है जो अपने परिवार वाले चाचा ताऊओं के नाम नहीं जानतीं पर दसों देशों की क्रिकेट टीम के खिलाड़ियों को एक सांस में गिना देगी। भारत का कोई चिंतक रत्न, विभूषण नहीं बन पाया पर यह तो स्पष्ट है कि आई. पी. एल. एक सभ्यतापूर्ण जुआ है, जो बीमारी की तरह यह इंडिया भी गाँवों में घुस आया है.... सो भी अपने पूरे प्रकट लक्षणों के साथ। इसकी जरूरतें जमीनी सतह से ऊँची हैं। यूज एण्ड थ्रो की संस्कृति का स्वाद चख चुका गाँव का एक अंश पपड़ाये होठों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर जीभ फेरता हुआ शहर की ओर ताकता है। इसकी आँखों में रातोंरात करोड़पति बनने और 'कर लो दुनिया मुट्ठी में' का सपना आ पहुँचा है। इसके लिए वह कुछ भी करने को जायज समझने लगा है। यह कहावत है कि- प्रेम और युद्ध में सब जायज है' (निश्चय ही यह भारतीय कहावत नहीं है) इसी तर्ज पर चल पड़ा है कि 'सत्ता और धन के लिए सब जायज है'। विंडबना यह है कि सामान्य भारतीय-जन भी इस विषाक्त अवधारणा को स्वीकार करने लगा है। सही है कि संसार भर में कोरोना विषाणु से फैली महामारी का भय है... इससे लड़ने के युद्ध स्तरीय प्रयास हैं पर इस महामारी में भी राजनीति आ घुसी है... लोभ ने अपने जबड़े खोल लिये हैं... एक नहीं अनेक हैं जो इस आपदा को अवसर की तरह इस्तेमाल कर रहे अथवा करने की तैयारी में हैं।

यूँ तो दुनिया दहशत में काम करने वाली हो गई है। भाँति-भाँति की दहशतें आधे से अधिक परमाणु बम के बटन तानाशहों के हाथ में हैं, जाने कौन कब सनक जाय। कभी किसी गृह का कोई खण्ड तेजी से पृथ्वी की ओर आता घोषित हो जाता है। पृथ्वी बार-बार काँपने ही लगी है... समुद्र भी क्रोध में उफनने लगा है। जातिवादी या सांप्रदायिक जिहाद मौसमी फसल है- बोओ और काट लो। घर से बाहर निकलते ही दहशत पीछे लग जाती है कि क्या पता अगले ही क्षण... ? तो भय का अस्तित्व मान्य हो गया है। कोई भी संस्था, मूल्यांकन और निगरानी प्रक्रिया...। यहाँ तक की वैज्ञानिक प्रक्रिया भी सत्ता, सियासत, और धन के प्रभावों से अछूती नहीं रही। विचारधारा भी.... विचारधारा पर विचार करें तो साहित्य और समाज में एक तो वे हैं जो अपनी विचारधारा पर दृढ़ हैं और एक स्तर तक जड़ भी। दूसरे विचार को मानते है और धारा से धड़कते हैं तीसरे कभी धारा के साथ होते हैं कभी विचार के। कभी किसी के नहीं। चौथे निरपेक्ष हैं। गाँव के संदर्भ में हमें सबसे पहले गांधी स्मरण हो आते हैं क्योंकि उन्होंने 'लोक-सेवक संघ' की विचारणा के अधीन ग्राम स्वराज्य व आत्मनिर्भर ग्राम की परिकल्पना में यह बताया था- गाँव इस तरह संगठित हों कि वे अपनी खेती और गृह उद्योगों द्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलंबी बनें। इसी के अंतर्गत वह सफाई और तंदुरुस्ती की तालीम (स्वास्थ्य शिक्षा) का जिक्र करते हैं कि - "बीमारी व रोगों को रोकने के लिए वह सारे उपाय काम में लायेगा व हिन्दुस्तानी तालीम संघ की नीति के मुताबिक नई तालीम के आधार पर गाँव वालों की पैदा होने से मरने तक सारी शिक्षा का प्रबंध करेगा"।

आत्मनिर्भर गाँव के लिए गांधी जी ने 'लोक सेवक' (चुना हुआ प्रतिनिधि) में उच्चतर नैतिक मूल्यों की अपेक्षा की थी प्रमुख गुण था- "स्वसुख निरभिलाष खिद्यसे लोकहेतो" अर्थात् अपने सुख की इच्छा (ही) न करे और लोक के हित में पीड़ सहे।

कठिनाई यह है कि पंचायती राज के रूप में जिस व्यवस्था को बार-बार सुदृढ़ करने का प्रचार होता है वह भ्रष्टाचार का प्राथमिक श्रोत बन गई है। सरपंच या प्रधान बनने के लिए जिस प्रकार धन बहाया जाता है... जैसे हथकण्डे अपनाये जाते हैं.... उन्हें देख व जान कर लोक व तंत्र दोनों से भरोसा टूट जाता है। अभी कोरोना काल में भी सरपंचों ने आपदा को अवसर में बदल लिया। सुविधा व पीड़ितों की सहायता के लिए प्राप्त अधिकांश धन डकार गये। संबधित विभागों के लिए कमीशन तो तय ही है। कभी-कभी तो लगता है कि भ्रष्टाचार हमारे तंत्र का राष्ट्रीय चरित्र हो गया है। गांधी का गाँव आज आदर्श व्यवस्था हो सकता था पर आत्मसुख, आत्मरति और अतिभौतिकता ने गांधी के उस आध्यात्मिक सद्गुण्य को विस्थापित कर दिया है जो अंधकर से प्रकाश की ओर ले जाता है। 'स्वराज' का अर्थ होता है, वह व्यवस्था के 'स्व' को नियंत्रण में रखें। इससें एक तो व्यक्ति स्वयं को नियंत्रित करे.... दूसरे समाज विशेषतः बहुसंख्य समाज इस प्रकार स्वनियंत्रित हों कि अल्पसंख्यक समाज पर हिंसात्मक न हो। उच्चतर भाव बिना यह स्थिति नहीं पाई जा सकती। 'रामराज्य' गांधी जी की आर्दश कल्पना है जो ग्राम स्वराज में आत्मनिर्भर लोकसत्ता की नींव पर खड़ी होती है।

दूसरा एक विचार मार्क्सवादी व्यवस्था का है। जिसमें जनतंत्र या राज-व्यवस्था का कथन इस प्रकार है-

"Democracy is the state recognizing the subordimation of the minority to the majority."

(Soviet Philosophy p. 04)

लेनिन ने इसे यूँ स्पष्ट किया है- "हम समाज की उस व्यवस्था की आशा नहीं करते जिसमें बहुसंख्या के अधीन अल्पसंख्यक वाला सिद्धांत कार्यान्वित न हो। समाजवादी व्यवस्था के लिए कोशिश करते-करते कि वह समाज-व्यवस्था कम्युनिज्म में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिष्कृत हो जायेगी और इसी के साथ ही साथ जबरन करने को एवं एक आदमी को दूसरे के वश में तथा जनसंख्या के एक भाग को दूसरे भाग के अधीन रखने की कोई आवश्यकता ही न रह जायेगी।'' *(वही-सो. फि. पृ. 43)*

यह सही है कि साम्य एक उच्चतर भाव है... उच्चकोटि का आदर्श भी। ''साम्य का सीधा-सादा भाव तथा अर्थ यह हुआ कि वह समानता जो शांतिदायक है। ऐसी स्थिति जो शांति और सुख की स्थापना करे।'' भारतीय साम्यवादी (नेतृत्व) के साथ यह दिक्कत है कि वह भावार्थ को अंग्रेजी खाँचें में ग्रहण करता है। संस्कृत, हिन्दी, शब्द और भाव (वर्ण और अर्थ) सामने आने पर उसकी भोंहें सिकुड़ जाती हैं। उसमें उसे हिन्दूवाद का चेहरा नजर आने लगता हे। अंग्रेजी विचार, शब्द, व्याख्या उसे आधुनिक व धर्मनिरक्षेप दिखाई देती है। ऐसी ही खुन्नस में कुछ लोग डॉ. रामविलास शर्मा पर लट्ठ तानकर खड़े हो गये थे। जबकि 'साम्य' में 'मैं' (पन) और 'अहं' (कार) का भाव विलुप्त होता है... होना चाहिए।

कोरोना काल में शहर, शहरपना ठण्डा और भयग्रस्त हुआ है...गाँव नहीं। वहाँ के सभी कार्यकलाप आज भी चल रहे हैं। कोरोना से अधिक दीन, ग्रस्त व अवसाद ग्रस्त वह अकाल, सूखा, बाढ़, ओला, पाला के बाद होते देखा जाता है और ये आपदाएँ उसे हर दूसरे तीसरे वर्ष झेलती पड़ती हैं किंतु अब वह चूँकि अधिकाधिक शहर पर निर्भर होता जा रहा है... मूलभूत आवश्यकताओं के लिए नहीं.... उन इच्छाओं के परिणामों के कारण जो शहर ने उसे दीं और उसकी जरूरतों में शामिल कर दीं।

मेरा अब तक का अनुभव है कि शहर कुछ भी पैदा नहीं करता-न अन्न, न पानी, न खनिज, वनस्पति यहाँ तक कि मिट्टी पत्थर भी नहीं। वह शासन और व्यवस्था के साथ बिचौलिए की भूमिका निभाता है...विडंबना यह है कि सत्ता तो सिटी को भी 'स्मार्ट सिटी' बनाने को तत्पर है....। ठीक है, पर इसके लिए आधारभूत पानी, बिजली, मिट्टी ईधन आदि की पूर्ति कहाँ से होगी ? वैसे ही शहर गाँवों को निगलते जा रहे हैं। नदियों में शहर इतना मल, प्रदूषण छोड़ रहे हैं कि पीना तो दूर उस पानी में आचमन भी नहीं हो सकता। धरती का पानी ट्यूबबैल से सोख लिया... अब सिर्फ हिमालय बचा है... वहाँ भी बर्फ कम होती जा रही है। रही हवा सो सभी जानते हैं कि महीनों तक राजधानी प्रदूषण के उस सार पर आ खड़ी होती है जिसमें सांस लेना दूभर होता है। अमूमन एक शहर सौ गाँव तथा महानगर पाँच सौ से अधिक गाँवों की आपूर्ति के प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग कर डालता है। इनमें मैट्रोसिटी शामिल नहीं हैं शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे लोकहितकारी उपक्रम यहीं संकेन्द्रित होने से सारी सुविधाओं के मुख शहर की ओर मुड़ जाते हैं तो गाँव शहर का मुखापेक्षी, नकलची हो जाता है। उसकी आत्मनिर्भरता शहर में गिरवी हो जाती है।

गांधी के विचारों में ग्राम केन्द्रीयता है। यहाँ क्रांति का अर्थ है- मनुष्य के जीवन कर्म और विचार में परहित के लिए परिवर्तन। यह क्रांति खूनी नहीं, सत्य और अंहिसा पर आधारित होगी। बंदूक की नली से निकलने वाली सत्ता को गांधी की विचारधारा सिरे से अमान्य करती है। यद्यपि अधिकांश मार्क्सवादी गांधी तथा उनकी अनूभूत विचार तथा कर्म शैली को उपहास तथा आलोचना की दृष्टि से देखते रहे हैं उसमें एक प्रमुख कारण उनका धर्म है। 'धर्म' एक व्यापक शब्द है। कुछ आधुनिकता वादी इसे रूढ़िवादी अर्थ में ग्रहण करते हैं तथा अंधविश्वासी इसे ईश्वरीय आराधना वा आध्यात्मिकता में सीमित कर लेते हैं। कहीं-कहीं इसे जाति, संप्रदाय और देश के साथ जोड़ लिया जाता है यथा- जाति धर्म, कुलधर्म, मजहब/पंथ और राष्ट्रधर्म आदि गांधी जी इसे बहुधा कर्म शब्द का पर्यायवाची मानते और चलते थे।

धर्म शब्द को गाँव में संदर्भ में इसीलिए बीच में लाना पड़ा कि पूरा भारत, विशेष गाँव में बसने वाला हर व्यक्ति और समाज इबादत पसंद है। इस इबादत या ईश्वरीय प्रार्थना से विश्व के सहारे उसने इतिहास की अनेक खाइयाँ पार की हैं। धर्म किन्हीं संदर्भो में बेशक अफीम हो किन्तु बुरे दिनों में दवा बनकर मरने से भी बचाता है। अस्तु शांति और सुख के लिए गांधी हों या मार्क्स दोनों की विचारधारा इस उत्कट इच्छा की उपज थी कि समाज का संचालन बिना किसी भय, दण्ड या संभव हो तो बिना राजसत्ता के होता रहे। लक्ष्य के प्रति दोनों में समानता है... दोनों सत्य के आग्रही हैं पर उनकी साधनायें भिन्न हो गई हैं। गांधी जी ने तो अपने आदर्श स्वावलंबी ग्राम व्यवस्था पर भरोसे के साथ कहा था कि- हमें अपने आदर्श पर संदेह नहीं करना चाहिए। हम उसे प्राप्त करने में भले असफल रहें, लेकिन उसे प्राप्त करने हेतु प्रयत्न करना कभी बंद नहीं करना चाहिए। हाँफतें भागते संसार के लिए गाँव शायद अब भी संभावना है।

मो. 9425364213

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक तितली मनोहर होगी

कुमार अनुपम

(युवा कवि, कला समीक्षक व संपादक)

''डै ड, एक दूसरे की हत्या करने वाले सैनिक दुनिया की समस्याओं को कैसे हल करते हैं?''

बिल वाटसन, केल्विन एंड हॉब्स, कैटलाग से

''उन्होंने पुराने ज़माने में लिखा था कि देश के लिए किसी का मरना मधुर और उचित है, लेकिन आधुनिक युद्ध में आपके मरने में कुछ भी मधुर नहीं है न ही उचित, आप बिना सही कारण के कुत्ते की मौत मरेंगे।''

अर्नेस्ट हेमिंग्वे

''और जब सभी युद्ध समाप्त हो जाएँगे तब भी एक तितली मनोहर होगी।''

रस्किन बॉन्ड, 'एक लेखक के जीवन के क्षण' से

''मरने के लिए तमाम मुफीद वजहें हैं लेकिन मेरे लिए हत्या के लायक़ कोई भी नहीं, यह तय है।''

– अल्बर्ट डिट्रि च, आर्मी जीई, 'पैसिफिस्ट सहः द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान फ्रैंक डिट्रिच और अल्बर्ट डिट्रि च के पत्र' से।

भारतीय सांस्कृतिक मानस के अभिन्न अंग 'रामायण' और 'महाभारत' हैं, इन दोनों का केंद्रीय विषय युद्ध है। होमर के महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' भी युद्ध केंद्रित ग्रंथ हैं। यह सोचना और मानना आश्चर्यजनक नहीं है कि अनेक प्राचीनतम कालजयी रचनाओं का केंद्रीय विषय युद्ध क्यों हैं। यदि हम प्रारंभ से देखें तो मानव सभ्यता के उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की प्रक्रिया में युद्ध का आलंब रहा है। यानी, युद्ध या संघर्ष मानव समाज में आरंभ से ही रहे हैं, इनके कारण भले कुछ भी रहे हों।

भारत के लोक में यह कहावत प्रचलित है, और सर्वमान्य सी है कि युद्ध तीन कारणों से होता है - जर (धन संपदा), ज़मीन और जोरू यानी स्त्री। अगर हम संसार की महान रचनाओं को देखते हैं तो आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि महाकाव्यों के केंद्रीय विषय वही हैं जो लोक ने बताए थे। भारत और यूनान के आदि महाकाव्यों के केंद्र में स्त्री (सीता, द्रोपदी और लेन) है। पाश्चात्य देशों में जर और ज़मीन काव्य-विषय बने हैं।

यदि हम गंभीरता से देखें तो यह पाते हैं कि दरअसल इन महान रचनाओं का विषय और उद्देश्य समाज में मूल्य व्यवस्था की संरक्षा और मूल्य विरोधी शक्तियों का सर्वनाश ही रहा है। महाभारत में कृष्ण स्पष्ट करते हुए कहते भी हैं कि महाभारत का युद्ध धर्म और अधर्म या पुण्य और पाप के संघर्ष का है। पुण्य को आज की प्रचलित भाषा में मानव-मूल्य और पाप को मानव मूल्यों का पतन कहा जाता है। मानव-मूल्य पर आस्था ही मानवता का वास्तविक लक्षण है जिसे संसार के सभी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महान ग्रंथ समर्थन देते हैं। 'वार एंड पीस' में लियो टॉलस्टाय लिखते हैं कि ''अगर हर कोई अपनी आस्था के लिए लड़ेगा तो कोई युद्ध नहीं होगा।''

अगर इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्र के पन्नों को हम पलटते हैं तो पाते हैं कि मानव इतिहास इच्छा-अनिच्छा से परे केवल मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्ष, महत्त्वाकांक्षाओं और उनकी आपूर्ति के लिए युद्धों का रोमांचकारी वर्णन भर है। मानव सभ्यता के प्रथम चरण से लेकर आज तक का (और आने वाले समय का भी) दौर सत्ता, संघर्ष और वर्चस्व की मनोवृत्ति से प्रभावित रहा है (और आगे भी इसमें बदलाव की गुंजाइश मानवीय विवेक के ही हवाले है)। राजनीतिक चिंतक सैमुएल हटिंगटन का मानना है कि 'मानव सभ्यता दरअसल सभ्यताओं के संघर्ष का ही उत्तरोत्तर परिणाम है।' सभ्यताओं के संघर्ष की ज़मीन में युद्ध के ही बीज रहे हैं। हम यह भी जानते हैं कि यह ज़मीनी और ज़ेहनी दोनों मैदानों में लड़े जाते हैं। सुन त्जु ने 'युद्ध कला' में यह ग़ौर करने लायक़ मशविरा दिया था कि ''शत्रु को बिना लड़े परास्त करना युद्ध की सर्वोत्तम कला है।'' इसलिए यह ध्यान रखना चाहिए कि ज़ेहनी जंग ज़मीनी जंग से किसी हालत में कमज़ोर नहीं होती बल्कि कई बार ज़्यादा असरकारक होती है; जैसा भयादोहन के संदर्भ में तमाम शक्तिसंपन्न देश करते हैं। कौटिल्य की 'विजीगिषु संकल्पना' और 'मंडल सिद्धांत' ही अपने आप में इसका सक्षम उदाहरण है।

युद्ध के बारे में, उसकी विकरालता और विभिन्न सतहों पर होने वाले उसके परिणामों एवं प्रभावों के संबंध में हम समग्रता में कल्पना भी नहीं कर पाते। इसका मुख्य कारण यह है कि हम प्रायोजित इतिहास पर भरोसा कर लेते हैं, पूर्वाग्रह-ग्रस्त विवेचनों को सही मान लेते हैं और सूचना संचार माध्यमों से प्रकाशित/प्रसारित खंड-खंड दृश्यों के सहारे जानकारी का आसरा पालते हैं; इसलिए युद्ध कितना विध्वंसक और मारक है यह हमारे लिए सोचना तक कठिन हो जाता है। ये सभी प्रक्षेपित संसाधन हमारी संवेदना को झंकृत नहीं करते, इसलिए ये हमारी चिंता के अनिवार्य कारण बन ही नहीं पाते। यदि हम इसके बारे में सोचते तो शायद परिदृश्य युद्ध का विलोम भी हो सकता था। अमेरिकन लेखक जॉन स्टीनबेक का यह कटु वाक्य स्वीकारना पड़ता है कि ''हर युद्ध सोचने वाले जानवरनुमा प्राणी की विफलता है।''

जब एक चिंतक, बुद्धिजीवी, साहित्यकार युद्ध के हर पक्ष पर चिंतन करता है और उसे संवेदना के साथ मनुष्यता के पक्ष में लिख कर प्रस्तुत करता है तब हम युद्ध की निरर्थकता को सही तरह से समझ पाते हैं। इस प्रकार, इतिहास, सूचना से अधिक वह शक्ति प्राप्त कर लेता है जो हमारे वर्तमान और भविष्य के फैसलों और निर्माण के लिए विचार करने के लिए बाध्य कर देता है।

जब एक चिंतक, बुद्धिजीवी, साहित्यकार युद्ध के हर पक्ष पर चिंतन करता है और उसे संवेदना के साथ मनुष्यता के पक्ष में लिख कर प्रस्तुत करता है तब हम युद्ध की निरर्थकता को सही तरह से समझ पाते हैं। इस प्रकार, इतिहास, सूचना से अधिक वह शक्ति प्राप्त कर लेता है जो हमारे वर्तमान और भविष्य के फैसलों और निर्माण के लिए विचार करने के लिए बाध्य कर देता है। इस तरह हम एक शांतिपूर्ण कल को देखने की दृष्टि पाने लगते हैं। हमें मार्टिन लूथर किंग जूनियर की घोषणा पर सोचना पड़ता है कि ''शांतिपूर्ण कल (भविष्य) को तराशने के लिए युद्ध एक घटिया छेनी है।''

इतिहास पढ़ने का मतलब गड़े मुर्दे उखाड़ना नहीं होता बल्कि पुराने अनुभवों से वर्तमान और भविष्य को देखना भी है। युद्ध की विभीषिकाएँ हमें चेताती हैं कि हमने क्या-क्या खो दिया है।

'रामायण', 'महाभारत' और होमर के काव्यों में मनुष्य देवों के चिंतन का एक विषय था लेकिन आज मनुष्य खुद के लिए एक जटिल चिंतनीय विषय है, जिसकी ओर उसका ध्यान ही नहीं है। वह अपनी बर्बादी और विनाश का अनुभव दूसरों की दृष्टि से प्राप्त कलात्मक आनंद की तरह ले रहा है, इसलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी यह मुद्दा अधिक संगीन और शोचनीय हो जाता है। यह मनुष्य के बेगानेपन, अप्राकृतिकता और असंवेदनशीलता की अस्वीकार्य हद है कि ये सब उसके अपने ही जीवन से जुड़े जरूरी मुद्दे हैं। वह समाचार माध्यमों में प्रकाशित/प्रसारित युद्ध के दृश्यों को इस तरह देखता है कि जैसे वे बॉलीवुड या हालीवुड की फिल्मों के काल्पनिक दृश्य भर हैं। वह यह भूल जाता है कि प्रसारित युद्ध के दृश्य में चल रही गोलियाँ, बारूद के धमाके, मारे जा रहे लोग, तबाह हो रही जगह आभासी नहीं है बल्कि उसकी अपनी ही पृथ्वी की, अपने जैसे लोगों की मौत का हृदय विदारक दृश्य है। जो आंकड़े मरने वालों और घायलों के बताए/दिखाए जा रहे हैं वे मात्र अंक नहीं हैं बल्कि उन आंकड़ों में आदमियों की भरी-पूरी ज़िंदगी रही है, जो निरंतर तबाह की जा रही है। ''युद्ध उन लोगों के लिए मधुर होता है जिन्होंने कभी युद्ध Ùãëˊç·¤Øæ'' - 'द कैटास्ट्रॉफिक हिस्ट्री ऑफ यू एंड मी' के लेखक ज़ेस रोथेनबर्ग की इस बात से कौन इत्तेफाक न रखेगा; क्योंकि युद्ध में मरने वाले भी संघर्ष करते हैं, वे उन्हें भी अपनी क्षमता के मुताबिक नुकसान पहुँचाते हैं जो मारने आए हैं। दरअसल युद्ध को दोनों पक्षों के सैनिकों-जो कि मनुष्य ही हैं-की क्षति की भी दृष्टि से देखे जाने की बहुत जरूरत है।

युद्ध, एक देश की दूसरे देश के खिलाफ की जाने वाली कूटनीतिक कार्यवाई का परिणाम है, जिसका इकाई आधार प्रस्तोता प्रथमत: और भोक्ता अंतत: मनुष्य ही होता है। यह युद्ध तब होता है जब देश और देश के बीच तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच संवाद समाप्त हो जाता है, समझाने की प्रक्रिया असमर्थ हो जाती है। मार्गरेट एटवुड का भी यही मानना रहा है कि ''युद्ध तब होता है जब भाषा विफल हो जाती है।'' भाषा के विफल होने के बहुलार्थ हैं, हमें इसे विभिन्न स्तरों पर समझने की आवश्यकता है। जब संवाद शक्तिशाली के दबाव में गूँगा हो जाता है तब उसका घातक परिणाम होता है। जब भाषा की शक्ति, उसकी स्पष्टता और ईमानदारी पर से हम विश्वास खो देते हैं तब संवाद की गुंजाइश और उसके असर का फल नहीं मिलता। इसके निहितार्थ पर विचार करने से बेहतर यह होगा कि हम उन दो महायुद्धों पर बात कर लें जिन्होंने मानवता के नैतिक मूल्यों को गहरे तक प्रभावित किया है। मेरा आशय, निस्संदेह, प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध से है।

मैं अपनी बात कुछ सर्वमान्य संस्थाओं की रिपोर्ट्स के सहारे रखूँगा; लेकिन इस निवेदन को पुन: दोहराना चाहूँगा कि आंकड़ों में मरने वाले या घायलों या प्रभावितों को मनुष्य के रूप में आप पहचानें। क्योंकि युद्ध, जीते-जागते मनुष्य की वास्तविकता से, आंकड़ों या संख्याओं में तब्दील करके उनके वस्तुकरण की कोशिश में सिद्धहस्त होता है। 'सैनिक-मनुष्य' दुश्मन को मनुष्य के रूप में पहचानने से ही इनकार कर देता है। वह पराये देश की धरती पर उगे वृक्षों को यह मान लेता है कि ये दुश्मन देश के हैं और इन्हें शायद ही एक मनुष्य ने बीज के रूप में कभी रोपा होगा, खाद-पानी दिया होगा जो दुनिया को साँसें दे रहे हैं। वह पशु-पक्षियों तक पर संदेह करने लगता है जो अपनी पारिस्थितिकी को दुरुस्त रखने के लिए देश की सीमाओं का अतिक्रमण तक करते हैं, अपनी जैविक जरूरत के मद्देनजर एक देश से दूसरे देश में नि:संकोच आते-जाते रहते हैं। 'सैनिक-मनुष्य' उस पर्यावरण में बारूद की गंध घोल देने को आमादा हो जाता है जिसे वह दुश्मन देश का मानता है। दरअसल 'सैनिक-मनुष्य' इस कदर वस्तुकरण का शिकार हो चुका होता है कि इन भावुक-सी बातों से ऊपर उठ चुका होता है। उसकी तर्कणा की शक्ति तमाम तरीकों से हर ली जा चुकी होती है; क्योंकि युद्ध सामान्य तरीके से नहीं होता बल्कि थोपा जाता है। युद्ध हमेशा एक साजिश के तहत लादा जाता है इसके लिए 'सैनिक-मनुष्य' के भीतर वर्ण, जाति, लिंग, धर्म, भाषा, श्रम, अस्मिता और राष्ट्रीयता के आधार पर विद्वेष भरा जाता है। साम्राज्यवादी ताक़तें इस कारसाज़ी में माहिर होती हैं। वे उपर्युक्त आधार पर बँटे हुए समाज को लड़ाती हैं या संकुचित भावना को भड़का कर युद्ध करवाती हैं।

साम्राज्यवाद का आधार हिंसा है। युद्धों का इतिहास यही बताता है कि इसने साम्राज्यवाद को फैलाया है और साम्राज्यवाद का मुख्य उद्देश्य लोगों के श्रम का शोषण, प्राकृतिक संसाधनों की लूट या युद्ध-सामग्री का व्यापार बढ़ाने के लिए युद्ध का आरोपण रहा है। इन ताक़तों ने सौंदर्यबोध की एक हिंसक और विध्वंसकारी अवधारणा की प्रस्तावना की है, जिसे वाल्टर बेंजामिन ने अपने लेख 'कला, युद्ध और फासीवाद' में इथोपियन उपनिवेशीय युद्ध के घोषणा-पत्र के रूप में, मेरीनेती के विचार को उद्धृत करते हुए दर्शाया है; उसे जानना रोचक और चिंतनीय होगा- ''हम भविष्यवादी लोग सत्ताईस सालों से युद्ध के सौंदर्य-विरोधी होने का खिताब देने का विरोध करते रहे हैं... हम तो कहते हैं... युद्ध सुंदर है क्योंकि वह गैस मास्क,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेगाफोन, फ्लेम थ्रोवर और छोटे टैंकों जैसी मशीनों पर मानव का प्रभुत्व स्थापित करता है। युद्ध सुंदर है, क्योंकि यह मानव शरीर के ठोस धातु में बदलने की शुरुआत करता है, युद्ध सुंदर है, क्योंकि यह बंदूक की गोली, गोलाबारी, युद्ध विराम, इज़ व सड़न का सम्मिलित स्वर-संगीत है। युद्ध सुंदर है रेखागणित के कोणों से निर्मित उड़ानों की तरह, जलते गाँवों से सर्पिलाकार ऊपर उठते धुएँ की तरह... और इसी तरह की तमाम चीजों को यह रचता है। भविष्यवाद के कवि और कलाकारो!... युद्ध-सौंदर्यबोध के इन सिद्धांतों को याद रखना ताकि नए साहित्य और नई चित्रकला के प्रति तुम्हारे संघर्ष को उनके द्वारा रोशनी मिल सके।''

मेरी नेती ने युद्ध को महिमामंडित करके कवि और कलाकारों को इसकी महिमा का बखान करने के लिए जिस मंशा के साथ उत्साहित करने की कोशिश की है वह बेहद अमानवीय, अप्राकृतिक और हिंसक है, जिसे कोई भी संवेदनशील व्यक्ति आसानी से पहचान सकता है। साम्राज्यवादी ताक़तें इन जैसे तर्कों से ही मनुष्य के वस्तुकरण का प्रयास करती हैं, प्रभुत्व का झूठा दंभ भरती हैं और नृशंसता के लिए उकसाती हैं। साम्राज्यवाद हिंसा और नृशंसता की ज़मीन पर ही फलता फूलता है, उक्त वक्तव्य इस बात की पुष्टि के लिए शायद पर्याप्त है।

हमें पता है कि तीन सौ ईसा पूर्व चीन के जी हॉन्ग ने बारूद की खोज की थी और तब से चीन ने पहली बार अंग्रेजों और फ्रांस की सेना को बारूद बेचना शुरू किया था। आज स्थिति इस विकटता को प्राप्त हो चुकी है कि अपने ही बनाए बारूद के ढेर पर यह दुनिया बैठी हुई है, जहाँ आग की बस एक चिंगारी के पहुँचने की देर है।

आज रक्षात्मक शस्त्रों का निर्माण परमाणु खतरे तक जा पहुँचा है। हमें इसी पृथ्वी पर, इसी दुनिया में हुए दो विश्व युद्धों की विभीषिका को भूलना नहीं चाहिए।

पहले विश्व युद्ध ने पूरी दुनिया को तमाम स्तरों पर प्रभावित किया था। उस युद्ध में लगभग एक करोड़ लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी थी। दोगुने लोग गंभीर रूप से हताहत हुए थे। मरने वाले या बीमारी से ग्रस्त या अपाहिज होने वाले लोग उस उम्र के थे जब जीवन को व्यक्ति सक्रिय तरीके से अपनी युवावस्था के रोमांच के साथ जीना शुरू करता है। वे युवा अपने यौवन के जीवन का आनंद लेने के लिए हमेशा के लिए वंचित कर दिए गए। हर्बर्ट हूवर ठीक ही कहते हैं कि ''बूढ़े युद्ध की घोषणा करते हैं लेकिन युवाओं को लड़ना और मरना होता है।'' इस महायुद्ध में युवा शक्ति का इतना बड़ा विनाश पहले कभी न हुआ था। पूरे विश्व ने इस नुकसान को झेला। इसका यूरोप पर भारी असर पड़ा। वहाँ सक्षम शरीर वालों की बहुत कमी हो गई और परिवार में आमदनी का ज़रिया बेहद सिमट गया। तमाम कल-कारखाने कामगारों की कमी के चलते बंद होते गए। युद्ध में पुरुषों को लड़ने जाने के लिए मजबूर होना पड़ा था इसलिए श्रमिक के रूप में कुछ हद तक महिलाओं को अपना पारंपरिक जीवन छोड़कर कारखानों में काम करना पड़ा। इस अचानक आपदा में अप्रशिक्षित, अल्प प्रशिक्षित महिलाओं ने काम सँभालने की कोशिश तो की लेकिन इससे देश की और उनकी अपनी आर्थिक स्थिति में कोई ख़ास सुधार नहीं हो सका।

ब्रिटेन को अमेरिका से कर्ज लेने के लिए मजबूर होना पड़ा कि वह युद्ध का खर्च उठा सके। इसी तरह तमाम यूरोपीय देशों को अमेरिका से कर्ज लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसका ख़तरनाक परिणाम यह हुआ कि अमेरिका एक अंतर्राष्ट्रीय कर्जदार की जगह चालाक साहूकार बन गया।

एक रिपोर्ट के अनुसार शुरुआती 6 महीने में अमेरिका द्वारा दिए गए कर्ज़ की राशि थी 100 करोड़ डालर। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका ने मित्र राष्ट्रों को लगभग 12 अरब ऋण दिया था। बाद में अमेरिका ने पैंतरा बदल दिया और कई देशों की अर्थव्यवस्था तबाह हो गई। इससे यूरोपीय बैंक मुद्रा और कृषि बुरी तरह प्रभावित हुए। इस आर्थिक मंदी का भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी नुकसानदेह असर हुआ। कालाबाजारी जैसे तत्त्व विश्व की अर्थव्यवस्था में प्रथम विश्वयुद्ध की ही देन माने जाते हैं।

इसी तरह द्वितीय विश्वयुद्ध का भी अनेक स्तरों पर घातक असर पूरी दुनिया ने झेला। द्वितीय विश्वयुद्ध 1939 में शुरू हुआ और 1945 तक चला था। छह वर्षों तक चले इस युद्ध को मानव इतिहास का सर्वाधिक क्रूर, भयानक और विनाशकारी युद्ध माना जाता है। यह महायुद्ध इतना व्यापक और प्रभावकारी था कि इसके साथ ही एक युग का अंत हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध में लगभग 7 करोड़ लोग मारे गए। इस महायुद्ध की विभीषिका से दुनिया का कोई देश बच न सका।

दुनिया ने परमाणु बम की त्रासदी देखी। हिरोशिमा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नागासाकी पर गिराए गए परमाणु बम की घटना ने, नाभिकीय हथियारों की विध्वंसक क्षमता ने दुनिया को झकझोर दिया। परमाणु बम की खोज करने वाले रॉबर्ट ओपेनहाइमर की उक्ति में दुनिया के विनाश की बात पहचानी जा सकती है। उसने दंभ में कहा था कि ''मैं अब दुनिया को तबाह करने के लिए मौत बन चुका हूँ।'' वर्ष 1952 में अमेरिका ने हाइड्रोजन बम का भी परीक्षण कर डाला जो परमाणु बम से भी अनेक गुना अधिक विध्वंसकारी है।

परमाणु बम से संपन्न कई ऐसे देश हैं जिनके बारे में हमेशा आशंका बनी रहती है। तानाशाही के चंगुल में फँसे देश और राजनीतिक अस्थिरता के शिकार देशों से यह खतरा लगातार मँडराता ही रहता है। बढ़ती असुरक्षा के कारण दुनिया के देशों में दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से हथियार जुटाने का आमादापन बढ़ता ही गया है। दुनिया के 9 ऐसे देश हैं जिनके पास परमाणु अस्त्र हैं। दक्षिण एशिया में लगातार परमाणु अस्त्रों का उत्पादन बढ़ता जा रहा है।

शस्त्रीकरण, नि:शस्त्रीकरण और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा का आकलन करने वाली संस्था 'स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट' (सिपरी) की वार्षिकी रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2019 की शुरुआत में दुनिया में परमाणु अस्त्रों की संख्या लगभग 13,865 थी। सिपरी ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि चीन के परमाणु जखीरे में 290 हथियार हैं। पाकिस्तान के परमाणु शस्त्रागार में 150 से 160 हथियार थे। अपने 1750 तैनात परमाणु हथियारों के साथ अमेरिका शीर्ष पर है जिसके पास कुल परमाणु हथियार 5800 हैं, जबकि तैनात 1570 और 6375 परमाणु हथियारों के साथ रूस दूसरे नंबर पर है। ब्रिटेन के पास कुल 215 परमाणु अस्त्र हैं। उत्तर कोरिया ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति के केंद्रीय भाग के रूप में सैन्य परमाणु कार्यक्रम को प्राथमिकता देना जारी रखा है।

सिपरी ने आगाह किया है कि ''तनाव बढ़ता जा रहा है और हथियार नियंत्रण की संभावना धूमिल पड़ रही है।'' इस सबको देखते हुए यह सहज ही समझा जा सकता है कि अगर परमाणु युद्ध हुआ तो दुनिया की तबाही निश्चित है।

खाड़ी युद्ध का अत्याचार पृथ्वी का वायुमंडल भुगत ही रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वाल्टिक सागर में डुबोया गया लगभग 3 लाख टन गोला-बारूद समुद्री जीवन को तहस-नहस कर ही रहा है। वायु प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, पर्यावरणीय प्रदूषण प्रकृति और फसलों की बर्बादी और इससे भी बढ़कर अधिसंख्य जन-हानि के लिए युद्ध ही ज़िम्मेदार है।

वर्ष 1972 में एक नए प्रकार का युद्ध शुरू हुआ- छद्म युद्ध, जिसका एक ख़तरनाक रूप है- आतंकवाद। उस साल म्यूनिख ओलंपिक में अरब उग्रवादियों ने इजराइली खिलाड़ियों की हत्या कर दी थी। इस घटना से आतंकवाद जैसे छद्म युद्ध की शुरुआत मानी जाती है। शीतयुद्ध काल में महाशक्तियों द्वारा गैरराज्यकर्ताओं का एक दूसरे के विरुद्ध सामरिक प्रयोग करने से छद्म युद्ध के रूप में आतंकवाद का जन्म हुआ। आज दुनिया के ऐसे तमाम देश हैं जिनमें आतंकवादी संगठनों को उस देश की सरकार का संरक्षण मिला हुआ है और उन संगठनों को सामरिक हथियार मुहैया कराए जा रहे हैं, जिससे कि वह संगठन दुश्मन देश की सामाजिक स्थिरता को भंग कर सके।

आज आतंकवाद एक वैश्विक समस्या बन गया है। आतंकवाद के कारण दुनिया के तमाम देशों सहित भारत में भी प्रतिदिन जान-माल का भारी नुकसान हो रहा है। युद्ध पर दोनों लड़ने वाले देश काफी ख़र्च करते हैं। युद्ध सामग्री पर अतिरिक्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खर्च तो होता ही है इसमें देश अपने बजट का बड़ा हिस्सा ही खर्च नहीं करते बल्कि कई अन्य आवश्यक मदों पर निर्धारित बजट की राशि की कटौती करके उसे भी युद्ध सामग्री खरीदने और बनाने में खर्च कर डालते हैं। इसका असर सीधे तौर पर देश की अर्थव्यवस्था और जनता पर पड़ता है और देश के सर्वांगीण विकास की धारा बाधित होती है। यदि भारत पड़ोसी मुल्कों से युद्ध का खतरा या आतंकवाद न झेल रहा होता तो रक्षा बजट की राशि का गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, बेरोज़गारी जैसी समस्याओं को समूल समाप्त करने में उपयोग कर पाता।

इसी प्रकार की स्थिति दुनिया के लगभग सभी देशों के साथ है जो युद्ध और आतंकवाद से किसी न किसी तरह प्रभावित हैं, और विश्व शांति की सदेच्छा के बावजूद अपना योगदान न कर पाने को विवश हैं। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने आगाह करते हुए कहा था कि ''सामाजिक उत्थान की तुलना में जो राष्ट्र साल-दर-साल सैन्य रक्षा पर अधिक खर्च कर रहा है वह आध्यात्मिक पतन को प्राप्त हो रहा है।'' आध्यात्मिकता दरअसल मानवीय मूल्यों का उच्चतम प्राप्य है, जो हमें अनुपलब्ध होता जा रहा है। इस दिशा में दुनिया के सभी देशों को गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

दो-दो विश्वयुद्धों ने मानव समाज को दहला दिया था, नाभिकीय अस्त्रों की विध्वंसक क्षमता को दुनिया ने देखा था और इसी के मद्देनजर दुनिया में शांति स्थापना के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी, जिसके मूल उद्देश्य थे- सत्य, अहिंसा, सद्भाव आदि। दुनिया के सभी देशों ने यह माना कि हिंसा का उत्तर हिंसा से देकर साम्राज्यवाद को हराया नहीं जा सकता। साम्राज्यवाद से मुक्ति और युद्ध की विभीषिका से बचाव अहिंसा से ही संभव है, जिसमें प्रतिपक्ष के लिए विद्वेष, घृणा और बैर के लिए कोई जगह नहीं है। सबके कल्याण की शुभकामना है। लेकिन शोषण और लूट को ख़त्म करने के लिए प्रतिबद्ध होने की प्रतिज्ञा भी है। अहिंसा के सहारे ही संसार में शांति और न्याय संभव है। अब बात और आगे जा चुकी है। हमें मार्टिन लूथर किंग जूनियर की एक और चेतावनी को याद रखना होगा कि ''अब चुनाव हिंसा और अहिंसा के बीच नहीं है बल्कि हिंसा और अनस्तित्व के बीच है।''

संकट संपूर्ण पृथ्वी के अस्तित्व पर है इसलिए युद्ध का बहिष्कार हर स्तर पर किया जाना चाहिए। अहिंसा के चयन का अर्थ सभी की भलाई में निहित है। इसमें किसी दूसरे का अधिकार छीनकर भौतिक सुख के लिए जीने का नकार है। इसमें खुद को प्रकृति का अंश मानकर जीना और प्रकृति का संरक्षण करना, मनुष्य के जीने के अधिकार का सम्मान करना और शोषण मुक्त व्यवस्था की रचना समाहित है। इसमें अपने भीतर की हिंसा के खिलाफ लड़ने का भी भाव सम्मिलित है। दोनों विश्वयुद्धों से यह तो स्पष्ट हो गया है कि विघटन मूल्यों का नहीं, मूल्यों पर मनुष्य की आस्था का हुआ है।

वर्ष 2007 में लियोनार्डो डिकैपरियो के वृत्तचित्र में स्टीफन हॉकिंग ने पूरी दुनिया को आगाह किया था कि ''हम नहीं जानते कि ग्लोबल वार्मिंग (जिसका एक कारण नाभिकीय अस्त्र हैं) कब खत्म होगी। ग्लोबल वार्मिंग, जेनेटिकली इंजीनयिर्ड वायरस और न्यूक्लियर वार की वजह से पृथ्वी के अस्तित्व पर ख़तरा मँडरा रहा है। विज्ञान की नकारात्मक प्रगति के पक्ष पर हम आँखें मूँदे हुए हैं। जेनेटिक इंजीनियरिंग को प्रायः निजी कम्पनियों के लोग निर्धारित कर रहे हैं और इस पर समाज का कोई नियंत्रण नहीं है। इसके कारण उससे वायरस बनेगा या कुछ और चीज निकलेगी किसी को नहीं मालूम। दुर्भाग्य से यह सब चीजें जनता के हाथ से निकल चुकी हैं। इसका जी-20 और जी-8 जैसे समूहों को तत्काल संज्ञान लेने की जरूरत है।'' उन्होंने कहा था कि ''हमने समय रहते ग्लोबल वार्मिंग के लिए सुधार के उपाय न किए तो वह दिन दूर नहीं जब धरती शुक्र ग्रह के समान हो जाएगी, जहाँ तापमान 250 डिग्री सेल्सियस हो जाता है और अम्ल की बारिश होती है।'' आज पूरी दुनिया जिस कथित 'वायरस वार' को झेल रही है और वैज्ञानिक जिसकी दवा नहीं ढूँढ़ पा रहे हैं, कहीं न कहीं इस तरह की महामारी और संकट की भविष्यवाणी स्टीफन हॉकिंग ने पहले ही कर दी थी, लेकिन उनकी इस चेतावनी पर दुनिया ने गंभीरता से ध्यान नहीं दिया।

हथियार या जीवन में से एक को चुनना ही निरस्त्रीकरण का दर्शन है, जो विश्व शांति की स्थापना के लिए अस्तित्व में आया था। ''शस्त्र नहीं होंगे तो युद्ध नहीं होगा और विश्व शांति क़ायम रहेगी'' - इस दर्शन के तहत द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद निरस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण के प्रयास शुरू हुए थे, हालाँकि इससे पहले भी 'हेग सम्मेलन', 'एटम फॉर पीस प्लान' और 'एटमिक एनर्जी कमिशन' आदि के रूप में कई प्रयास किए जा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चुके थे। सी.टी.बी.टी., एन.पी.टी. आदि के रूप में निरस्त्रीकरण के न जाने कितने प्रयास किए गए, लेकिन सब का परिणाम विफल ही रहा। निरस्त्रीकरण संबंधी विभिन्न बिंदुओं के संधिपत्र पर अब तक लगभग 190 देश हस्ताक्षर कर चुके हैं। इनमें से पाँच के पास परमाणु हथियार हैं। ये देश हैं - अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और चीन। केवल पाँच परमाणु संपन्न देश इसके सदस्य नहीं हैं - भारत, इजराइल, पाकिस्तान, दक्षिण सूडान और उत्तर कोरिया। भारत का मानना रहा है कि एन.पी.टी. के तहत भारत को परमाणु संपन्न देश की मान्यता न देना दोहरे मानदंड को प्रदर्शित करता है। यह संधि भेदभावपूर्ण है क्योंकि परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्रों और परमाणु शक्ति विहीन राष्ट्रों के बीच भेद किया जाता है। इसके तहत एक ओर तो परमाणु शक्ति विहीन राष्ट्रों के ऊपर परमाणु अस्त्र विकसित करने पर पाबंदी लगाई जा रही है, वहीं दूसरी ओर परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र अपने अस्त्रों को कब समाप्त करेंगे इसका कोई ज़िक्र तक नहीं है। भारत का तर्क रहा है कि यह संधि परमाणु शक्ति संपन्न देशों पर तो कोई उत्तरदायित्व नहीं डालती, सारा उत्तरदायित्व परमाणु शक्ति विहीन देशों पर थोपती है। लेकिन इन सबके बावजूद क्या निरस्त्रीकरण के प्रयासों को छोड़ा जा सकता है? क्या उन संभावनाओं को नहीं तलाशा जाना चाहिए कि विश्व शांति के लिए सभी देशों को उचित रूप से सम्मान और उत्तरदायित्व दिया जाए ?

निरस्त्रीकरण का दर्शन विश्व हित में है इसलिए शीघ्र सभी मतभेदों को सुलझाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए। आज इस बात की सख्त जरूरत है कि आतंकवाद का दबाव व हस्तक्षेप की तरह प्रयोग बंद हो। इसके लिए ईमानदार अंतर्राष्ट्रीय समर्थन की आवश्यकता है। आतंकवाद के वित्तीय स्रोतों के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय अभियान चलाए जाने चाहिए, क्योंकि आतंकवाद का संबंध कट्टरवादी विचारधारा से है इसलिए अनुदार समाजों में परिवर्तन के लिए उदारवादी शक्तियों को बढ़ावा दिए जाने की जरूरत है। ये शक्तियाँ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रसार तथा पुनर्जागरण की गतिविधियों के सहारे कट्टरपंथी समाजों को शांति और सहिष्णुता के लिए प्रोत्साहित कर सकती हैं।

यदि विश्व के सभी देश साफनीयत, नैतिकता और नियोजन के साथ अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को विश्वास में लेकर इस समस्या के समाधान के लिए प्रयास करें तो आतंकवाद जैसी समस्या को दुनिया से समाप्त किया जा सकता है। यदि ऐसा जल्दी न किया गया तो अल्बर्ट आइंस्टीन की वह आशंका सही हो सकती है जिसको उनकी इस उक्ति में जाना जा सकता है - ''मुझे नहीं पता कि तृतीय विश्वयुद्ध किन हथियारों से लड़ा जाएगा लेकिन चौथा विश्वयुद्ध लाठी और पत्थरों से लड़ा जाएगा।'' इस उक्ति के संकेतार्थ बहुत चिंतनीय हैं।

युगांडा के अंग्रेज़ी कवि टिमोथी वांगुसा ने 'तीसरा महायुद्ध ' शीर्षक से एक कविता लिखी है। इस अनुमान पर कि तीसरे महायुद्ध में आणविक शस्त्र का उपयोग होगा। वह युद्ध पूरी मानवता को निगल जाएगा और मानव-इतिहास एक बार फिर एकदम आदिम रूप में शुरू होगा और इसलिए चौथा महायुद्ध भालों और तीरों से लड़ा जाएगा। यह कविता आइंस्टीन की भविष्यवाणी को आधार बनाती है और उनकी आशंका का समर्थन करती है, कवितांश देखें-

''इसने पकड़ा हमें असावधान
असावधान ही लड़े हम इसे
होकर पूर्व निश्चयी कि हो जब यह
हो जैसे गिरती हैं पिघलती चट्टानें
और चुँधियाए
दस लाख हिरोशिमा की चमक से
और वहाँ थी एक अतल भविष्यवाणी
कि लड़ा जाएगा चौथा महायुद्ध
बरछों और तीरों से... ।''

यूनेस्को का संविधान इन शब्दों के साथ शुरू होता है - ''क्योंकि युद्ध व्यक्ति के मन से शुरू होता है इसलिए शांति के दुर्ग भी व्यक्ति के मन में बनाए जाने चाहिए।... मानव जाति के इतिहास में एक दूसरे के तौर-तरीकों और जीवन के बारे में अज्ञानता दुनिया भर के लोगों के बीच संदेह और अविश्वास का सामान्य कारण है, जिनके विभेदों ने प्रायः युद्ध का रूप धारण कर लिया है।'' यह शब्द आज भी उतने ही सच लगते हैं जितने 1945 में यूनेस्को की स्थापना के समय लगते थे। 'काफ्का ऑन द शोर' में हरुकी मुराकामी की युक्ति है कि ''सुनो, कोई युद्ध ऐसा नहीं जो हर युद्ध को समाप्त कर दे।''

'द विज़डम ऑफ एलेनोर रूलवेट की यह बात भी तर्कसंगत लगती है कि ''किसी ने अंतिम युद्ध नहीं जीता और कोई भी अनंतिम युद्ध नहीं जीतेगा।'' और वाल्ट व्हिटमैन की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'लीव्स ऑफ ग्रास' की इस बात पर भी कान देना चाहिए कि ''लड़ाइयाँ उसी भावना में बिला जाती हैं जिसमें वो जीती जाती हैं।'' इन बातों पर ग़ौर करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्थायी शांति की स्थापना मानवता की नैतिक और बौद्धिक योग्यता के आधार पर ही की जा सकती है। मात्र राजनीतिक या आर्थिक समझौतों से स्थायी शांति स्थापित नहीं होगी।

जैसा कि पूर्व में मैंने संकेत करने की कोशिश की है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ संसाधनों पर कब्ज़ा करने के लिए नस्ल, रंग और राजनीतिक विचारधाराओं का इस्तेमाल करने में माहिर होती हैं, और उनके झाँसे में असंख्य लोग न चाहते हुए भी फँस जाते हैं। वियतनाम युद्ध, कोरिया का विभाजन, जर्मनी का विभाजन और मध्य एशिया के इस्लामी देशों में अशांति के पीछे कहीं न कहीं ऐसी मानसिकता का गहरा असर है। ऐसी ताकतें दूसरे की पारंपरिक जीवनशैली को भी नष्ट करके उन्हें अपना ग़ुलाम बनाने का निरंतर प्रयास करती हैं। उन्हें वैश्वीकृत करने का चालक दंभ भरती हैं। तमाम आदिवासी वन्य जनजातीय समुदायों के नष्ट होते जाने के पीछे ऐसे षड्यंत्रों की कारसाज़ी है।

तमाम समाजों, समुदायों की संस्कृति और उनकी भाषाओं के नष्ट होते जाने के पीछे ऐसी ही दूषित और षड्यंत्रकारी सोच काम कर रही है, जिस पर पूरा संसार चिंतित है। इन परिस्थितियों में दुश्मन की हिंसा से अधिक ख़तरनाक होता है मित्रों की चुप्पी। अन्याय को रोकने के लिए किए जाने वाले उपाय में तटस्थ रहना किसी अपराध से कम नहीं होता। इस संदर्भ में हमें डेसमंड टुटु कि बात याद आती है कि ''अन्यायपूर्ण परिस्थिति में आपकी तटस्थता का मतलब है कि आप शोषकों के साथ हैं। '' लेकिन ऐसी षड्यंत्रकारी शक्तियों के खिलाफ युद्ध या हिंसा एकमात्र उपाय नहीं हो सकता। इस संबंध में महात्मा गांधी हमें रास्ता दिखाते हैं। गांधी जी कहते हैं कि ''आँख के बदले आँख लेने से पूरी दुनिया अंधी हो जाएगी।'' गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर का मानना था कि ''शांति की स्थापना इस धारणा पर की जानी चाहिए कि पूरी मानवता एक है।'' इसी तरह की अवधारणा महात्मा गांधी ने भी व्यक्त की - ''मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों ओर दीवार हो और खिड़कियाँ बंद हों। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की संस्कृतियों की हवा यथासंभव मुक्त रूप में मेरे घर से होकर गुज़रे, लेकिन मैं नहीं चाहता कि किसी भी संस्कृति की हवा से मेरे पैर उखड़ जाएँ। मैं एक अंत:प्रवेष्टा, एक भिखारी या एक ग़ुलाम के रूप में अन्य लोगों के घरों में रहने से इनकार करता हूँ।'' महात्मा गांधी के इस कथन में हम अन्य संस्कृतियों के लिए सम्मान से भरी सहिष्णुता तो पाते ही हैं, उससे भी अधिक अपनी संस्कृति और अपने परिवेश में मज़बूती से अटल रहने का आत्मबल भी महसूस कर पाते हैं। महात्मा गांधी के लिए अहिंसा एक सक्रिय शक्ति रही है जो 'स्व' और 'अन्य' के बीच की दूरी को समाप्त करती है, दोनों को समुचित सम्मान और गरिमा प्रदान करते हुए।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि ''मेरा संबंध शांति से है क्योंकि मैं एक मनुष्य हूँ। मेरा संबंध किसी संप्रदाय से नहीं, यद्यपि मेरा कोई विरोध धर्म या विज्ञान या राष्ट्रीयता से नहीं है, लेकिन इन सबसे महत्त्वपूर्ण मनुष्य बनना है। मानवता सारे मनुष्यों को भाई-बंधु और विश्व का नागरिक समझती है, और यह भी समझती है कि हर मनुष्य का अधिकार जीवन, स्वतंत्रता और हर्ष प्राप्त करने का है। मानवता का तकाजा है कि अन्याय तथा ज़ुल्म समाप्त किए जाएँ। युद्ध से विद्वेष तथा घृणा की जाए और उसकी जगह नैतिकता का व्यवहार हो। कोई व्यक्ति उतना ही सभ्य समझा जा सकता है जो जितना युद्ध से मुँह मोड़कर शांति की ओर पग बढ़ाता है। मेरा संबंध शांति से इसलिए है कि मेरा विश्वास है कि युद्ध से कोई समस्या हल नहीं हो सकती। सब जानते हैं कि चाहे कितने ही समय तक युद्ध चले आख़िर उसका फल शांति में नहीं हो सकता है। युद्ध मानव की स्थायी प्रवृत्ति नहीं है। स्थायी प्रवृत्ति तो शांति है।''

अंत में, मैं जॉन लेनन की 'स्वप्न' कविता का महाभाव इस उम्मीद के साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ कि -

''कल्पना करो कि कोई देश नहीं है
यह सोचना कठिन नहीं है
मरने मारने के लिए कुछ न रहा
और कोई मज़हब भी नहीं
कल्पना करो कि सभी शांति से जी रहे हैं अपना जीवन
आप कह सकते हैं कि मैं एक स्वप्नदर्शी हूँ
लेकिन मैं ही अकेला नहीं हूँ
मुझे भरोसा है कि किसी दिन आप
और यह दुनिया मेरा साथ देगी, एकजुट होकर।''

मो. 9873372181

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी अहिंसा और आलोचना का जाग्रत विवेक

अच्युतानंद मिश्र
(चर्चित युवा आलोचक)

गांधी ने अहिंसा के दर्शन को न सिर्फ भारत के लिए जरुरी बताया बल्कि यह भी स्वीकार किया कि इस रास्ते पर चलकर ही यूरोप अपनी असफल क्रांति को सफल बना सकेगा। इसलिए भारत का राष्ट्रीय संग्राम भारत ही नहीं अपितु यूरोप के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के भारत में बुनियादी फर्क क्या है? बीसवीं सदी के भारत में एक सामूहिक विवेक का निर्माण होता है। यह सामूहिक विवेक राष्ट्र, समाज एवं संस्कृति के रूप में अपनी अस्मिता को पहचानने और जानने की एक कोशिश है। इस विवेक के मूल में हैं गांधी। गांधी के विषय में विचार करते हुए हीगेल को याद किया जा सकता है। जर्मन आदर्शवाद की समस्याओं को हल करते हुए हीगेल ने कहा था -जो कुछ भी तर्क से परे है, मनुष्य के विवेक से बाहर की चीज है। गांधी के समग्र चिंतन में इस बात को महसूस किया जा सकता है।

जर्मन आदर्शवादियों के समक्ष प्रश्न था व्यवहार महत्त्वपूर्ण है या सिद्धांत। मार्क्स ने सभी जर्मन आदर्शवादी चिन्तक (कान्ट, फिक्ते, शेलिंग और हीगेल) की बातों से निष्कर्ष निकालते हुए कहा कि सवाल व्याख्या का नहीं, सवाल दुनिया को बदलने का है। परिणामस्वरूप दुनिया के बड़े हिस्से रूस में बदलाव की प्रक्रिया आरम्भ हुई। वहाँ क्रांति हुई, बोल्शेविकों ने सत्ता को अपने नियंत्रण में लिया। एक तीव्र सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया वहाँ आरम्भ हुई।

गांधी ने अहिंसा को अपना हथियार बनाया। बगैर सत्ता पर नियंत्रण के उन्होंने समाज को बदलने का बुनियादी काम किया। हर्बर्ट मार्क्युज़ ने कहा था कि फ्रेंच क्रान्ति व्यवहार थी जिसका दर्शन जर्मन आदर्शवाद में विकसित हो रहा था। गांधी के समूचे चिंतन में व्यवहार और दर्शन का अद्‌भुत समावेश दिखता है, बल्कि यह कहना अधिक मुनासिब लगता है कि गांधी ने व्यवहार और सिद्धांत के बीच के भेद को ही मिटा दिया। उन्होंने इस बात को साबित किया कि यूरोप जिस क्रांति के दर्शन और व्यवहार से निकलकर आया है, उसका समन्वय उसके आचार में नजर नहीं आता इसलिए यूरोप पिछड़ा हुआ है। उसे आत्मिक विकास की जरुरत है।

गांधी ने अहिंसा के दर्शन को न सिर्फ भारत के लिए जरुरी बताया बल्कि यह भी स्वीकार किया कि इस रास्ते पर चलकर ही यूरोप अपनी असफल क्रांति को सफल बना सकेगा। इसलिए भारत का राष्ट्रिय संग्राम भारत ही नहीं अपितु यूरोप के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

यूरोप के पास औद्योगिक क्रांति का विवेक नहीं बल था। यह विवेक बल में किस तरह बदल गया? इस प्रश्न को अगर समझना हो तो हमें हिन्द स्वराज से बार बार गुजरना होगा- 19वीं सदी का राष्ट्रीय संग्राम आदर्श और स्वप्न के रास्ते आगे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

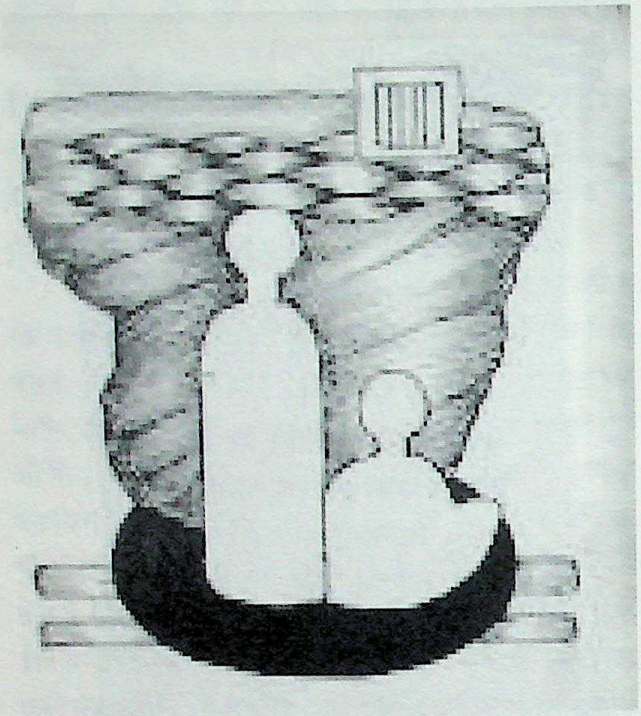

बढ़ता है। वहाँ आधुनिकता की कश्मकश नहीं, आधुनिकता की आकांक्षा है। आधुनिकता का समयबोध है। इस स्वप्न में विश्रांति भी है उमंग भी। यह स्वप्न मध्ययुगीन बोध को चुनौती देता था। 1857 की क्रांति ने उसे स्वप्न से जगा दिया। अभी तक उसके बोध में आधुनिकता का आलोचनात्मक विवेक जाग्रत नहीं हुआ था। वह आधुनिकता के एकायामी पक्ष को ही देख पा रहा था। लेकिन 1857 की क्रांति ने उसमें एक आलोचनात्मक विवेक विकसित किया। वह अंग्रेजी राज, अंग्रेजी आधुनिकता और वर्चस्व के इस नये साम्राज्यवादी बोध को समझने की कोशिश करने लगा।

फिर भी यह प्रश्न अक्सर उठता है कि 1857 से पूर्व जो स्वप्न देखा गया था? जो मूल्य निर्धारित किये गए थे, क्या हम उसी राह पर आगे बढ़ पाये? क्या आधुनिकता की यह परियोजना भी अधूरी ही रह गयी? 1857 के बाद के संक्रमण के वर्षों में हम उस राह से भटक गए? क्या वर्चस्व की नई संस्कृति ने हमारे भीतर वर्चस्व की उस पुरानी क्रमिकता से संघर्ष को कमज़ोर कर दिया?

अगर अंग्रेज न आये होते तो हमारा क्या होता? इस तरह के वायवीय प्रश्नों में हम न भी उलझें? तो भी यह प्रश्न तो हम उठा ही सकते हैं कि अंग्रेजों के आने के बाद हम किन बदलावों से गुजरे? क्या हमारे प्रश्न भी बदलते गए। आजादी के संग्राम ने भारतीय समाज के समक्ष कौन से मूल प्रश्न विकसित किये? भारत की अवधारणा को इन प्रश्नों से बार बार टकराना ही होगा। अंग्रेज आये और चले गए। हमने उनसे लड़ते हुए जो अर्जित किया, वे कौन से मूल्य थे? क्या हम आत्म-परीक्षण के रास्ते उन मूल्यों को आत्मसात कर पाए। उन मूल्यों ने हमारे आत्म को किस अर्थ में बदला। वर्चस्व के प्रति जो हमारी उदासीनता थी, उससे क्या हम लड़ पायें? भारतीयता की अवधारणा इन सवालों से उलझती है। इनसे टकराकर ही हम आगे की राह सुनिश्चित कर सकते हैं। यहाँ परम्परा के मूल्यांकन की बजाय परम्परा को पहचान ने पर बल है।

20 वीं सदी में भारतीयता की अवधारणा, 19 वीं सदी के संक्रमण से बाहर आते हुए संघर्ष की वास्तविक दिशा की तलाश करती है। इस दृश्य में गांधी का प्रवेश निर्णायक साबित होता है। गांधी का मूल्यांकन और अवदान जब भी हम किन्हीं तय मापदंडों से करते हैं तो हम राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी कल्पनाशीलता को चिह्नित नहीं कर पाते। 1910 से 1947 तक के गांधी के तूफानी सफर की संगत और अवधारणात्मक व्याख्या क्या संभव है? क्या ऐसा करने की कोशिश में हमसे हर बार गांधी के प्रयोग का कोई न कोई पक्ष, छूट नहीं जाता, क्या यह बेहतर नहीं होगा कि हम उस प्रयोग की सफलता-असफलता के मूल्यांकन की जगह यह प्रश्न उठायें कि वर्चस्व के प्रति उदासीन भारतीय समाज अगर एक सहिष्णु और आत्मचेतस राष्ट्र के रूप में उभरा तो वह गांधी के बगैर किस तरह संभव होता, क्या गांधी को व्यक्ति गांधी तक सीमित कर देखना उदार राष्ट्र की उनकी परिकल्पना के साथ छल नहीं होगा?

गांधी प्रतिरोध के दर्शन को सिर्फ विरोध के रूप में नहीं देखते थें। उनके लिए प्रतिरोध आत्म-चेतना का एक जाग्रत रूप था। इसलिए जो उनसे असहमत थे, या उनसे अलग रास्ते पर चलना चाहते थे वे भी उनके प्रभाव से मुक्त नहीं थें गांधी स्वयं भी लगातार बदल रहे थे- वे व्यवहार और सिद्धांत के प्रश्न से लगातार संघर्ष कर रहे थे। चंपारण आन्दोलन की शुरुवात और उसके अंत में जो लोग तात्विक विरोध देखते हैं या यह समझते हैं कि गांधी ने हिंसा के बाद आन्दोलन वापस ले लिया वह उनकी भूल थी, वे यह नहीं समझ पाते कि गांधी का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लक्ष्य जनता की आत्म-चेतना को हर आन्दोलन के बाद एक नये स्तर तक ले जाना था। वे अंग्रेजों के लिए नहीं लड़ रहे थे। वे भारत के लिए लड़ रहे थे। जब गांधी को यह लगा कि आन्दोलन की चेतना को अगले मुकाम तक ले जाने के लिए उसे वापिस लेना चाहिए, उन्होंने ऐसा किया। वे प्रकट तौर पर विपरीत प्रतीत होती चीजों और घटनाओं को मिलाकर एक नया सामंजस्य विकसित कर रहे थें। ज्यों ही हम गांधी को गांधीवाद में बदलते हैं, हम कुछ लोगों को उनका विरोधी साबित करने लगते हैं। ऐसा करते हुए हम गांधी के सर्वसमावेशी चिंतन को ही जाने अनजाने नकारते हैं। क्या यह जरुरी है कि जो गांधी से असहमत थे वे असहमत होते हुए भी उन्हीं मूल्यों और स्वप्नों को पाना चाहते थे जिसे गांधी उन्हें हम गांधी के विरोध में ही देखें। क्या भगत सिंह और गांधी या अबेडकर और गांधी जैसे विपरीत युग्म बना देने से हमारी भारतीयता की अवधारणा अधिक स्पष्ट और मूर्त होती है। क्या यह यूरोपीय वर्चस्व की चेतना को ही स्वीकारना नहीं होगा?

गांधी का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने भारत को वर्चस्ववादी चेतना का विरोध करना सिखाया लेकिन ऐसा करते हुए वे विपरीत बनने की या संघर्ष को बाइनरी में बदलने की प्रक्रिया को नहीं अपनाते। गांधी की प्रयोगशीलता का अर्थ था। दर्शन और सामाजिक चेतना के बीच सम्बन्ध की तलाश। इस तलाश में संभव है कि कोई उनसे असहमत होते हुए भगत सिंह या अम्बेडकर या नेहरु की तरह सोचने लगे, क्या इसे गांधी के विरुद्ध रखकर विश्लेषित किया जाना चाहिए? क्या यह गांधी की सफलता नहीं, कि वे दर्शन को सामाजिक चेतना के तामाम समकालीन रूपों से जोड़ने का विवेक सामने रखते हैं। गांधी ने प्रतिरोध को बहुआयामी बनाने पर बल दिया। उन्होंने बार-बार स्वयं को बदला। इस बदलने में आत्मालोचना का पक्ष भी था और आत्म मूल्यांकन की कोशिश भी।

गांधी व्यवहारिक राजनीति और मूल्यगत राजनीति के प्रचलित दो ध्रुवों को साथ लेकर चलने पर बल देते रहे। गांधी के लिए व्यवहार और सिद्धांत के बीच के संघर्ष को आत्मसंघर्ष में बदलने की कोशिश कभी खत्म नहीं होती। इसीलिए वे मूल्यों और व्यवहार के बीच समन्वय की बजाय उन्हें एकमेक करने पर बल देते हैं। गांधी आधुनिकता विरोधी नहीं थे। हाँ! वे उस व्यवहारगत राजनीति का विरोध जरुर करते थे जो

सभ्यता की विशाल भट्टी में मनुष्य कोयले की भांति धू-धू जलता है। गांधी मनुष्य के इस आत्म-छिछलन को पहचानते है। वे बताते हैं कि मनुष्य और मनुष्यता का उद्देश्य बहुत बड़ा है। गांधी के लिए खुद को उस ऊँचाई उस आदर्श तक पहुंचना ही वास्तविक संघर्ष था।

आधुनिकता को एक गति में बदल देती हैए सभ्यता को यंत्र में और मनुष्य को कल पुर्जे में।

सभ्यता की विशाल भट्टी में मनुष्य कोयले की भांति धू-धू जलता है। गांधी मनुष्य के इस आत्म-छिछलन को पहचानते है। वे बताते हैं कि मनुष्य और मनुष्यता का उद्देश्य बहुत बड़ा है। गांधी के लिए खुद को उस ऊँचाई उस आदर्श तक पहुंचना ही वास्तविक संघर्ष था। उनके अनुसार हर विचार हर राजनीति का लक्ष्य मनुष्य के आत्म को ऊपर उठाने का होना चाहिए।

अंग्रेजों की आधुनिकता का गांधी इसलिए विरोध करते हैं, क्योंकि अंग्रेज उनकी दृष्टि में पिछड़े हुए हैं। गैर आधुनिक हैं। हिंसक हैं। वे हथियाना और छीनना चाहते हैं। गांधी अंग्रेजों से मुक्ति के संदर्भ में अंग्रेजों से पीछा नहीं छुड़ाना चाहते, वे अंग्रेजों के उस आत्म को ऊपर उठाना चाहते हैं जिसने वर्चस्व को ही आधुनिकता मान लिया है। गांधी स्वतंत्रता, समानता और न्याय को किसी जाति या राष्ट्र से जुड़े मूल्य की तरह नहीं, बल्कि मनुष्यता के लिए जरूरी मूल्य की तरह देखते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। यही वजह है कि वे नमक का कानून तोड़ते हैं और गिरफ्तार होते हैं: क्या इस तरह तोड़ने और स्वीकारने में हमारा आत्म ऊपर नहीं उठता ?

गांधी का साम्राज्यवाद विरोध, राष्ट्रवाद की बजाय मानवीय मूल्यों की पैरोकारी करता है। गांधी भारत की बजाय मनुष्य की बात करते हैं। यूरोपीय आधुनिकता की बजाय वैश्विक आधुनिकता के मूल्यों की वकालत करते हैं। एक ऐसी आधुनिकता जिसमें हर तरह के वर्चस्व को नकारने की कोशिश हो। जहाँ मनुष्य की आजादी सिर्फ बाहरी वर्चस्व से मुक्ति पाने के अर्थ में न हो, बल्कि वह उसे आत्मगत अर्थों में भी वर्चस्व से मुक्त करें। वे आत्मनियंत्रण के रास्ते न्यूनतम में बसर करने पर बल देते हैं, वह इसी समझ को मूर्त रूप देने की कोशिश है। जहाँ एक वर्चस्ववादी सत्ता अतिरिक्त पर बल देती है वहीं आवश्यकताओं को न्यूनतम तक ले जाकर वे लालच और वर्चस्व की एक बंद दुनिया का चेहरा उजागर करते हैं। अंग्रेजों के आत्मिक पतन को दिखाने का प्रयत्न करते हैं। गांधी के लिए राष्ट्रवादी संघर्ष, मानवीय स्वतंत्रता और गरिमा की मांग है। गांधी इससे भिन्न किसी राष्ट्र की परिकल्पना या भारतीयता की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते थे।

गांधी के चिंतन में भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्र नहीं थे। वे विभाजन की साम्राज्यवादी दृष्टि का विरोध विभाजन के बाद भी करते रहे। जिस व्यक्ति, विचार और दृष्टिकोण ने उनकी हत्या की वह भारत को एक नहीं अलग-अलग राष्ट्रों में देखने और सोचने वाली वर्चस्ववादी विचारधारा ही थी। क्या यह जरुरी नहीं कि हम इस विचारधारा को साम्राज्यवादी दृष्टि की क्रमिकता में देखने की जरुरत महसूस करें।

आज भारत के विषय में बात करते हुए यह जरुरत महसूस होती है कि हम भारत के दृष्टिकोण में उस गांधी के भारत को शामिल करें जिसमें भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्र, दो दृष्टि, दो समुदाय नहीं बल्कि एक ही चेतना के दो बिम्ब है। क्या 47 के बाद हम जिस भारत की उन्नति. अवनति, जिस भारतीयता की बात करते रहे हैं वह उस परम्परा, उस आधुनिकता को स्वीकार करती है जिसे गांधी ने आधुनिक भारत की परिकल्पना के रूप में बीसवीं सदी में साकार किया था ? पिछले सात दशकों में हमने वर्चस्व के नाना रूपों को ही अपनी प्रगति के रूप में

देखने और पाने की कोशिश की। हम यह भूल गए कि हमारा अतीत वर्चस्व की चेतना के प्रति सदैव संघर्ष का रहा है। आज भारतीयता की उस अवधारणा को नये संदर्भों में जानने की अधिक जरुरत महसूस होती है। एक ऐसे समय जब ब्राह्मणवादी वर्चस्व नये रूपों में और बर्बरता के नये औजारों के साथ हमें अन्दर बाहर दोनों ही तरह से नियंत्रित करना चाहता है, तब क्या हम गांधी से नये संदर्भों में सीख सकते हैं ? जैसे मार्क्स ने हीगेल से सीखा था, न्यूटन ने गैलीलियो से क्या यह सीखना परम्परा का पुनर्मुल्यांकन नहीं होगा ?

हम इतिहास की कोशिशों को भले न दोहराएँ, इतिहास की विद्रूपताओं से बचने के लिए यह जरूरी भी है। लेकिन इतिहास के क्रमभंगों को आत्मसात करते हुए, अपनी वास्तविक पहचान को पुन: परिभाषित करने की चेष्टा तो कर ही सकते हैं। उसके लिए यह अनिवार्य होगा कि हम अपनी राष्ट्रीय पहचान के संकीर्ण होते दायरों का अतिक्रमण करें।

भारतीयता की अवधारणा का अर्थ होगा उस समग्र भारत या उस भारतीय मनुष्य की परिकल्पना, जिसमें उस आधुनिक विवेक को लक्ष्य के तौर पर चिह्नित किया जाए. जिसके तहत व्यक्तित्व का विकास और सभ्यता का विकास दोनों दो कोटियाँ न हो। यह सब तभी संभव है जब हम वर्चस्व के प्रति सचेत होंगे, घृणा की संस्कृति के प्रति आत्मचेतस। इकाई में नहीं, समुदाय में सोचने का साहस विकसित कर सके।

मो. 9213166256

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर्मयोगी का कलानुराग

विनय उपाध्याय
(चर्चित कला समीक्षक)

दरअसल संगीत की शक्ति पर बापू को अटूट भरोसा था। वे संगीत को कामधेनु कहते थे। उनका मानना था कि अमन, एकता और आपसदारी का सच्चा और सनातन संदेश सात सुरों की सोहबत में बड़ी ही सहजता से हासिल किया जा सकता है और इसके लिए संगीत का संत साहित्य से रिश्ता जोड़ा जाना ज़रूरी है।

सच्चे कर्मयोगियों ने कभी-भी अपनी साधना और तपस्या का लेखा-जोखा नहीं रखा लेकिन वक्त के सफहों पर उनके किये और कहे का हिसाब हमेशा दर्ज रहा। जन्म और मरण की तारीख़ों से परे उनका चिंतन आने वाली नस्लों की रूहों में नई चमक लिए कायम रहता आया है। स्वाधीनता के शिल्पी मोहनदास गांधी भी 2 अक्टूबर, और 30 जनवरी की रस्मी यादों से निकलकर एक शाश्वत आवाज में तब्दील हो चुके महात्मा है।

अपनी आत्मा के उजास में सच को देखने और उसकी अदम्य उर्जा से भरकर अभ्युदय का नया अध्याय रचने वाले गांधी का जीवन भारतीय जीवन मूल्यों में रची-बसी भरी-पूरी संस्कृति का आदर्श है। उनकी शख्सियत संवेदना के उन सूत्रों में गुंथी है जहाँ मन के अथाह में शब्द, स्वर, रंग, लय और गतियों के आरोह-आरोह भी उन्हें गाहे-ब-गाहे आन्दोलित करते रहे। गुलामी के खिलाफ पूरे हिन्दुस्तान को लामबंद करने वाले इस नायक को जितनी बार देखो, हर बार एक नया अक्स नुमाया होता है।

कलाओं से बापू के प्रगाढ़ प्रेम के अनेक किस्से हैं। यहाँ ज़िक्र उनकी शख्सियत के उस अनचीन्हे पहलू का जो साहित्य और संगीत की आपसदारी में स्वराज के लिए आध्यात्मिक शक्ति की तलाश करता रहा। अनचाही त्रासदी और बेचैनियों के इस दौर में बापू का यह प्रयोग एक बार फिर हमारी आत्मा के तारों को झंकृत कर सकता है।

दरअसल संगीत की शक्ति पर बापू को अटूट भरोसा था। वे संगीत को कामधेनु कहते थे। उनका मानना था कि अमन, एकता और आपसदारी का सच्चा और सनातन संदेश सात सुरों की सोहबत में बड़ी ही सहजता से हासिल किया जा सकता है और इसके लिए संगीत का संत साहित्य से रिश्ता जोड़ा जाना जरूरी है।

गांधीजी की प्रार्थना सभाओं और प्रभात फेरियों में सुबह-शाम सामूहिक रूप से भक्ति संगीत गाया जाता था। ये वे भक्ति पद थे जिनका इस्तेमाल स्वाधीनता आंदोलन के दौरान शांति, समरसता, शुचिता और आंतरिक मनोबल बनाए रखने के लिए उन्होंने किया। 1904 में हिन्दुस्तानी संगीत के आधुनिक पुरोधा पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने महात्मा गांधी के स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया था और कई सभाओं में उन्होंने रामधुन 'रघुपति राघव राजा राम' गाकर लोक की आत्मा में स्वाभिमान का आलोक बिखेरा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1915 में जब बापू ने अहमदाबाद में साबरमती आश्रम की स्थापना की तो उन्होंने पलुस्करजी से निवेदन किया कि वे किसी कुशल शिष्य को आश्रम में रहकर प्रार्थना सभाओं के लिए सरल-सहज धुनें तैयार करने का कार्य सौंपे। तब नारायण मोरेश्वर खरे नामक एक शिष्य ने चार सौ भजनों को संगीतबद्ध किया जिसे बाद में राग-ताल विवरण के सहित अहमदाबाद के नवजीवन प्रकाशन मंदिर ने 'आश्रम भजनावलि' में प्रकाशित किया।

इसी लघु पुस्तिका में संग्रहित भक्त नरसिंह का भजन 'वैष्णवजन तो तेने कहिए' बापू को सर्वाधिक प्रिय था जो बाद में 'दांडी यात्रा' सहित गांधीजी के अनेक प्रवासों में प्रार्थना संगीत की अनिवार्य और कालजयी रचना साबित हुई।

बहुत कम लोग जानते हैं कि महात्मा गांधी भारत रत्न से सम्मानित कर्नाटक संगीत की प्रख्यात गायिका सुब्बलक्ष्मी से अपना प्रिय भजन 'हरि तुम हरो जन की पीर' सुनना चाहते थे। सन् 1947 में मुंबई में प्रार्थना सभा में जब उनके आग्रह पर सुब्बलक्ष्मी ने 'राम धुन' सुनाई तो सरोजिनी नायडू ने अपनी 'भारत कोकिला' उपाधि उन्हें प्रदान कर दी थी।

गांधी का परिवेश रामधुन से प्रेरित था। रामधुन का अर्थ अपने आप पर विश्वास का भाव लिए था। रोज की प्रार्थना एक जरूरी कार्य था। भाषा से परे भाव में लीन हो जाने की विधि, जहाँ सच्चे 'वैष्णवजन' की तरह पराई पीड़ा को अनुभव करने की अंतर्प्रेरणा जाग उठे।

गांधीजी कलाकारों का बहुत सम्मान करते थे किंतु वे

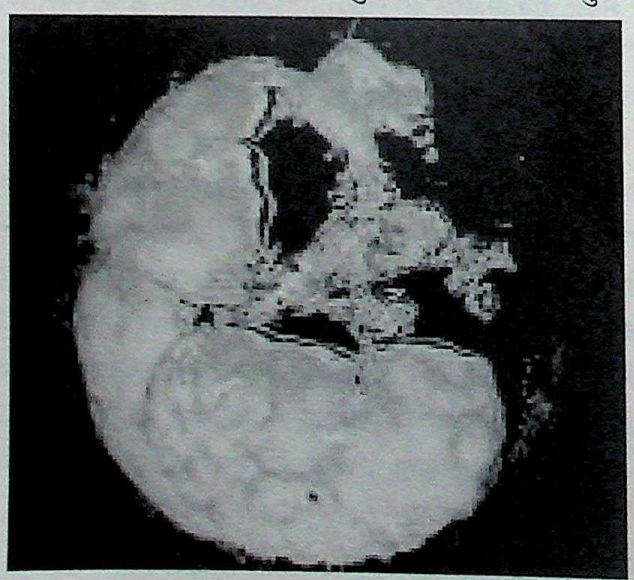

गांधीजी कलाकारों का बहुत सम्मान करते थे किंतु वे कला में आध्यात्मिक ऊँचाइयों और गहन आस्था को देखना चाहते थे। उन्हें अपनी तसवीरें खिंचवाना अधिक पसंद नहीं था, फिर भी चित्रकारों द्वारा बनाई गई कलाकृति पर तारीख़ सहित अपने हस्ताक्षर करने के बाद वे संदेश लिखते थे, जैसे- ''ट्रूथ इज़ गॉड''।

कला में आध्यात्मिक ऊँचाइयों और गहन आस्था को देखना चाहते थे। उन्हें अपनी तसवीरें खिंचवाना अधिक पसंद नहीं था, फिर भी चित्रकारों द्वारा बनाई गई कलाकृति पर तारीख़ सहित अपने हस्ताक्षर करने के बाद वे संदेश लिखते थे, जैसे- ''ट्रूथ इज़ गॉड''।

बापू के लिए ईश्वर, सत्य और सुन्दरता परस्पर आश्रित रहे। उनके अनुसार- जब तक किसी भी कला में स्वयं की छाप नहीं होती उसमें रस नहीं पैदा होता, सौन्दर्यबोध नहीं जागता। वे कला और कलाकारों के संरक्षक थे। वे कला में विविधता के पक्षधर थे, पर कला में जीवन बोले, आनंद हो और सबके लिए हो, यही उनका मत था। कला में मन-आत्मा और शरीर एक होकर प्रगट हों, बापू की यही कामना रही।

स्वराज साहित्य के अध्येता इलाशंकर गुहा बापू के कला प्रेम का एक संस्मरण साझा करते हुए बताते हैं कि 1918 में शांति निकेतन में गांधीजी की मुलाकात मुकुल डे से हुई। सरोजिनी नायडू भी मुकुल डे के साथ थी। मुकुल ने गांधीजी से उनका पोर्टेट बनाने के लिए अनुमति मांगी। गांधी जी बोले कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं केवल मुस्कुराये। मुकुल गांधी जी की सादगी भरी वेशभूषा और सरलता पर मुग्ध थे। चित्रांकन पूरा हुआ और पेन्टिग गांधी जी के सामने रखी गई। गांधीजी हंसकर बोले- वाकई क्या मैं ऐसा दिखता हूँ। मैं उस एंगल से अपना चेहरा नहीं देख सकता- ''फिर मुकुल की प्रार्थना पर उन्होंने तारीख सहित गुजराती में पेन्टिंग पर हस्ताक्षर किये।''

दस वर्ष बाद सी. एफ. एंड्रयूज ने मुकुल का परिचय गांधी से करवाया- गांधीजी तुरंत मुकुल को पहचान गये और उन्होंने साबरमती आश्रम में उनके रहने खाने की व्यवस्था कर दी और पेन्टिग बनाने की अनुमति भी दी। मुकुल डे ने वहाँ चार महत्त्वपूर्ण पेटिंग बनाई। कुछ रेखांचित्र भी बनाये थे और कस्तूरबा का एक पोर्टेट भी तैयार किया। गांधीजी ने उनकी कला का सूक्ष्म निरीक्षण किया-फिर प्रसन्न होकर साबरमती आश्रम की स्कूल का आधा हिस्सा-वहाँ चित्रकला की कक्षाएँ चलाने के लिए दे दिया।

इलाशंकर बताते हैं कि शांति निकेतन में दक्षिण से आए युवा कलाकार के. वेंकटप्पा ने भी चित्रकला सीखी थी। उन्होंने विभिन्न मौसम और हालातों में ऊटी पर बहुत सारे चित्रांकन किये। गांधी जी ने इन चित्रों को देखकर एक सधे हुए कला समीक्षक के रूप में 'यंग इंडिया' में टिप्पणी लिखी। एक साधारण आदमी भी के. वेंकटप्पा द्वारा बनाई गई पेटिंग्स में प्रकृति के सूक्ष्म चित्रण और सधी हुई लाइनों और रंग संयोजन की तारीफ किए बना नहीं रह सकता। उनके चित्रों में सुबह, शाम और रात्रि में शांति, प्रकृति की सुरम्यता बादलों के गहरे प्रभाव और वातावरण की सौम्यता का चित्रण-प्रकृति के साथ उनके मन के एकाकार होने की अनुभूति प्रदान करता है। गांधी जी ने फिर के. वेकंटप्पा को कहा कि मैं प्रसन्न हूँ आपको मेरा आशीर्वाद है किंतु यदि आप जीवन पर चरखे के प्रभाव को दर्शाती हुई पेन्टिंग बना सकें तो मुझे अधिक खुशी होगी। हाँ यदि ये आपको आकर्षित करता हो तो अन्यथा कोई बात नहीं। गांधी जी कला को अपने उद्देश्यों और आदर्शों के अनुरूप देखना चाहते थे- क्योंकि उनका ध्येय स्पष्ट था।

दांडी मार्च के समय गांधी पर सबसे अधिक चित्र बनाये गये। अलग-अलग कलाकारों द्वारा तैयार ये पेन्टिंग्स किसी शैली विशेष से संबंधित नहीं थी- वरन् उसमें तथ्य और मनोभावों का चित्रण था। दांडी मार्च में गांधी जी के आधी रात में गिरफ्तार हो जाने पर कलाकार विनायक एस मासोजी ने उनकी एक पेंटिंग बनाई-जिसमें उनकी तुलना ईसा मसीह को गेथास्मेने बागान के प्रसंग से की गई- उस पेटिंग का नाम था- 'दि मिडनाइट अरेस्ट'। बाद में गांधीजी और राजकुमारी अमृतकौर ने उस पेंटिंग को कांग्रेस की आर्ट गैलेरी में देखा- राजकुमारी ने पूछा कि क्या वास्तव में रात को ऐसा ही हुआ था या ये कलाकार की कल्पना मात्र है-गांधी जी बोले हाँ - हाँ ऐसा हो हुआ था वे ठीक वैसे ही मुझे गिरफ्तार करने आये थे।

मो. 9826392428

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

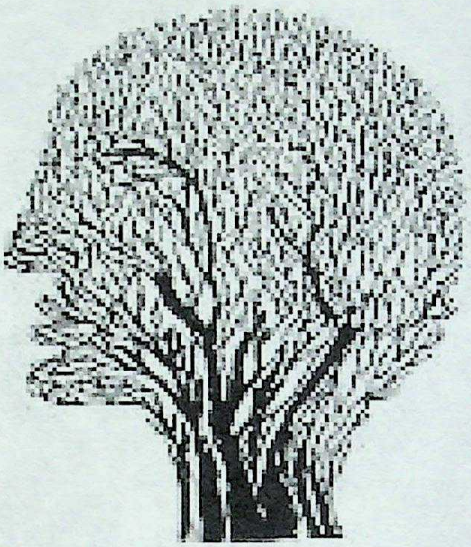

ग़ज़लें व रेखांकन

जयंत परमार
(उर्दू के सुप्रसिद्ध लेखक व चित्रकार)

(1)

लफ़्ज मिस्त्रे में पिरौया मैंने,
शब्जा का रूमाल भिगोया मैंने
लफ़्ज की स्याही से पिछली शब्में
दिल के हर दाग़ को धोया मैंने
उसको देखा न मिला था पहले
दर्द-ओ - गम उसके थे, रोया मैंने
जथासब्ब था, हमें कुछ याद नहीं
फिर उसे पाके भी खोया मैंने
मेज पर काफी का कप था जिसमें
दिल के काग़ज को डुबोया मैंने

(लफज- शब्द, सबब- वजह, शब - रात्रि)

(2)

खुद से लड़ता भिड़ता मैं
दफतर से घर लौटा मैं
चांद-सा उजला दिल तेरा
मन का मैला मैला मैं
फूल तू पहली बारिश का
तेज़ हवा का झोंका मैं
हरी भरी तेरी राहें
और सुलगता सहरा मैं
बरसों तेरी राह तकता
बरगद का इक साया मैं
देर तलक बच्चे की तरह
ख़ुद से लिपटकर रोया मैं
सूरज मेरा शाहिब है
धूप पहन कर निकला मैं
कौन भला सुनता मुझको
एक अधूरा किस्सा मैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

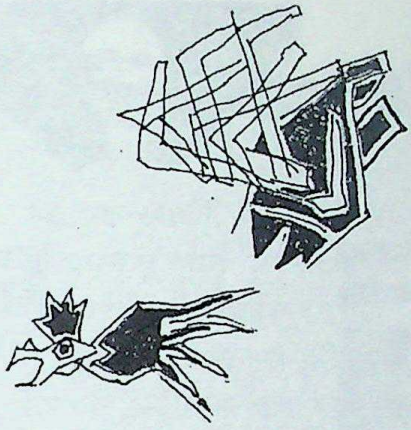

(3)

लम्हों के सब्ज़ फूल का गजरा बनाइये।
दिल के वरक पे रात भर दरिया बहाइये॥
रस्ते में दूर तक है कड़ी धूप का सफर ।
उसकी घनेरी ज़ुल्फ का साया बनाइये।।
ऐसा भी क्या कि एक ही जैसा मज़ाज हो।
दिल को समन्दर और कभी सहारा बनाइये।
फुर्सत में हो तो चाँद को दिन में ढूँढिये।
अच्छा सा कोई शेर ग़ज़ल का सुनाइये।।
जंगल में नींद का न ठिकाना दिखाई दे।
कोई कहानी और कोई क़िस्सा सुनाइये॥

(4)

वो यूँ ख़ाली हाथ यहाँ से गुज़र गया।
लेकिन गली का चाँद निग़ाहों में भर गया॥
एक-एक फूल हँसने लगा, बोलने लगा।
शायद यहाँ से आज कोई ख़ुश नजर गया॥
ख़ुद से ख़ुदा से ख़ौफ से ख़ुशबू से ख़्वाब।
किस-किस से लड़ता भिड़ता हुआ अपने घर गया॥
आँखों में था नफी का समन्दर रवाँ-दवाँ।
दिल था कि रूठकर भी इसी शोख़ पर गया॥
इमली की खट्टी ख़ुशबू ने चौंका दिया मुझे।
साये में इसके छोटा-सा घर था किधर गया॥
वो हाथ पाँव मार रहा था अभी-अभी।
जब थक गया तो पानी की तह मैं उतर गया॥
बरगद की ज़र्द शाख़ पे बैठा था इक परिंदा।
फिर उसके बाद अंधे कुएँ मैं उतर गया॥

परिन्दों भरा आसमां रह गया

(बलराज कोमल की याद में)

परिन्दों भरा आसमां रह गया
सफर लफज का दरमियां रह गया
अभी साथ चलती थी काग़ज की नाव
अभी सिर्फ़ उसका धुंआ रह गया
रही लम्बी बारिश छतों पे मगर
वह अपना था इसका गुमां रह गया
तुम्हारी जगह दिल में मेहफ़ूज है
मेरी जान जा का ज़िया रह गया
अभी हाथ में गर्म था उसका हाथ
अरे यार 'कोमल' कहा रह गया

मो. 9427700736

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवाद

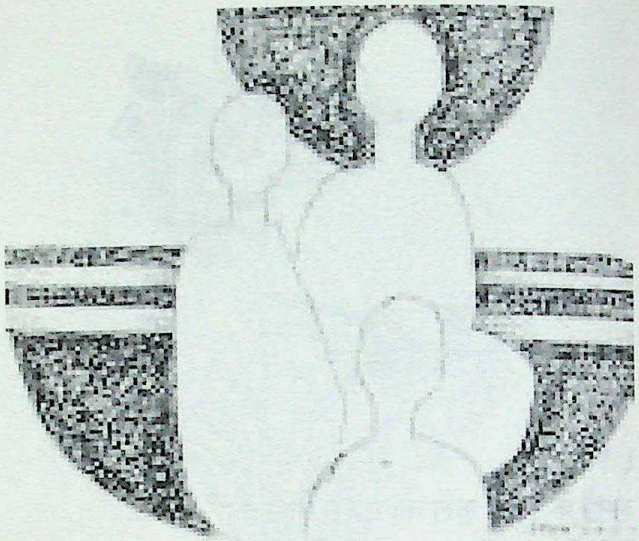

गांधी और मैं - संवाद

धनंजय वर्मा

(सुप्रसिद्ध आलोचक, गद्यकार व कवि)

श्रीमती विनय राजाराम: गांधी जी के प्रति आपका आकर्षण कब कैसे शुरू हुआ? गांधी जी तो टॉलस्टाय से प्रभावित थे। मार्क्स से वे जरूर परिचित रहे होंगे। गांधी और मार्क्स के विचार दर्शन तो परस्पर विरोधी समझे जाते हैं। आप इस अन्तर्विरोध का समाधान कैसे करेंगे?

धनंजय: गांधी जी के प्रति मेरा आकर्षण जीवन के उत्तरार्द्ध में हुआ। उसके पहले तो मार्क्सवाद और साम्यवादी दल से सम्बद्ध होने के कारण और प्रगतिशील लेखक संघ के सक्रिय सदस्यों की तरह मैं भी उन्हें 'पूँजीपतियों का दलाल' सरीखे अपमान जनक विशेषण से याद करने वालो में शामिल था। साम्यवादी दलों की कार्यनीतियों, प्रलेस की अन्तर्गुटीय कारस्तानियों के कारण मैंने दोनों से अपने सम्बन्ध तर्क कर लिये।

इसी भोपाल में किसी कार्यक्रम में मुख्यअतिथि या वक्ता की हैसियत से शामिल हुआ था। 'बुके' की जगह 'बुक' की परम्परा में मुझे भी भेंट स्वरूप दो-तीन पुस्तकों का एक पैकेट मिला। उसमें गांधी जी की आत्मकथा भी थी। सोने के पहले पढ़ने की आदत के चलते उत्सुकता वश मैंने उसे पढ़ना शुरू किया। उसने मुझे ऐसी गिरफ्त में लिया कि फिर उसे समाप्त करके ही सो पाया। उसने मुझे इतना प्रभवित किया कि फिर मैंने ढूँढ़-ढूँढ़ कर गांधी साहित्य पढ़ना शुरू किया। गांधी भवन के पुस्तकालय की सदस्यता ले ली। हिन्दी और अंग्रेजी में जितनी किताबें उपलब्ध हो सकीं- पढ़ता रहा उन्हें पढ़ा तो समझ में आया गांधी क्या थे और उनका महत्त्व विश्व मानवता के लिए क्या-कितना है। सौ खण्डों में प्रकाशित गांधी वाङ्मय के अलावा गांधी जी के पौत्र चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के श्री राजमोहन गांधी की अंग्रेजी में लिखी और पेंग्विन से 2006 में प्रकाशित जीवनी- मोहनदास-की 'पुस्तक सूची' में दो सौ सत्तावन पुस्तकों में से पच्च्यासी तो उनकी जीविनयाँ या जीवनी परक रचनाएँ हैं। इसके अलावा देश विदेश में उन पर उनके विचार दर्शन पर लगातार लिखा जा रहा है। उनकी विश्वव्यापी ख्याति और महत्त्व अकारण नहीं है।

वि. रा.: कहते हैं गांधी जी टॉलस्टाय से प्रभावित थे?

आपने सही कहा- गांधी जी टॉलस्टाय से प्रभावित थे। 1890 के आसपास लंदन में उनका परिचय टॉलस्टाय, रस्किन, थोरो, इमर्सन और कारपेन्टर के लेखन से हुआ।

वेन्कुअर, कैनेडा से प्रकाशित - 'फ्री हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री तारकनाथ दास के निवेदन पर 1908 में लिखा गया टॉलस्टाल का हस्तलिखित चार सौ तेरह पृष्ठों का एक पत्र टंकित होकर योरोप के भारतीयों के बीच प्रसारित हो रहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अहिंसक रणनीति में अनुशासन के प्रसंग में गांधी जी ने कहा- टॉलस्टाय ने संसार की तुलना एक ऐसे विशाल मंदिर से की थी जिसमें गुंबद के पास होकर ठीक बीच में प्रकाश पड़ता है। उन्होंने कहा था- एकत्र होने के लिए हमें एक-दूसरे की तलाश में नहीं जाना चाहिए।

गांधी जी को जब वह मिला तो उन्होंने टॉलस्टाय की अनुमति लेकर अपने पुराने मित्र प्राणजीवन मेहता की आर्थिक सहायता से उसकी बीस हजार प्रतियाँ छपवायीं। दक्षिण अफ्रीका में मेटलैण्ड द्वारा दी गयी टॉलस्टाय की पुस्तक 'द किंगडम आव गाड इज विदिन यू' से वे बहुत प्रभावित हुए-खास तौर पर 'सर्मन्स आन द माउन्टेन' से चुने गये इन पाँच सर्मन्स से-डू नाट हेट, डू नाट लस्ट, डू नाट होर्ड, डू नाट किल और लव योर एनीमीज। 1910 में अपनी मृत्यु से दो महीना पहले टॉलस्टाय ने 'गांधी जी के नाम पत्र' मैं ट्रांसवाल सत्याग्रह की अहमियत स्वीकार करते हुए लिखा था- ''गांधी दक्षिण अफ्रीका में अहिंसा का जो काम कर रहे हैं वह ऐसा है जिसमें किसी दिन सम्पूर्ण ईसाई और गैर ईसाई जगत को भाग लेना पड़ेगा।'' गांधी जी ने अपने जर्मन मित्र हरमन कॉलेनबारव द्वारा जोहांसवर्ग से इक्कीस मील दूर लॉली में खरीदी गयी एक हजार एक सौ एकड़ जमीन पर 'टॉलस्टाय फार्म' की स्थापना की थी। 1910 मैं ही टॉलस्टाय की मृत्यु पर 26 नवम्बर, 1910 के ' इंडियन ओपीनियन' में गांधी जी ने लिखा था - '' टॉलस्टाय सारी दुनिया में जाने-माने जाते हैं लेकिन एक सैनिक के रूप में नहीं हालांकि वे एक सम्मानित और कुशल सैनिक थे महान लेखक के रूप में भी नहीं हालांकि एक लेखक के रूप में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है, एक अभिजात व्यक्ति के रूप में भी नहीं हालांकि वे एक कुलीन और अत्यधिक धनी व्यक्ति थे दुनिया उन्हें दरअसल एक निहायत भले और भद्र इंसान के रूप में ज्यादा जानती है। हमारे लिए यह कम उत्साहवर्द्धक बात नहीं है कि हमें अपने काम के लिए टॉलस्टय सरीखे महानपुरूष का आशीर्वाद मिला है।''

न्यू टेस्टामेन्ट में 'पाँच रोटियों और दो मछलियों ' के चमत्कार की कहानी को टॉलस्टाय ने अपने अनोखे टंग से समझाया हैं। इसमे प्रेम या स्वेच्छा से बाँटकर खाने में सिद्धांत के पालन से हुए चमत्कार का जिक्र है। इससे प्रेरित होकर गांधी जी ने वाय. एम. सी. ए. मद्रास में 16 फरवरी 1916 के अपने भाषण में कहा था- ''यदि हम सब अपने लिए जितना काफी है उतना ही लें ओर उससे थोड़ा भी अधिक न लें तो इस संसार में दरित्रता नहीं रहेगी।'' ...गांधी जी का प्रसिद्ध वाक्य याद करे- ''इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की जरूरत की पूर्ति के लिए पर्याप्त है लेकिन किसी एक व्यक्ति की लिप्सा के लिए भी यह पूरी दुनिया अपर्याप्त है।'' गांधी जी से पूछा गया कि जिसने अपना सारा जीवन युद्ध में बिताया हो, वह सफलता पूर्वक अहिंसा को कैसे अपना सकता है ? गांधी जी ने उत्तर दिया था - ''टॉलस्टाय ने भी सेना में काम किया था। फिर भी वे यूरोप में अहिंसा के महान पुजारी बन गये।'' (*हरिजन 12 मई 1946*) 07 फरवरी 1947 के अपने प्रार्थना-प्रवचन में गांधी जी ने कहा था- ''मैं टॉलस्टाल के इस विचार से सहमत हूँ कि शरीर श्रम बौद्धिक कार्य को हानि पहुँचाने वाला नहीं है: बल्कि उसका गुण बढ़ाने वाला है।'' एक स्विस शांतिवादी महिमा मैडम एडमण्ड प्रिवाट को लिखे गये अपने पत्र में गांधी जी ने लिखा था - ''जब मैने टॉलस्टाय की 'हार्मनी आव द गास्पेल्स' और उनकी अन्य रचनाएँ पढ़ी तो यह अर्थ मेरे लिए और भी स्पष्ट हो गया कि निष्क्रिय प्रतिरोध को अहिंसक प्रतिकार समझने की भूल हमने की।''...दरअसल यूरोप ने नाजेरथ के ईसा के साहस, वीरता और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतिकार को भूल से 'निष्क्रिय प्रतिरोध' समझ लिया था। (*प्यारे लाल: पूर्णाहुति: 4:127-28*)

अहिंसक रणनीति में अनुशासन के प्रसंग में गांधी जी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने कहा था- ''टॉलस्टाय ने संसार की तुलना एक ऐसे विशाल मंदिर से की थी जिसमें गुंबद के पार होकर ठीक बीच में प्रकाश पड़ता है। उन्होंने कहा था- एकत्र होने के लिए हमें एक-दूसरे की तलाश में नहीं जाना चाहिए। हम सब तमाम दिशाओं से आकर एक स्थान पर एकत्र हो जायेंगे और हमें ऐसे मनुष्यों का साथ मिल जायेगा जिनकी हमने आशा नहीं की थी।'' *(प्यारेलाल: वही: 260-61)*

गांधी जी पर टॉलस्टाय के प्रभाव का यह संक्षिप्त ब्यौरा है। प्रसंगवश, महाकाय महाकाव्यात्मक उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' के अलावा अनेक उपन्यासों और प्रचुर रचनात्मक के साथ टॉलस्टाय ने 'कला क्या है?' भी लिखी है। इसमें वे आदर्शवादी विचारक के रूप में उपस्थित हैं। वे मानव संस्कृति का आत्यन्तिक लक्ष्य विश्वबन्धुत्व देखा करते हैं। उनके अनुसार वही साहित्य श्रेष्ठ है जो समस्त मानवता के लिए मंगलकारी हो। उनका दृष्टिकोण आश्चर्य जनक रूप से भारतीय साहित्य चिन्तन के निकट है जिसमें साहित्य मूल रूप से स+हित याने कल्याण के साथ है। भारतीय दृष्टि में साहित्य कला नहीं, विद्या है। टॉलस्टाय ने भी इस पश्चिमी सिद्धांत को अमान्य किया कि कला सौन्दर्य की वस्तु है और वह आनन्द प्रदान करती है। वे कहते हैं- ''कला आनन्द की वस्तु नहीं है। उसमें लोक मंगल समन्वित होना चाहिए। कला और साहित्य की मूल वस्तु है-भाव। ये भाव संक्रमणशील होते है। उनमें सम्प्रेषण का गुण होता है इसीलिए वे सिर्फ अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहते। पाठक श्रोता और दर्शक के हृदय में प्रवेश कर वे उसे प्रभावित करते है ''इसे टॉलस्टाय का 'संक्रमणशील सिद्धांत' कहा गया है। टॉलस्टाय का स्पष्ट निर्देश है कि जनता के भाव ही सच्चे भाव होते है। कला और विज्ञान के द्वन्द्व और विरोध को अस्वीकार कर टॉलस्टाय दोनों को एक-दूसरे से अनुस्यूत मानते हैं। समाज की आवश्यकता के अनुकूल ज्ञान की प्रस्तुति विज्ञान है और विज्ञान के सत्य को भावात्मक स्वरूप प्रदान कर कला अपनी संक्रमण शीलता से सामान्य जन में उसे प्रतिष्ठित करती है।

वि.रा. : गांधी की कालमार्क्स और मार्क्सवाद से असहमति के बारे में बताएँ?

कार्ल मार्क्स और मार्क्सवाद से गांधीजी की असहमतियों का विस्तार से जिक्र किया गया है। श्री राजमोहन गांधी 'मोहनदास' में रोम्याँ रोलाँ से गांधी जी की वार्ता का उल्लेख करते है। गांधी जी ने उनसे कहा था कि ''मैं रूसी प्रयोग को एक बुनियादी अविश्वास से देखता हूँ''। और प्यारेलाल जी बताते हैं कि पूना में नजरबंदी के दौरान गांधी जी ने मार्क्स को पढ़ा था। 'अ हैण्ड बुक ऑफ मार्क्सिज़्म' नामक पुस्तक के आरम्भ के कोरे पृष्ठ पर गांधी जी ने लिखा था- ''सब प्रत्येक के लिए और प्रत्येक सबके लिए। सबसे उनकी सामर्थ्य के अनुसार लिया जाय और सबको उनकी जरूरत के अनुसार दिया जाय।'' लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति का एक मार्ग अथवा सर्वोतम मार्ग मार्क्सवाद नहीं है। गांधी जी कहते है कि ''मार्क्सवादी श्रम करने वाले हाथ को बिल्कुल हटाकर उसकी जगह यंत्र वो देना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य के हाथ का कोई उपयोग नहीं है। मार्क्स के मतानुसार हाथ के श्रम पर निर्भर रहना श्रमिक की गरीबी और गुलामी का प्रतीक और उसका मूल कारण है। इस दुर्दशा से मजदूर का उद्धार यंत्र का काम है। इसके विपरीत मेरी राय है कि यंत्र उसे गुलाम बनाता है और हाथ का बुद्धिमत्ता पूर्वक उपयोग करने से ही श्रमिक को स्वतंत्रता और सुख दोनों प्राप्त होते हैं। मार्क्सवादी कुछ ऐसा समझते हैं कि विचार मस्तिष्क से झरने वाला रस है और मन और चित्त भौतिक वातावरण की प्रतिक्रिया है। मैं इसे स्वीकार नहीं करता।''

गांधी जी के विरुद्ध साम्यवादियों का यह आरोप था कि क्रान्ति का आरम्भ करके उन्होंने अपने मूल पूँजीवादी दृष्टिकोण के कारण अहिंसा का आग्रह रखा और क्रान्ति को उसके तर्कसंगत परिणाम तक नहीं जाने दिया। साम्यवादी नेता पी. सी. जोशी ने गांधी जी के नेतृत्व के लिए आग्रह किया था। इस पर प्यारेलाल जी की टिप्पणी है कि ''वे पहले गांधी जी के विरुद्ध थे। अधिकांश बातों में उनके और गांधी जी के बीच उत्तर-दक्षिण ध्रुव का अंतर था। मौकापरस्तों को बहुत दूर तक गांधीजी के साथ चलना सुविधाजनक प्रतीत नहीं होता था वे जल्द ही गांधी जी के साथ छोड़ देते थे।''...1941 में रूस पर नाजी आक्रमण के बाद साम्यवादियों ने यह घोषणा की, कि जिस युद्ध को वे अब तक 'साम्राज्यवादी युद्ध' कह रहे थे, वह अब 'जनता का युद्ध' हो गया है। साम्यवादी दल से प्रतिबन्ध हटा लिया गया और ब्रिटिश अधिकारियों के बीच अस्थायी संधि हो गयी। भारत छोड़ो आन्दोलन को विफल करने के लिए भी साम्यवादियों ने अपनी सारी शक्ति का उपयोग किया।

मार्क्स और मार्क्सवादियों से असहमति के बावजूद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी जी का दृष्टिकोण कट्टर और घुर विरोध का नहीं था। उन्होंने स्वीकार किया कि ''मार्क्स की शिक्षा प्राणवान तो इसी बात से बनी है कि वे सारी मानवजाति को अखंड और एक मानते थे। वर्गो के विभाजन से ऊपर उठकर उन्होंने संसार के गरीब, पीड़ित मेहनत कशों के ध्येय को अपना बना लिया था। हम मार्क्स की अलोचना कर सकते हैं परन्तु वे एक महापुरूष थे, इससे कौन इंकार कर सकता है। सामाजिक व्याधियों का उन्होंने जो विश्लेषण किया अथवा उनका जो इलाज उन्होंने बताया वह सही हो सकता है या नहीं भी हो सकता। मैं उनके आर्थिक सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करता परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि गरीबों को पीसा जा रहा है। इसके लिए कुछ न कुछ करना ही होगा। मार्क्स ने अपने ढंग से यह कार्य किया था। उनमें सूक्ष्म बुद्धि थी और प्रतिभा भी।''

प्यारेलाल जी का यह मन्तव्य है कि ''अधिकांश बातों में साम्यवादियों और गांधी जी के बीच उत्तर-दक्षिण ध्रुव का अंतर था।'' लेकिन मैं समझता हूँ कि गरीब, पीडित और मेहनतकश जनता की आत्यन्तिक चिन्ता और सरोकार की दृष्टि से मार्क्स और गांधी की समानता को नजरान्दाज नहीं किया जा सकता। इधर मार्क्स और गांधी के बारे में जो अध्ययन और चिन्तन मनन हो रहा है उसमें इन दोनों के बीच विरोध-अर्न्तविरोध से अधिक उनकी सम्मिलन भूमि की तलाश भी की जा रही है। 30 मार्च और 13 अप्रैल, 2018 के, 'फ्रंटलाइन' पत्रिका के, अकों में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के दार्शनिक और कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अकील बिल गिरामी का एक विस्तृत साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है- 'मार्क्स गांधी एण्ड द आइडियल आव अनएलियानेटेड लाइफ' और लेफ्ट नीडेड नाउ मोर दैन एव्हर बिफोर'। अकील बिलगिरामी का एक निबन्ध- 'गांधी: एक दार्शनिक' भी खासा प्रभावशाली और चर्चित हुआ है। इसमें वो सामान्यत: प्रचारित इस विचार- कि गांधी के चिन्तन में असंगतियाँ हैं और उनमें परस्पर विरोधी विखण्डन हैं- का प्रत्याख्यान किया गया है। उनका 'गांधी न्यूटन और ज्ञानोदय' निबन्ध भी खूब प्रसिद्ध हुआ है। उनकी 2014 में प्रकाशित दो पुस्तकों मार्क्स, गांधी एण्ड मार्डर्निटी' तथा 'सेक्सूलरिज्म: आइडेन्टिटी एण्ड एंचान्टमेंट'- में भी मार्क्स और गांधी के वैचारिक और सैद्धान्तिक समशील बिन्दुओं पर विस्तार से विवेचन हैं। वे मानते हैं कि गांधी एक गहन और मौलिक दार्शनिक हैं। उनमें राजनीतिक और उच्चतर दार्शनिक का समन्वय है। उनमें राजनीतिक क्रिया-कलाप उनके दार्शनिक विचारों से समाकलित हैं। इसे वे गांधी की सम्पूर्णता और सत्यनिष्ठा भी कहते हैं। वे मार्क्स और गांधी के बीच न केवल समानताएँ देखते हैं बल्कि उनकी ज्ञानमीमांसा में आधुनिकता और अलगाव (एलियानेशन) की समीक्षा में भी समरूपताएँ रेखांकित करते है। उनकी मान्यता है कि गांधी में एक दिलचस्प मौलिक उग्र-सुधारवादी या वामपंथी क्रान्तिकारिता है जिसे उनके लेखन और क्रिया-कलापों में-से उद्घाटित किया जा सकता है। वे मानते हैं कि इतिहासकार इरफान हबीब ने पहले-पहल गांधी के बारे में प्रचलित और प्रचारित वामपंथी रूढ़ियों का खण्डन किया । इरफान हबीब का गांधी के प्रति संवादी-परिप्रेक्ष्य ऐतिहासिक है जबकि अकील बिलगरीमी का परिप्रेक्ष्य दार्शनिक! अकील बिलगरामी मानते हैं कि पूँजीवाद', आधुनिकता और 'अलगाव' की आलोचना में मार्क्स और गांधी के दृष्टिकोण समान हैं। मार्क्स की आलोचना साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और पूँजीवाद की आर्थिक संरचना पर केन्द्रित है जबकि गांधी की आलोचना पूँजीवादी आधुनिकता के सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक निक्षेप (फॉलआउट) पर अधिक एकाग्र है। गांधी जी आधुनिकता के बारे में एक मूलभूत प्रश्न पूछते हैं- 'जीवनयापन के लिए दुनिया' की अवधारणा, कैसे और कब 'आधिपत्य और शासन के लिए दुनिया' की अवधारणा में बदल गयी ? गांधी इस प्रश्न को चार विस्तृत प्रश्नों में विभाजित करते हैं: पहला-कब और कैसे 'प्रकृति' की अवधारणा' प्राकृतिक संसाधनों' में रूपान्तरित हो गयी ? दूसरा कब और कैसे 'मानव' की अवधारणा 'नागरिक' में बदल गयी ? तीसरा कब और कैसे 'जन' की अवधारणा 'जनसंख्या' में परिवर्तित हो गयी ? और चौथा-कब और कैसे 'जीवन के लिए ज्ञान' की अवधारणा शासन के लिए विशेषज्ञता में तब्दील हो गयी ?

अकील बिलगरामी के अनुसार मार्क्स और गांधी दोनों ने अपनी क्रान्तिकारी राजनीतिक अवधारणाओं का बुनियादी और आत्यन्तिक लक्ष्य अलगाव को पराभूत करने और अलगाव विहीन जीवन के आदर्श की प्रतिष्ठा रखी। इसी कारण मनीषा महापात्र का 'मार्क्स और गांधी बौद्धिक साहचर्य' शीर्षक एक शोध आलेख भी प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने समाजशास्त्रीय सन्दर्भो में मार्क्स और गांधी के सामाजिक सरोकारों और उनकी वैचारिक समानताओं का विवेचन किया है।

मो. 9425019863

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

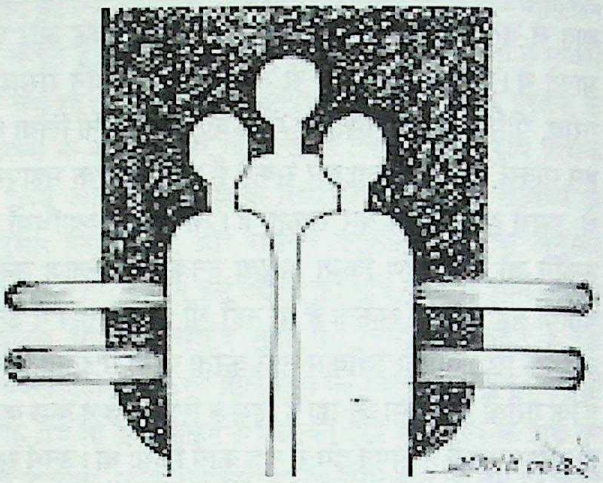

महात्मा गांधी डॉक्यूमेंट्री में

डॉ. विजय शर्मा
(फिल्म कला समीक्षक व आलोचक)

गांधी का जीवन और कार्य ऐसा था कि वे जीते-जी 'उदाहरण' बन गए। लाखों लोगों के जीवन को उन्होंने प्रभावित किया। 150 सालों के बाद भी उनकी जीवन पद्धति सामान्य लोगों, कलाकारों, रचनाकारों को प्रेरित करती है। एक बड़ी संख्या में लोग उनके प्रशंसक हैं, वहीं कुछ लोग उनके आलोचक भी हैं। लेकिन उनके कट्टर विरोधी भी उनकी महत्ता को स्वीकार करते हैं। सत्य और अहिंसा उनके जीवन के दो मूल मंत्र थे। His thought is ever relevant for all those who aspire for a better and fuller life.

मोहनदास करमचंद गांधी फिल्मों से सदा दूर रहे, उन्होंने अपने पूरे जीवन में मात्र दो 'मिशन टू मास्को' तथा 'ग्रामराज्य' - फिल्में देखीं। लेकिन उनके जीवन और कार्य पर हमें - न्यूजरील, न्यूज फुटेज़, फीचर फिल्म, लघु फिल्म, डॉक्यूमेंट्री -कई प्रकार की फिल्में प्राप्त होती हैं। इस आलेख में फीचर फिल्म तथा डॉक्यूमेंट्री का अंतर स्पष्ट करते हुए महात्मा गांधी पर बनी 3 डॉक्यूमेंट्री - ए. के. चेट्टियार निर्मित महात्मा गांधी 20 सेन्चुरी प्रोफ़ट (Mahatma Gandhi: 20th Century Prophet), विट्ठलभाई झावेरी कृत महात्मा: 'लाइफ ऑफ गांधी 1869-1948' (Mahatma: Life of Gandhi, 1869-1948) तथा मिशेल हुसैन की बीबीसी के लिए बनाई 'गांधी: हिज लाइ एंड लेगेसी', (Gandhi: His Life and Legacy) का विश्लेषण किया गया है।

फीचर फिल्म तथा डॉक्यूमेंट्री फिल्म में अंतर

According to Cambridge dictionary, "A film or television or radio programme that gives facts and information about a subject."

किसी विषय के बारे में तथ्य और सूचनाएँ प्रदान करने वाले फिल्म या टेलेविजन या रेडिओ प्रोग्राम को डॉक्यूमेंट्री (हिन्दी में वृत चित्र) कहते हैं।

फीचर फिल्म तथा डॉक्यूमेंट्री फिल्म दो अलग तरह की फिल्म हैं। दोनों में मुख्य रूप से कथ्य (विषय) और उद्देश्य में अंतर होता है। फीचर फिल्म मुख्यत: दर्शक का मनोरंजन करने के उद्देश्य से बनाई जाती है जबकि डॉक्यूमेंट्री फिल्म उन्हें शिक्षित करने, सूचना देने एवं प्रेरित करने के उद्देश्य को ध्यान में रख कर बनाई जाती है। फीचर फिल्म में कल्पना का पुट होता है लेकिन डॉक्यूमेंट्री यथार्थ को प्रस्तुत करती है तथा तथ्यों पर आधारित होती है। यह वास्तविक घटनाओं, लोगों, स्थितियों, भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का यथास्थिति चित्रण करती है। यह ऐतिहासिक दस्तावेजीकरण (रिकॉर्ड) होता है। दोनों तरह की फिल्मों में शूटिंग से पहले स्क्रिप्ट तैयार की जाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉक्यूमेंट्री कम बजट में बन जाती है और इस में सेट अथवा अभिनेताओं की आवश्यकता नहीं होती है। हाँ, संबंधित लोगों के साक्षात्कार का इसमें समावेश किया जाता है। डॉक्यूमेंट्री कभी-कभी अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए डॉक्यूड्रामा का प्रयोग करती है। डॉक्यूमेंट्री मे किसी घटना को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना डॉक्यूड्रामा कहलाता है।

According to Merriam Webster dictionary, "Documentary is a presentation (such as a film or novel) expressing or dealing with factual events.

-being or consisting of documents : contained or certified in writing.

-of, relating to, or employing documentation in literature or art.

-*broadly* : Factual, Objective"

गांधी डॉक्यूमेंट्री में

मोहनदास करमचंद गांधी के जीवन तथा कार्यों पर कई फीचर फिल्मों के अलावा मुख्य रूप से 'महात्मा गांधी टॉक्स' (1931) 'महात्मा गांधी 20th सेन्चुरी प्रोफट' (1941), 'महात्मा: लाइफ ऑफ गांधी, 1869-1948 (1968) गांधी: हिस लाइफ एंड लेगेसी' (2009) डॉक्यूमेंट्री प्राप्त होती हैं। एक समय की प्रसिद्ध फिल्म इंडिया पत्रिका में 1940 के मार्च अंक में एक पोस्टर प्रकाशित हुआ था, महात्मा गांधी फिल्म स्टार बन गए (Mahatma Gandhi becomes a film star) यह फिल्म थी ए. के. चेट्टियार (अन्नमलाई करुपन चेट्टियार Annamalai Karuppan Chettiar) की 'महात्मा गांधी: 20th सेन्चुरी प्रोफ़ेट'। बाद में जिसकी विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में भी चर्चा हुई। प्रो. वेंकटाचलम बताते हैं. चेट्टियार 26 साल के थे जब उन्होंने प्रयास प्रारंभ किया। वे 29 के थे जब उन्होंने फिल्म 'महात्मा गांधी : 20th सेन्चुरी प्रोफ़ेट' पूरी की।

गांधी पर बनी इस पहली डॉक्यूमेंट्री का प्रारंभ बुद्ध स्मारक से होता है, जो अहिंसा का प्रतीक है। तब यूनाइटेड नेशन्स का झंडा झुकता दिखाया जाता है और दर्शक एक अंतिम संस्कार में लाखों लोगों को शोक मनाते देखता है। नरेटर की आवाज उभरती है, 'कौन है यह व्यक्ति जिसके लिए सारी दुनिया को शोक मनाना चाहिए ? जबकि वह बिना धन या गन की शक्ति के था। इसके बाद हम देखते हैं 1912 में गोखले का दक्षिण अफ्रीका आना, जिनके साथ सूटेड-बूटेड मोहनदास करमचंद गांधी हैं। 1930 में नमक इकट्ठा करने से पहले गांधीजी समुद्र में स्नान कर रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू का चर्खा कातना, गांधी का एक बच्चे के साथ खेलना, गांधी की डाँडी यात्रा, बेटा देवदास का पिता मोहनलाल के पैर दबाना, औरतों का सामूहिक रूप से चरखा कातना आदि इस वृतचित्र के कुछ प्रमुख दृश्य हैं। 40 साल के लंबे समय से खोई हुई इस फिल्म को 2006 में मद्रास इंस्टीटियूट ऑफ डेवेलपमेंट स्टडीज, चेन्नई के एसोशिएट प्रोफ़ेसर डॉ. ए.आर. वेंकटाचलम ने अमेरिका से खोज निकाला है। यह संस्करण चेट्टियार ने 1953 में इंग्लिश में हॉलीवुड के लिए बनाया था। मगर मूल तमिल डॉक्यूमेंट्री बहुत लंबी थी।

ए. के. चेट्टियार तमिलनाडु के काराइकुडि के निकट कोट्टियुर के रहने वाले थे। वे गांधी के अहिंसा, सत्याग्रह और मानवता के दर्शन से प्रभावित और प्रेरित थे। इस सरल-सहज व्यक्ति ने खुद को सदैव लाइम लाइट से दूर रखा। चेट्टियार ने टोकियो के इंपीरियल कॉलेज ऑफ फोटोग्राफी का प्रशिक्षण लिया और आगे की ट्रेनिंग न्यूयॉर्क के इंस्टीट्यूट ऑफ फोटोग्राफी से ली। वे तमिल मासिक पत्रिका 'कुमारी मलर' (1943-1983)के संस्थापक और संपादक थे। इस पत्रिका में गांधी के विचारों यथा खादी, अछूतोद्धार, दलित के मंदिर प्रवेश अधिकार संबंधित आलेख प्रमुखता से प्रकाशित होते थे। लेखक तथा फिल्म इतिहासज्ञ एस. थियोडोर बालकरण ने इस डॉक्यूमेंट्री से संबंधित एक लेख, 'द मेकिंग ऑफ महात्मा गांधी' नाम से 29 सितंबर, 2002 को 'द हिन्दू' अख़बार में प्रकाशित किया जिसमें वे चेट्टियार की मेहनत और लगन के विषय में लिखते हैं। डबलिन से लौटने के बाद चेट्टियार ने डॉक्यूमेंट्री फिल्मस् लिमिटेड नाम से एक कम्पनी की स्थापना की और अपने स्वप्न को साकार रूप देने में जुट गए।

महात्मा, महान तमिल राष्ट्रवादी कवि सुब्रमनियन भारती,राजाजी के प्रशंसक घुमक्कड़ पत्रकार चेट्टियार (अन्नामलाई करुप्पन चेट्टियार) 1937 में गांधी के जन्मदिन 2 अक्टूबर, को जहाज पर न्यूयॉर्क से डबलिन के लिए जा रहे थे तब उनके मन में गांधी पर डॉक्यूमेंट्री बनाने का विचार आया। अगले ढ़ाई वर्ष चेट्टियार ने चार महादेशों की यात्रा कर गांधी पर तीन दशक से ऊपर उपलब्ध 50,000 फीचर फिल्म जमा की,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

100 से ऊपर कैमरामैन के काम को जमा किया, खुद भी गांधीजी के फुटेज लिए और एडिट कर 12,000 फुट की करीब 2 घंटे लंबी डॉक्यूमेंट्री महात्मा गांधी: 20th सेन्चुरी प्रोफ़ेट' नाम से तमिल भाषा (बाद में तेलगू भाषा में डब किया) में बनाई। इसमें सिनेमा -टोग्राफर पी.वी.पाथे का भी सहयोग था। सोर्बोन यूनिवर्सिटी से शिक्षित पाथे इस फिल्म के टेक्निकल डॉयरेक्टर थे। इस डॉक्यूमेंट्री के बनने के दौरान ही बॉम्बे क्रोनिकल के अहमद अब्बास ने इसके विषय में लिखा फिर कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं में इसकी चर्चा हुई।

मूल 'महात्मा गांधी: 20th सेन्चुरी प्रोफेट' डॉक्यूमेंट्री की तलाश होनी चाहिए क्योंकि यह गांधी की विरासत को प्रस्तुत करती है और यह हमारी विरासत है। क्योंकि यह डॉक्यूमेंट्री 1912 में साउथ अफ्रीका में गोपाल कृष्ण गोखले के आगमन का दस्तावेज है, शायद यह गोखले का एकमात्र फूटेज है। यह बालगंगाधर तिलक के अंतिम संस्कार को भी दिखाती है।

23 अगस्त, 1940 में यह तमिल कमेंट्री के साथ रिलीज हुई, बाद में तेलगू भाषा में इसे डब किया गया। लेकिन जल्द ही तत्कालीन सरकार के दबाव से इसे थियेटर से उठा लिया गया। इसका प्रदर्शन ठीक स्वतंत्रता के पूर्व 14 अगस्त, 1947 में हिन्दी कमेट्री के साथ हुआ। फिर यह विरासत (मूल तमिल, तेलगू और हिन्दी संस्करण) परिदृश्य से गायब हो गई। चेट्टियार ने 1953 में हॉलीवुड में इंग्लिश कमेट्री के साथ इसकी रिएडीटिंग कर इसे 81 मिनट की बनाया। 72 वर्ष की उम्र में चेट्टियार की मृत्यु 10 सितंबर, 1983 में हुई।

1953 के हॉलीवुड संस्करण से 1998 में एडिथ मार्टिन ने अमेरिकन अकादमी ऑफ एशियन स्टडीज के लिए 50 मिनट का एक लघु संस्करण बनाया। इसमें नरेशन कैन्टीन रेनॉल्ड का है।

चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत पर बल देती है, नरेटर कहता है, 'एक महान शक्ति जिसका अपना नियम हैं, जिसे सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए। डाँडी मार्च के दृश्य पर टिप्पणी है' 61 साल के एक छोटे से आदमी ने 1930 में नमक इकट्ठा करने के लिए मार्च शुरु किया, उसके साथ 79 लोगों का समूह था लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गए इसमें हजारों लोग जुटते गए। सारी दुनिया से पत्रकार इस यात्रा की रिपोर्टिंग करने आए। राह में आया प्रत्येक गाँव इन यात्रियों के स्वागत के लिए सज-धज कर खड़ा था और 'सत्यमेव जयते' का नारा लगा रहा था।

मद्रास कांग्रेस, लाहौर कांग्रेस, गोलमेज कॉन्फ्रेंस के फुटेज हैं। सुभाषचंद्र बोस, राजेंद्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद, खान अब्दुल ग़फ्फार खान, राजाजी, जे.बी. कृपलानी, सरोजिनी नायडू, राधाकृष्णन जैसी ऐतिहासिक हस्तियाँ डॉक्यूमेंट्री महात्मा गांधी: 20th सेन्चुरी प्रोफेट' में नजर आती हैं।

एक अन्य दृश्य जो दर्शक का ध्यान खींचता है और गांधी का सामान्यजन पर प्रभाव दिखाता है, वह है औरतों का सामूहिक चरखा चलाना। यही एकमात्र दृश्य अलग से शूट किया गया था। इसके लिए चेट्टियार खुद तमिलनाडु के कपड़ा निर्माण शहर तिरुपुर गए। वहाँ उन्होंने अपने खर्च पर 2000 औरतों को इस शूट के लिए तैयार किया और यह दृश्य तैयार किया जिसमें कर्नाटक गायिका डी.के. पट्टाम्माल ने पार्श्व स्वर में स्तत्रंतता सेनानी नामक्कल रामलिंगम का लिखा तमिल गीत 'आडु रात्ते' (चरखा चलने दो) गाया है। तेलगू संस्करण में इसे टी. सूर्य कुमारी ने गाया है।

चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री के इस अंश को सिनेमा की भाषा में देखें तो हम पाते हैं कि उस समय तक फिल्म एडीटिंग तकनीकी बहुत विकसित नहीं हुई थी, अत: यहाँ हम मूलत: कट.टू.कट एडीटिंग पाते हैं। साथ ही फुटेज को क्लोज अप, मिड शॉट एवं लॉन्ग शॉट में एडिट किया गया है। स्थान प्रोफाइल वाले शॉट में चर्खे की गति और लय को बनाए रखने का प्रयास किया गया है जिसकी गतिशीलता से समाज में उसके व्यवहार

CC-0. Mangalam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'बुराई के बदले भलाई' गांधी का प्रमुख सिद्धांत था। सत्य, अहिंसा, शांति के लिए गांधी ने आजीवन संघर्ष किया। उन्होंने मुसोलिनी और हिटलर को पत्र लिख कर द्वितीय विश्वयुद्ध रोकने का प्रयास किया।

में होने वाले अर्थ को व्यंजित किया जा सके। दर्शक को बाँधे रखने के लिए शॉट्स को त्वरित गति में कट किया गया है। साथ ही दिन की रोशनी में उभरी छायाओं को रखकर एडिटर ने अपनी कलात्मक अभिरूचि का परिचय दिया है।

फिल्म इतिहासकार एस. थियोडोर भास्करन ने 29 सितंबर 2002 के 'द हिन्दू' पेपर में चेट्टियार की इस डॉक्यूमेंट्री निर्माण के विषय में लिखा है। चेट्टियार ने 'कुमारी मलर' में इस डॉक्यूमेंट्री को बनाने की बाबत भी लिखा। यह बाद में तमिल किताब 'अनल अदिचुवाटिल' (Annal Adichuvattil) की शक्ल में प्रकाशित हुई, हाल में जिसका प्राक्कथन लेखन और संपादन वेंकटाचलपति ने किया और जो अब इंगलिश में In the Footsteps of the Mahatma नाम से ओरियंट लॉन्गमैन से प्रकाशित है। इस किताब का तमिल संस्करण Kalachuvadu Pathipagam, Nagercoil, Tamil Nadu से प्रकाशित है। इसी किताब को संपादित करते हुए वेंकटाचलपति को इस खोई हुई डॉक्यूमेंट्री को खोज निकालने का ख्याल आया और उन्होंने इसका संक्षिप्त संस्करण खोज निकाला।

मूल 'महात्मा गांधी: 20th सेन्चुरी प्रोफेट' डॉक्यूमेंट्री की तलाश होनी चाहिए क्योंकि यह गांधी की विरासत को प्रस्तुत करती है और यह हमारी विरासत है। क्योंकि यह डॉक्यूमेंट्री 1912 में साउथ अफ्रीका में गोपाल कृष्ण गोखले के आगमन का दस्तावेज है, शायद यह गोखले का एकमात्र फ़ुटेज है। यह बालगंगाधर तिलक के अंतिम संस्कार को भी दिखाती है।

महात्मा: लाइफ ऑफ गांधी, 1869-1948

1968 में गांधीजी के एक अनुयायी सामाजिक कार्यकर्ता, फोटोग्राफर लेखक विट्ठलभाई झावेरी ने उनके जीवन को 'महात्मा: लाइफ ऑफ गांधी, 1869-1948 में डॉक्यूमेंट्री की शक्ल में प्रस्तुत किया है। इस करीब साढ़े पाँच घंटे (इंग्लिश) की डॉक्यूमेंट्री की स्क्रिप्ट, नरेशन तथा निर्देशन झावेरी ने स्वयं किया है। उन्होंने डांडी यात्रा से लेकर गांधी की मृत्यु तक का दस्तावेजीकरण स्वयं किया है, बाकी के लिए उन्होंने दुनिया भर से जमा किए विभिन्न फोटोग्राफ तथा फ़ुटेज का उपयोग किया है। यह वृतचित्र द गांधी नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट तथा भारत सरकार के फिल्म डिविजन के सहयोग से निर्मित हुआ है। भारत सरकार ने विट्ठलभाई झावेरी को 1968 में पद्म भूषण सम्मान प्रदान किया।

महात्मा के विचारों को सुनाती श्वेत-श्याम 'महात्मा: लाइफ ऑफ गांधी, 1869-1948' डॉक्यूमेंट्री गांधीजी के जीवन के विभिन्न आयामों को 33 रील (14 अध्यायों में) चित्रित करती है। अधिकांश हिस्सा गांधी के अपने शब्दों में प्रस्तुत है। इसमें भारत के बनते हुए इतिहास को देखा जा सकता है। इसे गांधी फाउंडेशन की साइट पर देखा जा सकता है। इसे यूट्यूब पर भी देखा जा सकता है।

कई वर्षों की मेहनत से बनी यह डॉक्यूमेंट्री कई भाषाओं में (इंग्लिश, हिन्दी, जर्मन), विभिन्न अवधि तथा भिन्न संस्करण में उपलब्ध है। यह गांधी की पोशाक के बदलाव और उनके व्यक्तित्व विकास को क्रमिक रूप से दिखाती है। 6 अप्रैल, 1930 को जब गांधी ने नमक मुट्ठी में उठाया उसे भी दिखाती है। डांडी यात्रा के बिना गांधी पर बनी कोई फिल्म पूरी नहीं हो सकती है। इसी यात्रा के समय से बिट्ठलभाई झावेरी महात्मा से हमेशा के लिए जुड़ गए।

'बुराई के बदले भलाई' गांधी का प्रमुख सिद्धांत था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सत्य, अहिंसा, शांति के लिए गांधी ने आजीवन संघर्ष किया। उन्होंने मुसोलिनी और हिटलर को पत्र लिख कर द्वितीय विश्वयुद्ध रोकने का प्रयास किया। चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री में औरतों का चरखा चलाने वाला दृश्य यहाँ भी उपलब्ध है। झावेरी की डॉक्यूमेंट्री 'महात्मा: लाइफ ऑफ गांधी, 1869-1948' नमक सत्याग्रह और डाँडी यात्रा को बहुत विस्तार से दिखाती है। गांधी के लिए यह सिर्फ नमक कानून तोड़ने का मामला नहीं था। 9 मार्च को प्रारंभ हुई 241 मील लंबी पैदल यात्रा में वे जिस गाँव से गुजरे वहाँ उन्होंने लोगों से सामाजिक सुधार की बात की, अपने असहयोग और अहिंसा तथा सत्य के सिद्धांत लोगों को समझाए। इसी का नतीजा था जब 6 अप्रैल, 1930 को उन्होंने नमक बनाया को हजारों अनुशासनबद्ध लोग उनके साथ थे। 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा 'महात्मा गांधी की जय' में परिवर्तित हो चुका था।

बीबीसी की गांधी: हिज लाइफ एंड लेगेसी

यूट्यूब पर गांधी से जुड़ी एक और विशेष उल्लेखनीय डॉक्यूमेंट्री मिलती है, इसे गांधी जयन्ति के उपलक्ष्य पर 2009 में बीबीसी पर प्रस्तुत किया गया था। बीबीसी के लिए पत्रकार और न्यूजरीडर मिशेल (Mishal) हुसैन ने ' गांधी: हिज लाइफ एंड लेगेसी' नाम से इसे बनाया है, नरेटर भी वे स्वयं हैं, लोगों का साक्षात्कार करती हैं। यह अलग ही तरह से इस युग

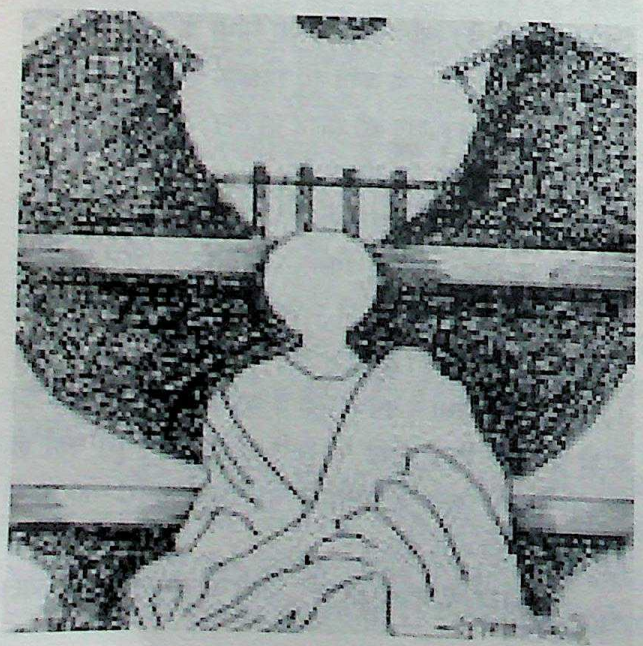

पुरुष का आकलन करती है। यह डॉक्यूमेंट्री एक तरह से गांधीजी के जीवन का यात्रा वृतांत प्रस्तुत करती है। प्रस्तुतकर्ती पाकिस्तानी मूल की ब्रिटिश नागरिक मिशेल हुसैन उन सभी जगहों पर जाती हैं जहाँ-जहाँ अपने जीवन काल में गांधी जी थे। डॉक्यूमेंट्री गांधी के विवादास्पद पक्ष की भी पड़ताल करती है।

एक साक्षात्कार में वे कहती हैं, इस प्रोजेक्ट से उनके मन में गांधी के कार्यों के प्रति प्रशंसा बढ़ गई। उन्होंने कितने लोगों के जीवन को स्पर्श किया इस बात से वे प्रभावित हैं। साक्षात्कार के अलावा इस फिल्म में फुटेज सहारा लिया गया है। यूट्यूब पर इस डॉक्यूमेंट्री को अपलोड करने वाले ने इसे ब्रिटिश प्रोपेगंडा कहा है लेकिन जब मैंने इस तीन घंटे की तीन एपीसोड द- 'द मेकिंग ऑफ द महात्मा', ' द राइज टू फ्रे म' तथा 'द रोड टू फ्रीडम'- में बनी फिल्म को देखा तो मुझे ऐसा नहीं लगा। यह मुझे गांधी की जीवन यात्रा लगी। हो सकता है मिशेल हुसैन के पाकिस्तानी मूल का होने के कारण ऐसा पूर्वाग्रह रहा हो।

डॉक्यूमेंट्री 'द मेकिंग ऑफ द महात्मा' आर्काइव और विशेषज्ञ के माध्यम से भारत विभाजन को एक जटिल मुद्दा बताती है और कहती है इसमें गांधी की भूमिका बहुत विवादास्पद है। जहाँ-जहाँ गांधी अपने जीवन काल में रहे थे- राजकोट, लंदन, पिटोरिया, जोहांनसबर्ग, दिल्ली, बंबई, डांडी, अहमदाबाद आश्रम, बिडला भवन -मिशेल उन सब स्थानों जाती हैं। मिशेल आधिकारिक सूत्रों के हवाले से गांधी की सीमाओं के साथ उनकी विशिष्टताओं को दिखाती हैं। डॉक्यूमेंट्री में गांधी के जीवन की प्रमुख घटनाओं, ऐतिहासिक दृश्यों, मुख्य प्रभावकारी और प्रेरक संदर्भों आदि का फिल्मांकन है। मिशेल ने टॉनी बेन, लक्ष्मी सिंह तिकारी, इंदिरा अठावले, राज मोहन गांधी, रुद्रांग्शू मुखर्जी, त्रिदीप सुहुर्द, नारायण देसाई, प्रो. मृदुला मुखर्जी, विलियम डालरिम्पल, इला गांधी, प्रेम नायडू, फातिमा मीर ;' अप्रेंटिसशिप ऑफ ए महात्मा' की लेखिका- के साक्षात्कार से अपनी बात स्पष्ट करने की चेष्टा की है। यह डॉक्यूमेंट्री इस जादूई व्यक्तित्व गांधी को साहसी, जटिल व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है जो दुनिया के लिए अहिंसा और असहयोग का मूर्त रूप बन गया। यह गांधी के जीवन और उनके कार्यों के विविध पक्षों को दिखाने का एक अच्छा प्रयास है।

पीटरमारित्जबर्ग स्टेशन का वेटिंग रूम जो अब गांधी स्मारक बन चुका है मिशेल वहाँ भी दर्शकों को ले जाती हैं और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस घटना को उनके जीवन का टर्निंग पॉइंट कहती हैं। जब सारा देश स्वतंत्रता का जश्न मना रहा था तब गांधी इनसे अलग कलकत्ता में रह रहे थे, दंगे शांत कराने की चेष्टा कर रहे थे। गांधीजी ने अछूतों के लिए बहुत कार्य किया मगर आज अछूत उन्हें अपना मानने से इंकार करते हैं। मिशेल संदेह और शंकाओं के साथ अपना कार्य प्रारंभ करती हैं और गांधी महत्ता को स्वीकारते हुए डॉक्यूमेंट्री का अंत करती हैं।

तीनों डॉक्यूमेंट्री का तुलनात्मक अध्ययन

चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री प्रथम होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। उन्होंने अपनी प्रेरणा, मेहनत, लगन से 'महात्मा गांधी: 20th सेंचुरी प्रोफेट' बनाई। विट्ठलदास झावेरी की डॉक्यूमेंट्री 'महात्मा: लाइफ ऑफ गांधी, 1869-1948' गांधी नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट तथा भारत सरकार के फिल्म डिविजन के सहयोग से बनी है। मिशेल हुसैन की ' गांधी: हिज लाइफ एंड लेगेसी' डॉक्यूमेंट्री बीबीसी द्वारा कमिशन्ड है। चेट्टियार.झावेरी की ब्लैक एंड व्हाइट की तुलना में मिशेल की रंगीन डॉक्यूमेंट्री एक खुशनुमा वातावरण उपस्थित करती है और तकनीकी विकास के कारण अधिक आकर्षक नजर आती है। साक्षात्कार इसे जीवंत बनाते हैं।

चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री कई स्थानों पर गांधी की आवाज का प्रयोग करती है जबकि झावेरी की डॉक्यूमेंट्री गांधी के शब्दों को भी झावेरी की आवाज में प्रस्तुत करती है।

सब विवादों से बचते हुए केवल उज्जवल पक्ष को दिखाना झावेरी और चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री का ध्येय है। हुसैन की डॉक्यूमेंट्री गांधी से संबंधित विवादों की पड़ताल करती है। वह खिलाफत आंदोलन, देश के बँटवारे में गांधी की भूमिका, गांधी के विचारों में विचलन को भी उजागर करती है।

चेट्टियार की फिल्म में डांडी यात्रा के समय लोगों को 'सत्यमेव जयते' का नारा लगाते कहा गया है जबकि झावेरी की फिल्म कहती है, लोग 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारे लगा रहे थे। पाँच घंटे से ऊपर की झावेरी की फिल्म गांधी के किसी विरल पक्ष पर प्रकाश नहीं डालती है, सिवाय ऐतिहासिक घटनाओं को चित्रों में प्रस्तुत करने के। चेट्टियार की डॉक्यूमेंट्री एक घंटे की है तो मिशल की तीन घंटे की। चेट्टियार और झावेरी की फिल्में मात्र डॉक्यूमेंट्री हैं जबकि मिशेल की फिल्म जीवंत होने के कारण हमारा मनोरंजन भी करती है। उनकी आवाज में उनका कन्सर्न और उत्साह दोनों झलकता है।

चेट्टियार तथा झावेरी के यहाँ एडीटिंग तथा साउंड रिकॉर्डिंग में कोई नवीनता नहीं है। जबकि मिशेल हुसैन की डॉक्यूमेंट्री स्क्रिप्ट, शूटिंग, एडीटिंग, साउंड सबमें कल्पना और नवीनता का प्रयोग करती है। समय बहुत बदल गया है। अगर हम मिशेल की डॉक्यूमेंट्री का गांधीजी का नमक एकत्र करने वाला सीन देखें तो हम पाते हैं कि इस दृश्य में क्रॉसफेड, कट के साथ-साथ कैमरा ऊपर-नीचे टिल्ट किया गया है, पैन दाएँ और बाएँ है और जूम का भी प्रयोग हुआ है।

तीनों डॉक्यूमेंट्री मिल कर गांधीजी के जीवन व देश के राजनैतिक-सामाजिक जीवन में उनकी भूमिका को समझने में सहायक होती हैं।

मो. 8789001919

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी और सिनेमा : कुछ अंतर्कथाएँ

दिलीप शाक्य
(चर्चित युवा कवि, फिल्म कला समीक्षक)

(1)

सिनेमा के बारे में गांधी जी के विचार सकारात्मक नहीं थे। इसका कुछ जायज़ा अलग-अलग अवसरों पर सम्पन्न हुई उनकी वार्ताओं से मिलता है। 1927 में भारतीय सिनेमा की सिल्वर जुबली मनाई जा रही थी। इस अवसर पर इंडियन सिनेमेटोग्राफ कमेटी ने गांधी जी को एक प्रश्नावली भेजी थी। इंडियन सिनेमेटोग्राफ कमेटी भारत में भारतीय एवं ब्रिटिश फिल्मों के प्रदर्शन एवं नियमन के लिए गठित की गयी थी। उस दौर के प्रसिद्ध अधिवक्ता श्री रंगाचारी इसके अध्यक्ष थे। कमेटी ने गांधी जी से मुलाक़ात की लेकिन प्रश्नावली का जवाब गांधीजी ने इन शब्दों में दिया- ''वैसे तो मुझे आपकी प्रश्नावली का उत्तर नहीं देना चाहिए क्योंकि मैं कभी सिनेमा देखने नहीं गया लेकिन फिर भी एक आगन्तुक के नज़रिए से देखें तो जो बुराइयाँ इसने पैदा की हैं वो प्रत्यक्ष हैं। यदि इसने कुछ अच्छा काम किया है तो उसे अभी साबित होना है।''

स्पष्ट है कि सिनेमा गांधीजी की नजर में बुराई का वाहक था अच्छाई का नहीं। अधिक स्पष्टता के लिए सिनेमा से संबंधित उनकी कुछ टिप्पणियों का संदर्भ यहाँ दिया जा रहा है-

''एक जर्मन मित्र बताते हैं कि किसी जर्मन समाचार पत्र ने मुझ पर एक फिल्म कम्पनी को प्रमोट करने का आरोप लगाया है। वह निंदोष लेखक नहीं जानता कि मैं कभी सिनेमा देखने नहीं गया और इसके तथा ईश्वर द्वारा प्रदत्त मूल्यवान समय को नष्ट करने के प्रति मुझ में कोई रुचि नहीं है, कभी-कभी मित्रों के दबाब के बावजूद। मित्र कहते हैं कि सिनेमा में शिक्षाप्रद मूल्य हैं। संभव है कि हों। लेकिन सिनेमा के भ्रष्ट प्रभाव ने हर दिन मुझे हतोत्साहित ही किया है। इसलिए शिक्षा मैं अन्य चीजों में तलाश करता हूँ।'' *(25 नवम्बर 1926) अहमदाबाद, यंग इंडिया।*

''आप थिएटर और सिनेमा से दूर रहें। मनोरंजन वह होता है जिसमें आप स्वयं का अपव्य नहीं बल्कि स्वयं की पुनर्रचना कर सकें। इसलिए आपको भजन-मंडलियों में जाना चाहिए जहाँ शब्द और धुन आपकी आत्मा को ऊँचा उठाने का काम करते हैं।'' *(24 मार्च 1927) बम्बई एवं पूना यंग इंडिया,*

''सिनेमा, रंगशालाएँ, रेसकोर्स, शराबख़ाने और अफीम के अड्डे-ये सब समाज के शत्रु हैं। वर्तमान व्यवस्था इन्हें बढ़ावा देती है। ये हर तरह से हमारे लिए खतरा हैं।'' *(10 मार्च 1929, रंगून में मज़दूरों को दिया गया भाषण)*

''सिनेमा के बारे में मुझे पता नहीं लेकिन नाट्य-मंचन का महत्त्व तो है। ईश्वर के अनुभव के लिए अपरिग्रह की सर्वोत्तम विधि है। इसमें सब समाहित है।'' (12 मई, 1932, प्रेमाबेन कन्तक को लिखा गया एक पत्र।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यद्यपि गांधी जी ने यह अनेक बार कहा कि वे कभी किसी थिएटर में सिनेमा देखने नहीं गए फिर भी विभिन्न संदर्भों में यह जिक्र मिलता है कि उन्हें उनके जीवनकाल में सिर्फ दो फिल्में दिखाई जा सकीं। दोनों ही फिल्में उन्होंने 1944 में देखीं। एक भारतीय फिल्म थी दूसरी अमेरिकी। भारतीय फिल्म का नाम रामराज्य था और अमेरिकी फिल्म थी मिशन टू मॉस्को। मिशन टू मॉस्को उन्हें अच्छी नहीं लगी थी। इसके प्रदर्शन के संदर्भ में एक किताब में यह विवरण मिलता है-

''गांधीजी के मनोरंजन के लिए मोरारजी परिवार ने घर पर ही एक चर्चित फिल्म का आयोजन किया। फिल्म का नाम मिशन टू मॉस्को था जो युद्ध के दौरान क्रेमलिन में अमेरिकी राजदूत के रोमांचक कारनामों पर आधारित थी। निश्चित रूप से गांधी के लिए ग़लत फिल्म का चुनाव किया गया था क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच संधि की कल्पना और उनकी मिली जुली शक्ति को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया था। प्रोजेक्टर लगा दिया गया था। करीबन सौ लोग आमंत्रित थे। गांधी सबसे आगे बैठे हुए थे और अमेरिकी राजदूत के मसखरेपन को अविश्वास से देख रहे थे पर गांधी की सबसे बड़ी आपत्ति महिला कलाकारों के छोटे कपड़ों और नृत्य के दौरान शारीरिक निकटता को लेकर थी। उनके अनुसार युवाओं पर इनका नकारात्मक प्रभाव ही पड़ता।''

मिशन टू मॉस्को 1943 की फिल्म है जिसे माइकल कार्तीज़ ने निर्देशित किया था। हंगरी की राजधानी बुदापैश्त में जन्मे कार्तीज़ यहूदी थे। उनका हंगेरियन नाम मिहाइ कार्तेश था। वे यूरोप और अमेरिका के सफलतम निर्देशकों में गिने जाते हैं। साइलेंट और गोल्डन ऐरा के दौर में उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण फिल्मों का निर्देशन किया था। मसलन 1942 की कासाब्लान्का।

विवरण से स्पष्ट है कि उस दौर के इस सफल और श्रेष्ठ फिल्मकार का काम भी सिनेमा के बारे में गांधी जी की राय नहीं बदल सका था। युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव, महिलाओं के छोटे कपड़े और नृत्य के दौरान शारीरिक निकटता जैसा ऐतराज बताता है कि समाज के बारे में उनके नैतिक आग्रह कितने दृढ़ थे।

गांधी जी को दिखाई गयी दूसरी फिल्म एक भारतीय फिल्मकार विजय भट्ट द्वारा निर्मित और निर्देशित थी। नाम था रामराज्य। संयोग से यह भी 1943 का ही किस्सा है। रामराज्य, अयोध्या वापसी के पश्चात एक धोबी के ऐतराज पर राम द्वारा सीता के परित्याग और उसके उपरांत की कथा है। सीता, लव-कुश और वाल्मीकि के बहाने यह फिल्म राजा राम के राज्य की परिकल्पना की सुन्दर समालोचना प्रस्तुत करती है। विजय भट्ट ने इस फिल्म को 1967 में रंगीन प्रिंट में दोबारा पेश किया था। विजय भट्ट गांधी के विचारों से बहुत प्रभावित थे और रामकथा पर आधारित उनकी अन्य फिल्में भरतमिलाप और रामबाण भी उनके गांधीवादी दृष्टिकोण का रूपांतर हैं। इस दूसरी फिल्म रामराज्य का प्रदर्शन भी यही बताता है कि गांधी जी के मन में सिनेमा के प्रति कोई आकर्षण पैदा नहीं हो सका था, हालांकि उस दौर के एक रिपोर्टर के मुताबिक वे फिल्म देखकर खुश थे। यह उल्लेख भी मिलता है कि गांधीजी ने विजय भट्ट को गुजरात के संत कवि नरसी मेहता पर फिल्म बनाने की सलाह दी थी। फिल्म बनी और 1940 में रिलीज़ हुई लेकिन गांधीजी ने उस समय अपनी व्यस्तता के चलते इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई। सिनेमा के प्रति वे पूर्व की भाँति उदासीन बने रहे।

3 मई, 1942 को अपने पत्र हरिजन में प्रकाशित एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा-''यदि मैं उनके (सिनेमा की बुराइयों) आदर में लोगों को एकत्र करूँ तो मुझे अपनी जाति और अपने महात्मापन का परित्याग कर देना चाहिए। मैं कह सकता हूँ कि सिनेमा फिल्में प्राय: खराब होती हैं। रेडियो के के बारे में मैं निश्चित नहीं हूँ।''

रेडियो के बारे में तो फिर भी कुछ अरसे बाद उनकी राय सकारात्मक हो गयी और एक माध्यम के रूप में उसका प्रायोग भी किया लेकिन सिनेमा को उन्होंने एक माध्यम के रूप में कभी नहीं अपनाया। बहुत संभव है कि सिनेमा को एक माध्यम के रूप में गांधी जी की सहानुभूति मिली होती अगर उन्हें 1913 में निर्मित दादा साहब फालके की फिल्म राजा हरिश्चन्द्र और 1925 में बुद्ध के जीवन-चरित (द लाइट ऑफ एशिया) पर हिमांशु राय और फ्रांज ऑस्टेन द्वारा निर्देशित फिल्म प्रेम संन्यास दिखाई गयी होती। दोनों ही फिल्में गांधीजी के प्रेरक व्यक्तित्वों के जीवन-दर्शन पर आधारित प्रभावशाली फिल्में थीं।

(2)

सितम्बर.1931 में गांधी जी लंदन में थे। वे वहाँ गोलमेज़ सम्मेलन में शामिल होने गए थे। लंदन के कैनिंग टॉउन में वे जिन डॉ.कात्याल के घर में मेज़बान थे वहाँ चार्ली चैपलिन उनसे मिलने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आए थे। यह ख़बर पूरे लंदन की सर्वाधिक चर्चित खबर थी। चार्ली चैपलिन उस समय अपनी फिल्म सिटी लाइट्स के प्रीमियर के सिलसिले में लंदन आए थे। गांधीजी और चैपलिन की इस ऐतिहासिक मुलाकात का उल्लेख 1932 में प्रकाशित म्युरील लेस्टर की पुस्तक 'एन्टरटेनिंग गांधी' में मिलता है। लेस्टर ने इस पुस्तक में गांधीजी से हुई उनकी अनेक मुलाकातों का जिक्र किया है। गांधी-चैपलिन मुलाकात के बारे में वे लिखती हैं-

महात्मा गांधी की जीवन-गाथा से पहला परिचय प्राथमिक विद्यालय के दिनों में हुआ। अध्यापकों के नीति-वचन और उस समय की पाठ्य-पुस्तकों में अंकित गांधीजी के विचार मेरे मन में एक सुन्दर सामाजिक नैतिक भय का निर्माण करते चले गए। यह नैतिक भय आज भी इतना प्रबल है कि बुरा बोलने, देखने और सुनने का साहस एक दुस्साहस ही जान पड़ता है।

उस समय की मेरी सबसे स्पष्ट स्मृति है कि गांधीजी हाथ में एक टेलिग्राम था वे अपने सहायकों से घिरे हुए कुछ असमंजस में थे। सहायक गांधीजी के उत्तर की प्रतीक्षा में थे। मैं जैसे ही कमरे में आयी, क्षमायाचना सी करती एक आवाज ने चुप्पी तोड़ी-''लेकिन वह सिर्फ एक मसखरा है। उससे मिलने का कोई औचित्य नहीं।'' गांधीजी इस इंकार के साथ टेलिग्राम वापस कर रहे थे। ''लेकिन, क्या आप इस नाम से परिचित नहीं हैं बापू?'' मैंने जानना चाहा।

'नहीं।' उन्होंने अधिक जानकारी के लिए मेरी ओर देखा, जो उनके सहायक नहीं दे सके थे। मैंने कहा-''चार्ली चैपलिन, वह दुनिया का हीरो है। आपको उससे जरूर मिलना चाहिए। उसकी कला की जड़ें कामगारों की ज़िंदगियों में हैं। वह गरीबों को वैसे ही समझता है जैसे आप। वह अपनी फिल्मों में उन्हें बहुत सम्मान के साथ पेश करता है।''

इस तरह अगले सप्ताह कैनिंग टाउन स्ट्रीट के निवासियों को डॉ. कात्याल के घर में मिलने वाले दो महान व्यक्तियों के स्वागत का अवसर मिला। घर के अन्दर ये दो छोटे कद के व्यक्ति एक सोफे पर हम से अलग बैठे और उन्होंने लोगों, मेहनतकशों, भूखों, गुलामों एवं कैदियों के बारे में बातें कीं।

टाइम पत्रिका के 5 अक्टूबर, 1931 के अंक में भी इस मुलाकात को रिपोर्ट किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार मुलाकात के दौरान चार्ली चैपलिन गांधी से प्रश्न करते हैं- ''आप हस्तचलित चरखे को विजेता के रूप में क्यों पेश कर रहे हैं? अविष्कार मानवजाति की विरासत हैं। उन्हें मानवजाति के बोझ को कम करने का अवसर देना चाहिए। गांधी जी का जवाब था-''चरखा और हथकरघा करोड़ों भारतीयों को रोज़गार देने के लिए जरूरी है। भारत में लगायी गयीं आधुनिक मशीनें हमारे नागरिकों को बहुत निष्क्रिय बना देंगी। हम जरूरत से अधिक उत्पादन करने लगेंगे और इस तरह इस निष्क्रियता को दुनिया के दूसरे देशों पर भी लाद देंगे।''

गांधीजी के साथ सम्पन्न हुई इस मुलाक़ात के बाद ही चार्ली चैपलिन ने एक अख़बार को दिए साक्षात्कार में कहा था- ''बेरोज़गारी एक महत्त्वपूर्ण सवाल है। मशीन मानवजाति के लाभ के लिए होनी चाहिए। इसे त्रासदी पैदा करने और मानवजाति को काम से बाहर फेंक देने के लिए नहीं होना चाहिए।''

गांधीजी और चैपलिन की यह मुलाकात विश्व-राजनीति के साथ-साथ विश्व-सिनेमा के इतिहास में भी एक अलग कारण से अमर हो गयी। इस मुलाकात ने ही वो संदर्भ दिया जिसे चार्ली चैपलिन ने अपनी फिल्म मॉडर्न टाइम्स में दुनिया के सामने पेश किया था। मॉडर्न टाइम्स और गांधीजी के इस संदर्भ को 1957 में भारतीय निर्देशक बी.आर. चोपड़ा ने दिलीप कुमार और बैजन्तीमाला अभिनीत नया दौर के रूप में पेश किया था। यहाँ तांगे और मोटरगाड़ी की जंग में तांगे की जीत को मशीन पर मानवजाति की विजय के रूप में रेखांकित किया गया था। भारतीय फिल्मों के इतिहास में अब यह एक क्लॉसिक फिल्म है।

मॉडर्न टाइम्स 1936 में रिलीज हुई थी। चार्ली चैपलिन की यह फिल्म तत्कालीन समय की अत्यंत प्रभावशाली व्याख्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मानी जाती है। 1936 दूसरे विश्वयुद्ध से पहले का समय है। यह समय पहले विश्वयुद्ध के बाद विश्व में तेजी से फैले औद्योगिकीकरण का प्रतीक भी है। चार्ली द्वारा रचित उनके फिल्मी कथा-नायक लिटिल ट्रैम्प की यह अंतिम फिल्म है। यह उनकी अंतिम मूक फिल्म भी है। फिल्म में लिटिल ट्रैम्प को फैक्ट्री-वर्कर के रूप में प्रदर्शित किया गया है। भूख, गरीबी, बेरोज़गारी और मानवीय भूलों से लबरेज़ उसकी इस कथा को पूरी दुनिया ने पसंद किया था। फिल्म का मूल विषय है मनुष्य के अस्तित्व पर मशीन के आतंक की गिरफ्त। नयी अजनबी मशीनों के साथ एक फैक्ट्री मजदूर का भयावह संघर्ष दर्शक के मन में जिस मार्मिक अनुभूति की रचना करता है वह औद्योगिकीकरण के अमानवीय पक्ष को दूसरे विश्वयुद्ध की आहट के रूप में देखता है।

इस तरह यह फिल्म विश्व सिनेमा में शायद पहली फिल्म होगी जिसे गांधीजी के विचारों से अनुप्राणित फिल्म माना जा सकता है। विश्व सिनेमा की ऐसी ही एक और महत्त्वपूर्ण फिल्म याद आती है जिसका नाम है 'ला राब्बिया'। यह मशहूर इतालवी फिल्मकार पाओलो पज़ोलिनी और गियोवानि ग्वारेचि की फिल्म है। इसे इटली में अप्रैल, 1963 में रिलीज़ किया गया था। फिल्म दो भागों में पूरी होती है। पहले भाग का निर्देशन पज़ोलिनी ने किया और दूसरे भाग को ग्वारेचि ने। पहले भाग के एक फ्रेम में गांधीजी को ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भारत की आज़ादी के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है।

(3)

महात्मा गांधी की जीवन-गाथा से पहला परिचय प्राथमिक विद्यालय के दिनों में हुआ। अध्यापकों के नीति-वचन और उस समय की पाठ्य-पुस्तकों में अंकित गांधीजी के विचार मेरे मन में एक सुन्दर सामाजिक नैतिक भय का निर्माण करते चले गए। यह नैतिक भय आज भी इतना प्रबल है कि बुरा बोलने, देखने और सुनने का साहस एक दुस्साहस ही जान पड़ता है।

एक दिन प्राथमिक विद्यालय से घर लौटते हुए बाज़ार में देखा कि चार-पांच पुलिसवाले एक चोर को अपनी लाठियों से बुरी तरह पीट रहे हैं। सर्दियों की दोपहर थी और चोर के शरीर पर सिर्फ एक अंडरवियर बचा था। चोर कोई बीस-इक्कीस बरस का युवा रहा होगा। मेरे बस्ते में उस दिन वो

कितना अंतर्विरोधी प्रसंग था। मन में गांधीजी की अहिंसा का संदेश और सामने पुलिस का हिंसक प्रयोग। उस समय चोर की पिटाई का वह दृश्य मन में कई दिनों तक भय और कंपकंपी का संचार करता रहा था।

पाठ्य-पुस्तक थी जिसमें गांधीजी वाले पाठ में ये पंक्तियां लिखी थीं-पाप से घृणा करो पापी से नहीं।

कितना अंतर्विरोधी प्रसंग था। मन में गांधीजी की अहिंसा का संदेश और सामने पुलिस का हिंसक प्रयोग। उस समय चोर की पिटाई का वह दृश्य मन में कई दिनों तक भय और कम्पकम्पी का संचार करता रहा था। कुछ सालों बाद जब दूरदर्शन पर व्ही. शांताराम की फिल्म 'दो आँखें बारह हाथ' देखी तो वही घटना फिर साकार हो गयी। उस चोर पर बड़ी दया आयी। समझ आया कि वे पुलिस वाले पाप से नहीं पापी से घृणा कर रहे थे। व्ही. शांताराम की यह फिल्म अहिंसा और हृदय परिवर्तन के सिद्धांत का सुन्दर उदाहरण है। फिल्म जेल में बंद खूंख्वार अपराधियों को समाज की मुख्यधारा में वापसी का अवसर प्रदान करती है। कहने की जरूरत नहीं कि व्ही. शांताराम गांधीजी के विचारों से प्रभावित थे।

मैं जिस प्राथमिक विद्यालय में पड़ता था वह चम्बल के एक धूल-धूसरित कस्बे में स्थित था। वही चम्बल जिसकी धरती डाकुओं के आतंक से काँपती थी लेकिन यह भी एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साक्ष्य है कि इन्हीं डाकुओं ने विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण के माफर्त गांधीजी के विचारों की पुकार पर आत्मसमर्पण किया था। वह भी इसी कस्बे में।

इसी कस्बे में पहली बार डाकू मानसिंह, मोहर सिंह, अमृतलाल और फूलन देवी के रोमांचक कारनामे सुने थे। यहीं पहली बार कोयले से चलने वाली रेलगाड़ी देखी। पहली बार मैदान में उतरता हुआ माधवराव सिंधिया का हेलीकॉप्टर देखा। कॉमिक्स और जासूसी उपन्यास पढ़े। क्रिकेट मैच देखा, बांध और नहर देखी। गांधी आश्रम देखा। चरखा और चरखे की कताई देखी।

इसी कस्बे में पहली बार रेडियो सुना, टीवी-वीसीआर और सिनेमा-हॉल देखा। संयोग ही कहना चाहिए कि सिनेमा-हॉल में देखी पहली फिल्म रिचर्ड एटनबरो की 'गांधी' ही थी। संभवत: किसी गणतंत्र दिवस या स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर स्कूल की ओर से दिखाई गयी थी। पाठ्य-पुस्तक में छिपे महात्मा गांधी बेन किंग्सले के रूप में चलते-फिरते दिखाई दिये और सिनेमा-हॉल का अंत:करण तो बिल्कुल ही अचरज भरा था। पीछे की दीवार में बने चतुर्भुज से सामने के पर्दे पर पड़ते प्रकाश-पुंज का चल दृश्यों में बदलते जाना अभूतपूर्व घटना थी। कुछ-कुछ रहस्यमय।

प्राथमिक विद्यालय की पाठ्य-पुस्तकों में सत्य और अहिंसा के प्रतीक के रूप में याद कराए गए व्यक्तित्व को आगे

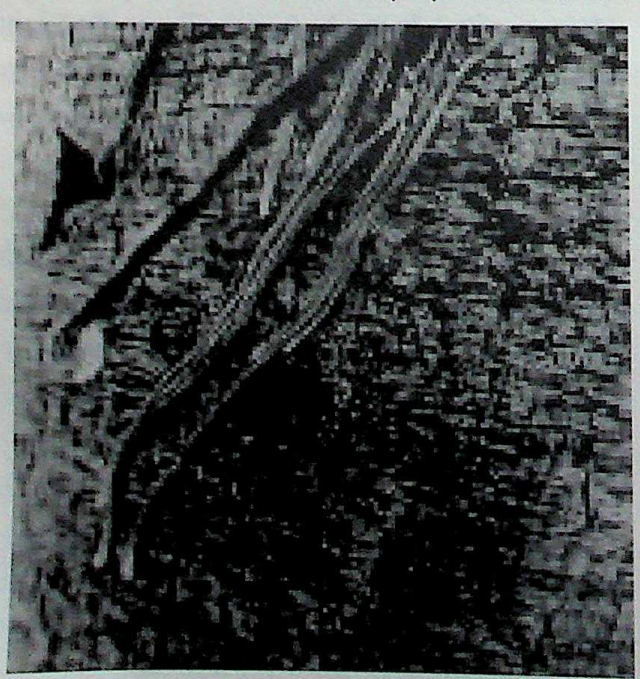

के बरसों में कितनी ही बार कितने ही रूपों में सिनेमा के पर्दे पर देखा लेकिन एक फिल्म का गीत आज भी सुनता हूँ तो आँखें उसी तरह भीगने लगती हैं जैसे कभी स्कूल के दिनों में भीगीं थीं। फिल्म थी जागृति गीत था-

साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल,
दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल।

कवि प्रदीप का लिखा यह गीत तो सुन्दर है ही मगर इस फिल्म की एक अंतर्कथा और है। जानना दिलचस्प होगा कि यह अंतर्कथा किस प्रकार गांधी, विभाजन और द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को एक अलग उजाले में देखती है।

कथा ऐसी है कि यह फिल्म एक नहीं दो बार बनी। एक बार भारतीय दर्शकों के लिए दूसरी बार पाकिस्तान के दर्शकों के लिए। यानी एक ही फिल्म के दो संस्करण। 1947 में मिली आज़ादी के कथानक के दो रूप। एक रूप भारत की आजादी को गौरवान्वित करता है दूसरा पाकिस्तान की आज़ादी को जबकि फिल्म का कथानक, चरित्र और संगीत एक जैसे हैं। एक ही कथानक दो अलग-अलग विचारधाराओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। एक ही फिल्म के दो संस्करण राष्ट्रवाद की दो अलग-अलग छवियों का निर्माण करते हैं-भारतीय राष्ट्रवाद और पाकिस्तानी राष्ट्रवाद।

पहली बार यह फिल्म 1949 परिवर्तन नाम से बांग्ला में बनी थी। निर्देशक थे सत्येन बोस। 1954 में बनी जागृति इसी फिल्म की हिन्दी रीमेक थी। फिल्म का नायक रतन कुमार था जो इससे पहले बूट पालिश और दो बीघा ज़मीन जैसी फिल्मों में बाल-अभिनय के लिए भारतीय जनमानस में लोकप्रिय हो चुका था। इस फिल्म के निर्देशक भी सत्येन बोस थे। फिल्म बहुत लोकप्रिय हुई और इसे 1956 के तीसरे फिल्म फेयर पुरस्कार में सर्वश्रेष्ठ फिल्म के रूप में सम्मानित किया गया था।

फिल्म के कथ्य में गांधी के अहिंसा सिद्धांत को बहुत सुन्दरता से विन्यस्त किया गया है। फिल्म के अधिकतर गीत इतने प्रभावी थे कि आगे के वर्षों में देशभक्ति के प्रतीक बन गए। आज भी ये गीत स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस के अवसरों पर प्रमुखता से बजते हैं। यही सूरत-ए. - हाल इस फिल्म के पाकिस्तानी संस्करण का हुआ। वहाँ भी इसे अपार लोकप्रियता मिली। वहाँ भी इसके गीत देशभक्ति के प्रतीक बन गए थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

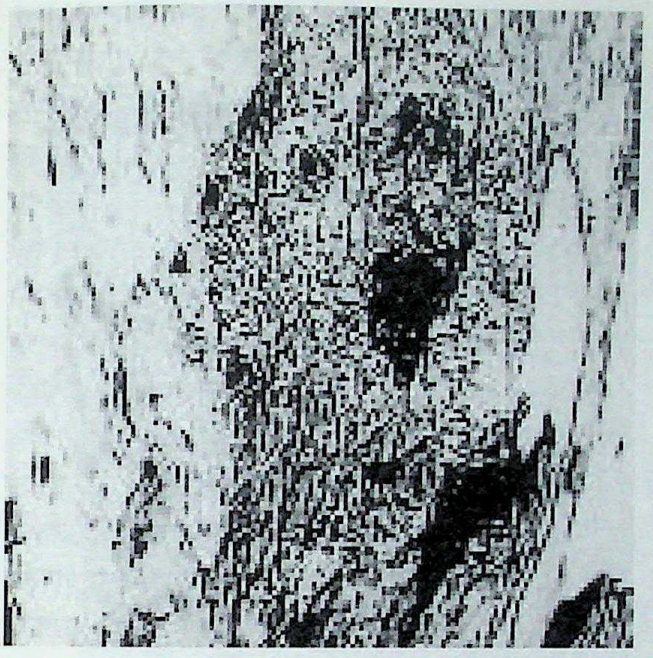

जागृति के बेदारी में बदलने का किस्सा भी कम दिलचस्प नहीं है। फिल्म का नायक रतन कुमार; (फिल्म में- शक्ति) अपने परिवार के साथ 1955 में पाकिस्तान चला गया था। रतन कुमार के साथ फिल्म भी पाकिस्तान चली गयी और साथ में चला गया भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजन का इतिहास। इसी इतिहास ने जागृति को बेदारी में बदल दिया था। रतन कुमार का वास्तविक नाम था सैयद नज़ीर अली रिज़वी था। पाकिस्तान में यह फिल्म 1956 में रिलीज़ हुई थी। नाम रखा गया-बेदारी। गांधीजी के विचारों का प्रतिरूप जागृति का शक्ति बेदारी के साबिर में रूपांतरित हो चुका था।

बेदारी, जागृति शब्द का ही उर्दू समानार्थी है। फिल्म का निर्देशन किया रफीक रिज़वी ने और निर्माता बने वज़ीर अली रिज़वी। फिल्म का संगीत दिया था फतेह अली ख़ान ने जो मशहूर सूफी गायक नुसरत फतेह अली खान के पिता थे। रिलीज़ के दो साल बाद 1958 में फिल्म पर प्रतिबंध लगा दिया था। प्रतिबंध का असल कारण था इस फिल्म के मूल स्वरूप का भारतीय होना। प्रतिबंध के बावजूद फिल्म के गीत पाकिस्तान की जनता के मानस का हिस्सा बने रहे। स्कूलों से लेकर सरकारी आयोजनों तक विभिन्न सार्वजनिक अवसरों पर उन्हें देशभक्ति प्रदर्शित करने के लिए गाया जाता रहा। यह सिलसिला इतनी दूर तक चला कि 90 के दशक में पाकिस्तान के राष्ट्रीय टीवी चैनल पीटीवी ने इसके एक गीत को अपनी सिगनेचर-ट्यून बना लिया था। गीत था-

यूं दी हमें आज़ादी कि दुनिया हुई हैरान
ऐ क़ायद-ए-आज़म तेरा ऐहसान है एहसान

यह गीत जागृति के, ऊपर उद्धृत गीत (साबरमती के संत.....) का ही पाकिस्तानी संस्करण है। देखा जा सकता है कि गांधीजी की छवि को यहाँ जिन्ना की छवि से हू-ब-हू रिप्लेस कर दिया गया है।

जागृति में इसे आशा भोंसले ने गाया था और बेदारी में मनव्वर सुल्ताना ने। गीत की ट्यून में कोई बदलाव नहीं है। यह ट्यून दोनों फिल्मों में एक साझी टीस का प्रतीक भी नजर आती है। क्या यह साझी टीस साम्प्रदायिकता और द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत के विरुद्ध गांधीजी की प्रार्थना है? दोनों फिल्मों को समग्रता से देखें तो वे एक ही फिल्म के दो विभाजित हिस्सों से जान पड़ते हैं। ऐसा लगता है मानो ये दो विभाजित फिल्में नहीं दो विभाजित राष्ट्र हों।

मो . 9868090931

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी से महात्मा तक

(सन्दर्भ : श्याम बेनेगल की फिल्म – 'द मेकिंग ऑफ महात्मा')

मनोज मल्हार
(युवा फिल्म समीक्षक)

महात्मा गांधी ने भले ही सिनेमा से रश्क किया हो, पर उनकी जिंदगी के महाकाव्यात्मक संघर्षों ने सिनेमा वालों के लिए इतना सारा सन्दर्भ और प्रसंग उपलब्ध करा दिया कि अमूमन उन पर फिल्म आती ही रहती है।

महात्मा गांधी ने भले ही सिनेमा से रश्क किया हो, पर उनकी ज़िंदगी के महाकाव्यात्मक संघर्षों ने सिनेमा वालों के लिए इतना सारा सन्दर्भ और प्रसंग उपलब्ध करा दिया कि अमूमन उन पर फिल्म आती ही रहती है। फिल्म अध्येता जय प्रकाश चौकसे की किताब 'महात्मा गांधी और सिनेमा' 1869 से अब तक के समय के प्रवाह को पढ़ने, देखने उसे समझने का एक नायाब सूत्र प्रदान करती है। इस काल खंड में गांधी की यात्रा के साथ सिनेमा की भी यात्रा विकसित होती है, जिसने संयुक्त रूप से भारतीय जनमानस को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। संभवत: गांधी जी कभी सोचा भी नहीं होगा कि 1922 में युवाओं से स्कूल- कॉलेज छोड़ने की उनकी अपील से देवकी बोस जैसी प्रतिभा फिल्मों की ओर रुख कर जायेगी और अनजाने ही भारतीय फिल्म उद्योग का इतना भला कर जायेंगे। गांधी जी और गांधी के मूल्य एवं विचार फिल्मों का व्यापक रूप में हिस्सा बने।

एक व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं बनता, बल्कि अपने कर्म से बनता है। व्यक्ति का निर्णय और उसके कर्म का विशालकाय दायरा उसे बड़ा बनाता है। 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात के पोरबंदर में जन्म लेने वाला एक बालक अपना जीवन 70 साल जी लेने के बाद दुनिया भर के अमन और शांति पसंद लोगों के हृदय पर राज करेगा।.. यह उस समय किसी ने नहीं सोचा था। बाद में दुनिया ने उसी बालक को मोहनदास करमचंद गांधी के रूप में जाना, जिसने बीसवीं शताब्दी के विश्व इतिहास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। उनके जीवन एवं कार्यों ने एक ऐसी विचारधारा के रूप में आकार ग्रहण किया, जिसे 'गांधीवाद' कहा गया। उनकी एक उक्ति भारत भर में रेलवे स्टेशन की दीवारों पर, या फिर स्कूल - कॉलेज के सूचना पट्ट पर दिखती है – 'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है'। उनकी दो किताबें दुनिया भर में सबसे अधिक बिकने वाली सदाबहार किताबें हैं –'हिन्द स्वराज' और 'सत्य के प्रयोग'। दुनिया भर में उनके काफी फॉलोवर रहे हैं जिनमें नेल्सन मंडेला, मार्टिन लूथर किंग जूनियर जैसे कद्दावर नेता भी शामिल हैं। भारत में उन्हें 'बापू', 'राष्ट्रपिता', 'महात्मा' भी कहा जाता है। यद्यपि उनके 'राष्ट्रपिता' वाले पद को हाल के वर्षों में दलित विमर्शकारों से चुनौती मिली है। दलित विमर्श के समर्थक ज्योतिबा फुले को 'राष्ट्रपिता' कहे जाने की वकालत कर रहे हैं।

मोहनदास करमचंद गांधी का महात्मा गांधी में रूपांतरण

CC-0. Mga Gandhi Gram Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक परिघटना है। संभवत: 'महात्मा' शब्द का प्रयोग गौतम बुद्ध के बाद मोहनदास करमचंद गांधी के लिए ही किया गया है। इसका अध्ययन या तो गांधीवादियों ने भाववादी नजरिये से किया है या फिर यूरोपीय ज्ञान - विश्लेषण की परम्परा में प्रशिक्षित इतिहासकारों, समाज शास्त्रियों ने। भारत में गांधीवादियों ने महानता, व्यक्ति पूजा, अवतारवाद , चमत्कार आदि शब्दों का प्रयोग कर गांधीवाद के विकास को अवरुद्ध ही किया। मैं इस लेख में श्याम बेनेगल की फिल्म 'द मेकिंग ऑफ महात्मा' के हवाले से गांधीवाद के अध्ययन की दूसरी धारा के सन्दर्भ में कुछ बातें करना चाहूँगा। काफी हद तक इसलिए कि यह एक ठोस दस्तावेज की तरह है और इसके पीछे चमत्कार और महानता की भावना नहीं, बल्कि एक व्यक्ति का निर्णय और आत्मविस्तार और ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति मुख्य प्रेरक तत्त्व है।

एक व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं बनता, बल्कि अपने कर्म से बनता है। व्यक्ति का निर्णय और उसके कर्म का विशालकाय दायरा उसे बड़ा बनाता है। 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात के पोरबंदर में जन्म लेने वाला एक बालक अपना जीवन 70 साल जी लेने के बाद दुनिया भर के अमन और शांति पसंद लोगों के हृदय पर राज करेगा।.. यह उस समय किसी ने नहीं सोचा था।

श्याम बेनेगल भारत के खास सिने - निर्देशक हैं जिन्होंने 'मंथन', 'अंकुर', 'भूमिका', 'जुनून', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'सरदारी बेगम', जुबैदा', 'कलयुग' जैसी साहित्यिक और यथार्थवादी फिल्में बनायी। 'द मेकिंग ऑफ महात्मा' 1996 की एन.डी. एफ.सी. द्वारा निर्मित फिल्म है, जिसका निर्देशन श्याम बेनेगल ने किया। यह फातिमा मीर की पुस्तक 'अपरेंटिस ऑफ अ महात्मा' पर आधारित है। पटकथा श्याम बेनेगल और फातिमा मीर की है। श्याम बेनेगल के लिए ये लिखना कि पटकथा चुस्त-दुरुस्त और कसावट वाली है; अपनी कमअक्ली को प्रदर्शित करना है। फिल्म अशोक मेहता की लाजवाब सिनेमेटोग्राफी के लिए भी याद की जाती है। बिना किसी तड़क-भड़क, या बहुत ज्यादा ताम झाम के क्या उम्दा और नजरों के केंद्र बिंदु को अपने में समा लेने वाली फोटोग्राफी है! अपनी सुविधा के लिए फिल्म को दो हिस्से में विभाजित किया जा सकता है - जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' पढ़ने से पहले के गांधी और पढ़ लेने के बाद वाले गांधी। गांधी एक वकील के रूप में राजकोट से दादा अब्दुल्लाह के मुकदमे में साथ देने के लिए एक यूरोपियन पोशाक में दक्षिण अफ्रीका पहुँचते हैं। अटॉर्नी जेनरल की संस्तुति से उन्हें कोर्ट में पैरवी का अधिकार मिलता है। कोर्ट में जज उन्हें टोपी उतार देने का आदेश देते हैं, किन्तु गांधी टोपी उतारने की बजाय कोर्ट से बाहर जाना पसंद करते हैं। उनका तर्क है कि भारत के कोर्ट में टोपी पहनना स्वीकृत है। पर बाद में उन्हें कोर्ट में अटॉर्नी के रूप में शपथ दिला दी जाती है तो वे टोपी उतार देते हैं, ये तर्क देते हुए कि अब उस संस्थान का अंग हूँ तो उसका नियम भी स्वीकार करना चाहिए। गांधी रुस्तम सेठ और सेठ अब्दुल्लह के बीच बातचीत और 'आपसी समझौते' का सुझाव देते हैं। जोहांसबर्ग से प्रीटोरिया के रास्ते में उन्हें प्रथम श्रेणी कोच से सामान सहित उन्हें बाहर फ़ेंक दिया जाता है। यहाँ गांधी मजबूती से प्रथम श्रेणी टिकेटधारी यात्री के रूप में अपने अधिकार बताते हैं, पर कोई उनकी सुनता नहीं। गांधी के संवाद हैं ;"I insist going, Show me where is written on the ticket only for European?" जवाब में आंग्ल पुलिस अधिकारी का जवाब है " no native and Coolies, only Europeans"[1] *(Endnotes)* गांधी की निडरता और अपने अधिकारों पर जोर देने की प्रवृति यहाँ दिखती है। वो विनम्र हैं लेकिन मजबूती से अपनी बात कहने वाले। बाद के वर्षों में वे डर्बन, नटाल, जोहान्सबर्ग आदि में कार्य करते हुए भारतीय गिरमिटिया लोगों की दुर्दशा से परिचित होते हैं। फिल्म में बालासुंदरम और जदुबंसी के उदाहरणों से भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की हालत को दिखाया गया है। जदुबंशी एक स्त्री है जिसे एक बैठक में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाय की कुछ बूंदें गिर जाने पर एक हफ्ते का राशन नहीं दिया जाता हैं, वो अपने शिशु को दुग्धपान नहीं करा पाती। शिशु की मृत्यु से आक्र ंत जदुबंशी वापिस भारत लौटना चाहती है जिसके लिए गांधी कोर्ट में सफल मुकदमा लड़ते हैं। इस दरम्यान भारतीयों के व्यापार, नागरिकता और संपत्ति के अधिकार को निरंतर कमतर या समाप्त करेने वाले प्रावधान बनाने की कोशिशें तेज होती है, और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गांधी के प्रयासों से 'नटाल इंडियन कांग्रेस' अस्तित्व में आता है। गांधी इसके सेक्रेटरी हैं। भारतियों की तकलीफें व्यापक रूप से उजागर करने के लिए गांधी पर्चे का सहारा लेते हैं। इसके प्रतिक्रिया में गोरेशाही की वाहक भीड़ गांधी पर हिंसात्मक हमला करती है। इंग्लिश - बोअर युद्ध में कई भारतियों के विरोध के बावजूद गांधी अंग्रेजों का साथ देते हैं। वे इस दरम्यान कुरान और बाइबिल को पढ़ते हैं। धार्मिक रूप से बेहद उदार। एक पादरी उनके माफ करने देने के गुण को इसाईयत से जोड़ता है तो गांधी का जवाब है : ''क्या माफ कर देना केवल क्रिस्चियन का एकाधिकार है श्रीमान बेकर?'' एक पति के रूप में गांधी कस्तूरबा के प्रति सख्त हैं, लगभग अनुदार। एक पिता के रूप में बेटों पर अपनी इच्छाएँ थोपने की भी कोशिश हैं उनकी। हालांकि वे जच्चगी का कार्य सफलतापूर्वक करते हैं। इस दौरान 'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशन का विचार विकसित होता है। यहाँ गांधी बहुत सहनशील, संयमी, नए तरीके ईज़ाद करने वाले और व्यावहारिक हैं। इंग्लिश- बोअर युद्ध में उनका मानना है कि हम उनके उपनिवेश में रहते हैं तो उनका साथ देना चाहिए। तभी हम उनको अपनी समस्याएँ सुना और समझा पाएंगे।

जॉन रस्किन को पढ़ने के बाद ....

'इंडियन ओपिनियन' निकालते और नटाल भारतीय कांग्रेस का कार्य करते-करते गांधी बहुत बड़ी आर्थिक परेशानी का सामना कर रहे हैं। वे अपनी पत्नी कस्तूरबा की निजी चीजें भी लगभग बलपूर्वक प्रकाशन का खर्च निकालने के लिए लगा देते हैं। इस दरम्यान ट्रेन में यात्रा के दौरान श्रीमान पोलाक 'अन्टू दिस लास्ट' नामक पुस्तक देते हैं। जॉन रस्किन के विचारों से गांधी को एक दिशा मिलती है - सादा जीवन उच्च विचार। सभी श्रम के कार्य महान हैं। एक व्यक्ति को आवश्यकता के अनुरूप अन्न का उत्पादन स्वयं करना चाहिए। इन वर्षों के दरम्यान गांधी तीन- चार शब्दों अथवा विचारों का पालन करते हुए भारतीयों के आन्दोलन के समर्थन में नये प्रयोग करते हैं। वे शब्द हैं - 'सत्याग्रह', 'ईश्वर तुम्हारे अंदर है', 'परिवार और

रिश्ते से अलगाव जरूरी है', 'दु:ख जीवन का ही एक अंग है', 'खुद दु:ख तकलीफ सहकर दूसरे के ह्रदय में प्यार और संवेदना विकसित कर सकते हैं'।.. आदि। उनके कुछ अनोखे विचार विकसित होते हैं, जैसे - एक सत्याग्रही को अपने दुश्मनों पर भरोसा करना चाहिए, भले ही वो बीसियों बार धोखा दे। वो स्त्रियों को संघर्ष के अग्रिम कतार में लाते हैं। हिंसा से गांधी दूरी बनाए रखते हैं। वे उन आन्दोलनकारियों से बात नहीं करते जिन्होंने आन्दोलन के दौरान रेलवे स्टेशन फूँक दिया था। गांधी के नेतृत्व में आन्दोलनकारियों की संख्या भी बढ़ती है और उनमें निडरता बढ़ती जाती है। उनका जेल के अंदर आना- जाना लगा रहता है। वे टॉलस्टॉय फॉर्म खोलते हैं। खान-पान और चिकित्सा संबंधी प्रयोग भी करते हैं। इसी दौरान गांधी को लोगों ने 'गांधी बाबा' कहना शुरू किया। निर्देशक इन दृश्यों के पार्श्व में 'वैष्णव जन तेने कहिये जो पीर पराई जाने रे' धुन का प्रयोग किया है। इसे एक लेखक जॉन रस्किन के व्यापक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। ये सवाल उठ सकता है कि रस्किन गांधी को ही क्यों प्रभावित कर सके; अन्य लोगों को क्यूँ नहीं? इसका जवाब गांधी की अंतर्राष्ट्रीयता की विचारधारा में निहित है। वे अपने सामने राष्ट्रीयता की बाधक दीवार खड़ी नहीं करते, भाषा और धर्म की बाधाएँ स्वीकार नहीं करते। वे आज के हिन्दू राष्ट्रवादियों की तरह आक्रामक, हिंसक और कमजोर - दलित - वंचित को कुचलने वालों के पूर्ण विपरीत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। उनके ग्रहणशीलता के रास्ते में कोई भी दीवार नहीं है।

फिल्म के अंतिम दृश्यों में गांधी का मुख्य प्रतिद्वंद्वी स्मट पूछता है – ''तो श्रीमान गांधी! आप चाहते क्या हैं?''

गांधी का जवाब है : ''यदि हम अपनी आत्मा की आवाज सुनें तो सबसे बड़ा संघर्ष भी शांति के द्वारा हल किया जा सकता है। क्योंकि मानवता एक है जो शांति और समानता के साथ रहना चाहती है।''

फिल्म के अंतिम दृश्यों में गांधी अपने बाल को एकदम से छोटा बना लेते हैं, मोटे सूत वाला सफेद भारतीय वस्त्र धारण कर लेते हैं। ये सत्याग्रह की राह में शहीद हुए सत्याग्रहियों के प्रति उनका सम्मान है। लोगों की नजर में वे महात्मा बन चुके हैं, ऐसा महात्मा जो संयमी, अपरिग्रही, सत्याग्रही, दृढ, शांति और अहिंसा से राजनीतिक – सामाजिक समस्याओं का समाधान कर सकता है।

श्याम बेनेगल की 'द मेकिंग ऑफ महात्मा' बनाने की पद्धति अत्यंत तथ्यात्मक और किताबों के वर्णन – विश्लेषण पर आधारित है। उन्होंने गांधी के विराट व्यक्तित्व, प्रभाव और लोकप्रियता से अप्रभावित रहकर कार्य किया है। उनके लिए गांधी एक अन्य पात्र ही है, चरित्र ही है। उन्होंने गांधी को एक व्यक्ति के रूप में ही पेश किया है जिसके कुछ अरमान है, जो निर्णय ले सकता है, जो स्थिर नहीं है, अपितु निरंतर चिंतनशील और नये विचारों और अनुभव को ग्रहण करने वाला है। वो जिद्दी या अड़ियल नहीं है बल्कि संवाद करने वाला है, नये विचार और तरीकों को प्रयोग में लाना वाला है। अपनी निजी ज़िन्दगी में एकदम आम पुरुष या पति है, जो बाद में क्रमशः उदार होता जाता है। निर्देशक ने बहुत सारे भारतीय लेखकों या भक्तों की तरह गांधी को शुरू से ही महान या अवतारी का रूप नहीं दे देते। उसे परिस्थितयों में डाल कर काम करते हुए दिखाते हैं। बेनेगल का गांधी को पेश करने का तरीका निहायत भौतिकवादी है।

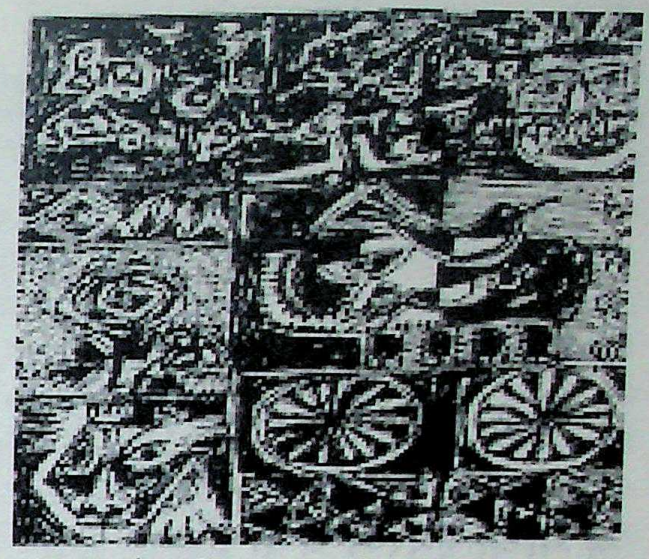

वर्तमान विश्व नफरत और हिंसा की घटनाओं से निर्देशित है। सूडान, अफगनिस्तान, इराक जैसे देश रोज ही बम के धमाकों और आगज़नी का सामना कर रहे हैं। भारत सहित दुनिया के बहुत सारे देशों में हिंसक सामाजिक संघर्ष है जहाँ महिलाओं और दलितों पर किये जाने वाले अपराध का आकंडा बहुत ज्यादा ऊपर है। एक शांतिमय, सौहाद्रपूर्ण और समतापूर्ण समाज के रास्ते में भयंकर अँधेरा है, हत्यारी ताकतें कभी लिंचिंग के शक्ल में तो कभी गोली मारने या पीट –पीटकर मार डालने की विचारधारा में काम कर रहे हैं, गांधी के विचार और संघर्ष की पद्धति एक संभावनापूर्ण उम्मीद है। जब सम्पूर्ण बाग़ ही बेहद सख्त और निर्मम बूटों से कुचला जा रहा हो तब ओस की बूंदों से ही नरमपन और मासूमियत की उम्मीद की जा सकती है। गांधी और गांधी के तरीकों से अमन, सद्भाव, और प्रेम के विस्तार की उम्मीद कर सकते हैं। सुधीर चन्द्र इसे 'एक असम्भव संभावना' कहते हैं,। पर संभावना तो है। जवाहर लाल नेहरू ने उनके लिए 'प्रकाश' शब्द का प्रयोग किया था। वो प्रकाश हमारे चारों ओर एक आश्वस्तिदायक छाया के रूप में विद्यमान तो है।

मो: 8826882745

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ये गांधी स्मरण क्यों ?

रवीन्द्र त्रिपाठी
(वरिष्ठ नाटककार, आलोचक व पत्रकार)

'पहला सत्याग्रही' एक नाटक है। पर ये सिर्फ एक नाटक नहीं है। ये स्मरण भी है। गांधी-स्मरण। ये भी कहा जा सकता है कि ये नाटक कम और स्मरण अधिक है। ऐसा क्योंकर है ?

आजकल के विमर्शात्मक लेखन में स्मरण और विस्मरण के सिलसिले में मिलान कुंदेरा का ये वक्तव्य अक्सर उद्धृत किया जाता है- 'ताकत' के विरुद्ध मनुष्य का संघर्ष विस्मरण के विरुद्ध स्मरण का संघर्ष है'। (the struggle of man agains power is the stuggle of memory against forgetting.)

इसी सिलसिले मे ये रेखांकित करना जरूरी है कि विस्मरण तभी होता है जब स्मरण का सिलसिला टूट जाता है। इसलिए भूला न जाए इसके लिए आवश्यक है कि हमेशा याद रखा जाए। वैसे गांधी भारतीय और वैश्विक चेतना में कभी भूले नहीं गए। भूले जाएंगे भी नहीं।

जब मैं ये नाटक लिख रहा था कई बातें दिमाग में आ रही थीं, जैसे ये कि इसमें क्या लिखा जाए ? यानी इसमें गांधी के जीवन का कौन-सा उठाया जाए और किस तरह उसे दिखाया जाए। यानी गांधी का पूरा जीवन हो या उसके किसी एक अध्याय पर केंद्रित किया जाए ? और कोई अध्याय हो ही तो कौन- सा ? इस बारे में कुछ लोगों से बात भी कर रहा था क्या किया जाए। इसी क्रम में एक वरिष्ठ रंगकर्मी ने कहा- गांधी की पूरी ज़िंदगी मत लो। क्यों रिचर्ड एटनबरो ने गांधी पर अपनी फिल्म में जितना दिखाया है उससे अलग क्या दिखा पाओगे। जब मैंने फेसबुक पर डाला कि महात्मा गांधी पर एक नाटक लिख रहा हूँ तो एक पुराने मित्र ने सुझाव दिया कि 'गांधी के अंतरविरोध दिखाओ'। एक और मित्र ने कहा- 'गांधी ने अपने बेटों और परिवार के साथ क्या किया ? इस पर लिखा जाना चाहिए।'

ऐसे ही अन्य परामर्शों के बाद मेरी ये धारणा दृढ़ होती गई कि जितना संभव को सके नाटक में गांधी का पूरा जीवन ही आना चाहिए क्योंकि किसी एक कालखंड पर केंद्रित करने से गांधी-स्मरण नहीं होता। हालांकि यहाँ ये भी जोड़ना जरूरी है कि गांधी का जीवन ऐसा है कि उनके एक- एक दिन पर नाटक लिखा जा सकता है। उनके जीवन का कोई ऐसा दिन नहीं है जो नाटकीयता से भरा न हो। इस लिहाज से भी वे दुनिया की एक नायाब शख्सियत हैं। इसलिए मैंने तय किया कि संक्षेप में ही सही नाटक में गांधी की संपूर्ण सामाजिक जीवन-यात्रा हो। यानी उनका बचपन न हो लेकिन दक्षिण अफ्रीका में गुजरे वर्षों से लेकर उनकी मृत्यु का वृतांत हो। आखिर गांधी ने ही कहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था।– ''मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।'' और मैंने ये भी तय किया उनका जीवन दिखाते हुए रिचर्ड एटनबरो की गांधी से अलग रहा जाए। इसलिए नाटक के पाठक और इसे करनेवाले निर्देशक ये महसूस करंगे कि इसमें सिर्फ एक वाकया है जो एटनबरो की फिल्म में भी लगभग उसी तरह है। और वो है– दक्षिण अफ्रीका में मोहन दास करमचंद गांधी के फर्स्ट क्लास के डब्बे से उतार जाने का। इससे बचा नहीं जा सकता था क्योंकि ये गांधी के जीवन का निर्णायक क्षण है। लेकिन नाटक के दूसरे बाकी हिस्सों में एटनबरो द्वारा दिखाए गए दृश्य नहीं के बराबर हैं।

रंगमंच और नाटक की दृष्टि से गांधी और उनका पूरा जीवन बेहद दिलचस्प हैं। गांधी उपवास करते थे, प्रार्थना करते थे, प्रवचन करते थे, पैदल चलते थे, जेल जाते थे, दक्षिण अफ्रीका में युद्ध के दौरान घायलों और मरीजों की सेवा करते थे– ये सब किसी नाटककार और रंगकर्मी के लिए स्त्रोत हैं।

मैंने ये भी तय किया कि इसमें गांधी के जीवनकाल में उनसे जुड़े बड़े राजनैतिक व्यक्तित्व इसमें न हों। इसीलिए इसमें जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, राजेंद्र प्रसाद, सुभाष चंद्र बोस, सरदार भगत सिंह, डॉ भीमराव अंबेडकर, मोहम्मद अली जिन्ना, लॉर्ड माउंटबेटन जैसे बड़े ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं हैं। इसका मुख्य कारण तो यही है नाटक की अवधि डेढ़–पौन घंटे से ज्यादा न हो। नाटक में जब कोई चरित्र आता है उसके साथ पूरा घटनाक्रम होता है। उसके सिर्फ एक–दो दृश्यों में मौजूद होने बात नहीं बनती। वो सिर्फ खानापूर्ति होती है और मैं इससे बचना चाहता था और किसी एक या दो व्यक्तित्वों को नाटक में किरदार के रूप में लाया जाए और दूसरों को छोड़ा जाए तो इन गांधीयुगीन व्यक्तित्वों के साथ अन्याय होगा। इनमें से कुछ के साथ गांधी इस तरह से जुड़े रहे कि आज भी उनको लेकर बहसें चल रही हैं और आगे भी चलती रहेंगी।

मैं ये भी स्वीकार करूँगा कि 'पहला सत्याग्रही' में 'संपूर्ण' नहीं 'अपूर्ण' गांधी हैं। ये भी गांधी की 'संपूर्णता' ठहरी हुई नहीं बल्कि लगातार विस्तृत होती जा रही है। इस 'संपूर्ण' को पाना भी एक स्थायी चुनौती है। इस नाटक के लेखन के दौरान मेरे भीतर ये एहसास भी तीव्रतर होता गया कि मैं गांधी को जितना जानता हूँ या जान पाया हूँ उससे वे कई गुणा अधिक हैं। और पूरा जीवन भी समर्पित कर दूँ तो बहुत कुछ छूटा ही रहेगा। इसलिए ये नाटक एक 'गांधी प्राइमर' (गांधी पर एक सरल–सीपरिचयात्मक पुस्तक) की तरह है। कोई चाहे तो अपने दृष्टिकोण से दूसरा प्राइमर लिखा सकता है। लिखे भी गए हैं। लेकिन मेरा प्राइमर यही है।

मैं जिन दो स्थानों पर काफी ठिठका रहा उसकी भी चर्चा कर दूँ। पहला तो 'हिंद स्वराज' था। ये गांधी जी की एक मात्र सैद्धांतिक पुस्तक है और विवादास्पद भी। मेरे सामने कई समस्याएं थीं। सबसे बड़ी तो यही कि इसकी सैद्धांतिकी और विवादास्पदता को कैसे एक साथ लाया जाए। पूरी नाटकीयता के साथ। अमूमन सैद्धांतिक बातों को नाटक में लाने से बोरियत की आशंका रहती है। मैं उससे बचना चाहता था। शायद बच भी गया क्योंकि नाटक के प्रदर्शन के दौरान दर्शकों ने इसे पंसद भी किया।

दूसरा स्थल नोआखाली से संबंधित है जिसमें गांधी मनु गांधी को एक पत्थर लाने को लाने उस गांव में भेजते हैं जहां वो छूट गया था। गांधी को उस पत्थर को मीरा बेन ने दिया था और उससे वो रात में सोने के पहले अपने पैर रगड़ते थे, साफ करते थे। क्या गांधी का ऐसा करना तार्किक था? ये प्रश्न मेरे भीतर नाटक लेखन के दौरान लगातार कौंधता रहा और आज भी वही स्थिति है। मनु तो गांधी की अत्यंत प्रिय थी फिर क्या उनको ये खयाल नहीं आया कि वे उसे खतरे में डाल रहे हैं? बाद में, यानी पत्थर ले आने के बाद गांधी ने मनु को स्पष्टीकरण भी दिया। पर मैं अपने से आज भी पूछता हूँ कि क्या बात उतनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भर थी जो गांधी ने बताई थी या कुछ और था? इसके लिए मनोविज्ञान में जाना होगा जो मेरा क्षेत्र नहीं है। क्या गांधी को वो पत्थर मीरा बेन के अलावा किसी और ने दिया होता तो क्या गांधी का यही व्यवहार होता? ये सब मैं इसलिए नहीं लिख रहा हूँ कि मैं किसी तरह की आलोचना कर रहा हूँ (हालांकि वो भी अपने में अनुचित नहीं है)। ये इसलिए लिख रहा हूँ कि गांधी भी एक व्यक्ति थे और हर व्यक्ति की तरह उनके कुछ या कई फैसलों के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण भी रहे होंगे। इसलिए इस या ऐसे कुछ अन्य जिज्ञासाओं से बचा नहीं जाना चाहिए। लेकिन इस तरह की जिज्ञासा के लिए गहन मनोवैज्ञानिक अध्ययन और चिंतन भी चाहिए।

रंगमंच और नाटक की दृष्टि से गांधी और उनका पूरा जीवन बेहद दिलचस्प हैं। गांधी उपवास करते थे, प्रार्थना करते थे, प्रवचन करते थे, पैदल चलते थे, जेल जाते थे,दक्षिण अफ्रीका में युद्ध के दौरान घायलों और मरीजों की सेवा करते थे- ये सब किसी नाटककार और रंगकर्मी के लिए स्रोत हैं। रंगमंच एक्शन की विधा है और गांधी के यहाँ इतने एक्शन हैं कि किसी रंगकर्मी को लग सकता है कि यहाँ पूरा खजाना पड़ा हुआ है। मेरे भीतर गांधी को लेकर कम से कम दो और नाटक हैं। पता नहीं वे लिखे जा पाएंगे या नहीं! हालांकि इसे मैं अपना एक दायित्व मानता हूँ।

वैसे भी गांधी एक बहुरूपी व्यक्तित्व थे। वे एक इंसान थे, राजनेता थे। उनमें धार्मिकता और आध्यात्मिकता भी थे और वे धर्म से परे भी थे। उनके एक रूप को देखते-गुनते हुए ये भी याद रखना चाहिए उनके दूसरे रूप भी हैं। उनकी कई जटिलताएँ भी हैं। इसी कारण उनके कई आलोचक भी हैं और कई प्रकार के हैं। इनमें सबको बौद्धिक स्तर पर खारिज भी नहीं किया जा सकता। लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनकी मूल आपत्ति गांधी की 'अहिंसा' से ही थी और आज भी है। ऐसे में मैं यहीं यह सकता हूँ कि अगर किसी को हिंसा से प्रेम है या अहिंसा से नफरत है तो वो कभी गांधी को पंसद नहीं करेगा।

यहाँ उन सबके प्रति कृतज्ञता भी प्रकट करना चाहता हूँ जो इसे लिखने के हेतु बने और जिन्होंने इसके लेखन में सुझाव दिए और मदद भी की। सबसे पहले तो राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के कार्यकारी निदेशक और उसके रंगमंडल के प्रमुख सुरेश शर्मा को आभार। उन्होंने ही इसे लिखने का प्रस्ताव मेरे सामने रखा और इसे निर्देशित भी किया। हिंदी के वरिष्ठ कवि मंगलेश डबराल मेरे हर प्रारूप को सबसे पहले पढ़ने वाले रहे और सलाह भी देते रहे। राष्ट्र सेवा दल के पूर्व अध्यक्ष और समाजवादी एक्टिविस्ट सुरेश खैरनार से भी इसके लेखन के दौरान लगातार बातें होती रहीं। इस क्रम में वे लगातार जोसेफ के . डोक, गांधी के पहले जीवनीकार, की चर्चा करते रहे। ये भी एक कारण है कि डोक इस नाटक में किरदार हैं। वरिष्ठ पत्रकार और लेखक अरुण कुमार त्रिपाठी से भी नाट्य-लेखन के दौरान लगातार विचार विनिमय होता रहा। गांधी के प्रति उनकी निष्ठा भी अनन्य है। उन्होंने कुछ किताबें भी मुहैया कराईं। एक अन्य गांधी- प्रेमी कृष्ण कुमार भी गांधी के बारे में कई विद्वानों की रायों के बारे में कई बातें बताते रहे। इन सबको धन्यवाद।

मैं गांधी शांति प्रतिष्ठान की वंदना झा को भी इस मौके पर नहीं भूल सकता जिन्होंने वहां के पुस्तकालय में किताबें उपलब्ध कराने में मेरी काफी मदद की। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक और रंगकर्मी राम गोपाल बजाज, वरिष्ठ पत्रकार और गांधी- अध्येता अरविंद मोहन, पटना के गांधी अध्येता भैरव लाल दास से भी कई तरह के सुझाव मिले। इन सबके प्रति मैं शुक्रगुजार हूँ।

मो. 9873196343

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विज्ञान और प्रौद्योगिकी : गांधी की दृष्टि में

शुकदेव प्रसाद
(सुप्रसिद्ध लेखक, विचारक और चिन्तक)

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में गांधी ने जो विचार रखे हैं, उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। यंत्रों के सम्बन्ध में उनकी जो मूल परिकल्पना है, उसकी जानकारी के अभाव में लोग उन पर तरह-तरह के बेबुनियाद आरोप और आक्षेप लगाते नहीं थकते हैं; उदाहरणार्थ, गांधी दकियानूसी थे, वे सभी तरह की मशीनों के घोर विरोधी थे, वे मानव जाति को आदि युग में ले जाना चाहते थे। इसके विपरीत विज्ञान, प्रौद्योगिकी और विकास के विषय में उन्होंने जो विचार रखे हैं, सर्वथा मौलिक, क्रान्तिकारी और प्रासंगिक हैं।

गांधी निश्चित रूप से उन सभी प्रविधियों के खिलाफ थे, जिनसे चंद हाथों में सत्ता, स्वामित्व और पूँजी का संकेन्द्रण होता है। जिन यंत्रों से उत्पादन और वितरण में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है, उन सारे यंत्रों के बहिष्कार की वकालत गांधी दर्शन में अवश्य है। जिन मशीनों में व्यापक जन समुदाय रोजगार प्राप्त करने से वंचित रह जाता है, उन सारी मशीनों को गांधी द्वारा परिकल्पित सामाजिक आर्थिक ढाँचे में कोई स्थान नहीं है। जिन मशीनों का गांधी द्वारा परिकल्पित सामाजिक आर्थिक ढाँचे में कोई स्थान नहीं है। जिन मशीनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया से मानवीय तत्व का बराबर विलोपन हो रहा है तथा जो शोषण तंत्र की राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर टिकाये रखने में लगी हैं, उन सारी मशीनों का गांधी ने मुखर विरोध किया है।

गांधी कुछ लोगों द्वारा उत्पादन के स्थान पर सबके द्वारा उत्पादन के नये मानवीय अर्थशास्त्र के जनक थे। केन्द्रित उत्पादन बड़ी-बड़ी इकाइयों में पूँजी-सघन और जटिल तकनीकों के जरिये होता है। इतना ही नहीं, इस पद्धति में तकनीक उत्तरोत्तर जटिल होती जाती है और मानवीय तत्व क्रमशः लुप्त होता जाता है।

केन्द्रित उत्पादन प्रणाली में घुमाव-फिराव वाली चक्करदार पेंचीदी विचरण व्यवस्था होती है। पूँजी बहुत उत्पाद के कारण सतत एक शक्तिशाली अल्प जनतंत्र की जड़ें मजबूत और गहरी होती जाती हैं, चंद हाथों में स्वामित्व सिमटता जाता है, पूँजी का संचय या एकत्रीकरण जारी रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप वही मुट्ठी भर लोग प्रत्यक्ष रूप से राजसत्ता का नियमन, नियंत्रण और संचालन करने लग जाते हैं, बेकाबू मशीनीकरण, मानव श्रम की बचत करने वाले वृहदाकार यंत्रों की बढ़ोत्तरी और अंधाधुंध औद्योगिकी के कारण व्यापक जन समुदाय भीषण बेरोजगारी के दुष्चक्र में फँसता जाता है, जिससे आम जनता की लाचारी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुलामी और दरिद्रता बढ़ती जाती है। पूँजीवादी मशीनीकृत उत्पादन यंत्र में साम्राज्यवाद की विकरालता नित नये रूपों में प्रकट होती है। जन-समुदाय द्वारा उत्पादन ---- गांधी छोटी-छोटी इकाइयों में जन-समुदाय द्वारा उत्पादन पर जोर देते थे जिसमें उत्पादन मुख्यत: स्थानीय संसाधनों से व स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम सघन मशीनों के द्वारा होगा। उत्पादन सबके लिए हो अर्थात् पूरी पड़ोसी आबादी के लिए हो-गांधी का यही क्रान्तिकारी विचार उनके मानव केन्द्रित अर्थशास्त्र के मूल में है। छोटी-छोटी इकाइयों में, प्रत्यक्ष पड़ोसी समुदायों में उत्पादन और वितरण सहगामी होंगे। इस तरह विकेन्द्रित अर्थरचना में मनुष्य की अभिक्रम शक्ति, क्रियाशीलता और स्वाधीनता का विकास होता जायेगा, जिसमें वह अपनी सारी व्यवस्थाओं का नियमन करने लग जायेगा।

गांधी यह कतई नहीं चाहते थे कि निर्जीव मशीनें जिन्दा मशीनों (लोगों) का स्थान ले लें। जिस देश में विपुल श्रम शक्ति बेकार पड़ी हो, वहां पर श्रम की बचत करने वाले पूँजी सघन यंत्रों की क्या आवश्यकता है? गांधी ने बारम्बार इस बात पर जोर दिया है कि मशीनें मनुष्य का स्थान न लें, बल्कि उन्हें श्रम करने या रोजगार के अवसर से वंचित न रखते हुए उनके शारीरिक श्रम को हल्का करें।

गांधी द्वारा परिकल्पित सारी समाज रचना का केन्द्र बिन्दु मानव है। गांधी यह कतई नहीं चाहते थे कि निर्जीव मशीनें जिन्दा मशीनों (लोगों) का स्थान ले लें। जिस देश में विपुल श्रम शक्ति बेकार पड़ी हो, वहां पर श्रम की बचत करने वाले पूँजी सघन यंत्रों की क्या आवश्यकता है? गांधी ने बारम्बार इस बात पर जोर दिया है कि मशीनें मनुष्य का स्थान न लें, बल्कि उन्हें श्रम करने या रोजगार के अवसर से वंचित न रखते हुए उनके शारीरिक श्रम को हल्का करें। उदाहरण के तौर पर गांधी के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं-

'तकनीक का अपना स्थान है और अब इसने अपने पांव भी जमा लिये हैं। किन्तु जिस हद तक शरीर श्रम अनिवार्य है, उस हद तक तकनीक को श्रम का स्थान नहीं लेने देना चाहिए।' - *'यंग इंडिया', 5 नवम्बर, 1925*

'तकनीक का उपयोग वहीं पर उचित है, जहाँ तक उससे सबका हित हो।' - *'यंग इंडिया', 15 अप्रैल, 1926*

'मैं समूची विध्वंसात्मक मशीनरी के सर्वथा खिलाफ हूँ। परन्तु ऐसे साधारण कल पुर्जी या औजारों, उपकरणों और ऐसी मशीनरी का मैं अवश्य स्वागत करूँगा जो जन-जन के (अनावश्यक, बोझिल, उबाऊ) शरीर श्रम को बचत करते हैं और झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों का बोझ हल्का करते हैं' - *'यंग इंडिया', 17 जून, 1926*

मशीनीकरण

यहाँ पर मशीनों के सम्बन्ध में एक समाजवादी सज्जन की गांधी से हुई बातचीत का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

मशीनों के पक्ष समाजवादी मित्र ने गांधी से पूछा- ''क्या ग्रामोद्योग आन्दोलन का लक्ष्य मशीन मात्र को ही निकाल बाहर करना नहीं है?''

गांधी उस समय चरखा चला रहे थे। उन्होंने खुद ही समाजवादी मित्र से प्रतिप्रश्न किया- ''यह चरखा मशीन नहीं है क्या?''

समाजवादी सज्जन ने गांधी से कहा- ''मैं इस मशीन की बात नहीं करता, मेरा मतलब तो बड़ी-बड़ी मशीनों से है।''

इस पर गांधी ने जो उत्तर दिया, वह मशीनरी सम्बन्धी उनके विचारों का एकदम खुलासा करता है- ''जो मशीनें व्यापक जन-समुदाय को श्रम करने के अवसर से वंचित नहीं करतीं, बल्कि जो व्यक्ति को उसके शरीर श्रम में मदद देती हैं और उसकी कार्य क्षमता को बढ़ाती हैं और जिन मशीनों को मनुष्य उनका गुलाम हुए बिना अपनी इच्छा से चला सकता हैं, उन सब मशीनों को ग्रामोद्योग आन्दोलन से अभयदान दे रखा है।''

- *'हरिजन', 22 जून, 1935*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अन्य स्थान पर भी गांधी ने यही बात प्रकारान्तर से दुहरायी है- ''मशीनीकरण उसी अवस्था में अच्छा है, जब किसी निर्धारित काम को पूरा करने के लिए आदमी बहुत ही कम हों। वहाँ यह एक बुराई है, जहाँ पर किसी काम को करने के लिए जितने आदमी चाहिए, उनसे भी कहीं अधिक लोग बेकार पड़े हुए हों, जैसा कि यह हिन्दुस्तान में तो है ही।' - *'हरिजन', 14 नवंबर, 1934*

गांधी इस प्रकार उन सीधी-सादी सहज मशीनों को चाहते थे, जो स्थानिक जन-समुदायों में सर्वसुलभ हों। लेकिन, वे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास के रंचमात्र विरोधी नहीं थे। उनका कहना सिर्फ यही था कि इसका लाभ चंद हाथों में सिमट कर न रह जाए, बल्कि वह जन-जन तक निर्बाध रूप में पहुंचे। उन्हीं के शब्दों में-

''यदि गांव-गांव में, घर-घर में हम बिजली दे सकते हैं, तो गाँव वाले अपने औजारों को बिजली से चलाएँ। परन्तु ऐसी अवस्था में ग्राम पंचायतों या राज्य उन बिजली घरों के मालिक होंगे, जैसे गांव के चरागाहों का स्वामित्व गांव का होता है'' - *'हरिजन' 22 जून, 1935*

गांधी बड़ी मशीनरी की अनिवार्यता को एकदम नहीं नकार देते थे। वे यह मानते थे कि निश्चित रूप से कुछ बड़े उद्योग होंगे, जो अनिवार्यत: केन्द्रित होंगे और उनमें भारी मशीनरी बहुतायत में इस्तेमाल होगी। हालांकि ऐसे उद्योगों की चर्चा उन्होंने विस्तार में नहीं की है, फिर भी वे उन्हें कुंजी उद्योगों के नाम से पुकारते थे। उनका कहना था कि ये भारी उद्योग हमारी अर्थरचना के न्यूनतम अंग ही होंगे अर्थात् इनका स्थान प्रमुख न होकर, गौण ही रहेगा। लेकिन, इन पर नियंत्रण या स्वामित्व राज्य या समुदाय का होगा। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि दैनन्दिन उपभोग की वस्तुएँ भारी उद्योग नहीं उत्पादित कर सकेंगे। बुनियादी जरूरतों की चीजें स्थानिक प्रत्यक्ष समुदायों की छोटी-छोटी इकाइयों द्वारा उत्पादित होंगी। श्रम सघन तकनीक अपनाने के कारण लोग इन इकाइयों की उत्पादन प्रक्रिया में भागीदार होंगे तथा उत्पादन, वितरण व प्रशासन का विकेन्द्रीकरण होता जाएगा। भारी मशीनरी के बारे में गांधी के विचार हैं-

'सार्वजनिक उपयोग की ऐसी बड़ी मशीनों का भी अपना अनिवार्य स्थान है, जिन्हें मनुष्य के हाथ की मेहनत से नहीं चलाया जा सकता है। लेकिन ऐसी मशीनों पर सरकार का नियंत्रण रहेगा।' - *'हरिजन', 22 जून, 1935*

गांधी की दृष्टि से मशीनों से पैदा होने वाली बुराइयों की कोई सीमा नहीं है। ये करोड़ों-करोड़ लोगों का स्वत्व छीनकर भौतिक शक्ति और सम्पत्ति का भारी केन्द्रीयकरण करती हैं। करोड़ों लोगों का रक्तदोहन कर उनके झोपड़ों से काफी दूरी पर स्थित बड़े-बड़े उद्योगों का पेट भरने का काम ये मशीनें कर रही हैं।

गांधी की दृष्टि से मशीनों से पैदा होने वाली बुराइयों की कोई सीमा नहीं है। ये करोड़ों-करोड़ लोगों का स्वत्व छीनकर भौतिक शक्ति और सम्पत्ति का भारी केन्द्रीयकरण करती हैं। करोड़ों लोगों का रक्तदोहन कर उनके झोपड़ों से काफी दूरी पर स्थित बड़े-बड़े उद्योगों का पेट भरने का काम ये मशीनें कर रही हैं। उत्पादन के सारे साधनों, कल-कारखानों और मिलों या औद्योगिक प्रतिष्ठानों का अन्तिम और वास्तविक नियंत्रण और स्वामित्व जिन चंद हाथों में है, उनकी संख्या पूरी जनसंख्या की तुलना में प्राय: नगण्य-सी है। इसका नतीजा एक ओर तो सम्पत्ति संचय, राज सत्ता और अपरिमित भौतिक शक्ति की मायापुरी है और दूसरी ओर आम लोगों के लिए न तो काम है, न दाम है और न आराम है। यही कारण है कि गांधी, मशीनों के लिए पागलपन की हद तक जो ललक है, उसके घोर विरोधी थे, खुद मशीन के कतई नहीं। मशीनों के लिए जो विवेकान्ध चूहा-दौड़ चल रहा है, वह आखिर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसलिए ? वह तो मानव की श्रमशक्ति बचाने के लिए ही है न। इस संदर्भ में गांधी का कथन है-

''लोग इस श्रम शक्ति को बचाने की धुन में यहाँ, तक आगे बढ़ जाते हैं कि हजारों लोग बेकार होकर खुली सड़कों पर पड़कर भूखों मरने लग जाते हैं। मैं समय और श्रम दोनों की बचत करना चाहता हूँ, लेकिन मानव जाति के किसी एक अंश के लिए नहीं, वरन् सबके लिए। मैं चाहता हूँ कि पूँजी का संचय चंद हाथों में न रहकर, सभी हाथों में हो। मशीन आज केवल कुछ व्यक्तियों को लाखों लोगों की पीठ पर सवार होने में सहायता पहुँचती है। इन सबके पीछे मेहनत बचाने की कल्याण भावना नहीं, वरन् लालच है। अपनी समस्त शक्ति से इस व्यवस्था के विरोध में मैं लड़ रहा हूँ। मशीनों को मनुष्य की हडिड्याँ चूसने का काम नहीं करने देना है।'' - *'यंग इंडिया', 13 नवंबर, 1924*

गांधी यंत्रकला के विकास के विरोधी कतई नहीं थे। उनका विरोध सिर्फ वहीं था, जहाँ उच्च तकनीक लोगों को स्वाश्रयी और आत्म निर्भर बनने से रोकती है। बड़ी-बड़ी मशीनों से बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था और स्वार्थपूर्ण स्पर्धा की समस्यायें उठ खड़ी होती हैं, जिससे निर्मम शोषण और साम्राज्यवाद को बढ़ावा मिलता है। गांधी का मानना है-

''बड़े पैमाने पर औद्योकरण किये जाने का परिणाम यह होगा कि होड़ और बाजार की समस्यायें पैदा होंगी। इनके फलस्वरूप गांव वालों का किसी न किसी रूप में शोषण किया जायेगा। इसलिए हमें इस बात को ध्यान में रखकर चलना है कि गांव आत्मनिर्भर हों और अपनी जरूरत का सामान मुख्यत: वहीं तैयार कर लें। यदि ग्रामोद्योगों का यह स्वरूप कायम रखा जाए, तो फिर इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि गांव वाले आधुनिक प्रौद्योगिकी और उपस्करों का प्रयोग करें- ऐसे यंत्रोपकरणों का, जो वे आसानी से प्राप्त कर सकें और स्वयं बना सकें। शर्त यह ही कै इन यंत्रों का उपयोग दूसरों का शोषण करने के लिए नहीं होना चाहिए।'' - *'हरिजन', 29 अगस्त, 1936*

इन ढ़ेर सारे उदाहरणों के प्रकाश में अब यह स्पष्ट हो चुका है कि गांधी मशीन, मनुष्य और प्रकृति के बीच स्वस्थ सम्बन्ध कायम करना चाहते थे। मशीनें मनुष्य की साथी-संगी हों, उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि करें और उसे ऊब व उकताहट पैदा करने वाले बोझिल श्रम से बचायें। जहाँ लोग रह रहे हैं, वहीं उन्हें रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों, इसके लिए उन्हें बड़े-बड़े शहरों की तरफ न भागना पड़े। जहाँ लोग रह रहे हैं, वहीं उनकी छोटी-छोटी कर्मशालायें हों, जिनमें छोटी-छोटी मशीनें लगी हों। ये कर्मशालायें उनकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हों।

मो. 9415347027

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महात्मा गाँधी और चित्रकला

अशोक भौमिक

(प्रसिद्ध चित्रकार और लेखक)

भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी की उपस्थिति ने बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध को मात्र राजनीतिक स्तर पर ही नहीं वरन् समूचे भारतीय समाज को प्रभावित किया था। चित्रकला के प्रति गाँधी जी का आकर्षण किसी चित्रकार का नहीं बल्कि एक ऐसे सजग कला प्रेमी का था जो सम्भवत: सदियों से सन्दर्भों और कहानियों की जंजीरों में जकड़ी हुई भारतीय कला की मुक्ति की जरूरत को समझ पा रहा था। महात्मा गाँधी का कहना था, ''इसकी क्यों जरूरत हो कि चित्रकार खुद अपना चित्र मुझे समझाए। चित्र ही अपनी बात मुझ तक क्यों नहीं पहुँचा पाए? मैंने वेटिकन में क्रॉस पर लटके ईसा की एक मूर्ति देखी, जिसे देखकर मैं स्तब्ध रह गया। बैलूर में एक प्रतिमा मुझे अलौकिक लगी, जिसने मुझसे खुद बातें की, बिना किसी समझाने वाले की मदद के।''

यहाँ ग़ौरतलब है कि रबीन्द्र नाथ ठाकुर ने चित्रकला के संदर्भ में 'अर्थ' या 'मायने' पर चर्चा करते हुए कुछ इसी तरह की बात कही थी- ''लोग मुझसे अक्सर मेरे चित्रों के अर्थ पूछते हैं। मैं खामोश रहता हूँ, ठीक उसी तरह जैसे मेरे चित्र खामोश हैं। उनका (चित्रों का) काम स्वयं को अभिव्यक्त करना है, व्याख्या करना नहीं।'' रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने बार-बार चित्रों को 'समझने' के स्थान पर 'अनुभव' करने की बात कही है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि भारतीय चित्रकला प्राय: व्याख्या आश्रित कला धारा के रूप में ही विकसित होती रही है। साथ ही राज सत्ता और धर्म सत्ता ने अपने स्वार्थों के कारण चित्रकला को 'कथा-चित्रण' के दायरे में बाँध कर अपनी प्रजा/भक्तों पर अपने मोह जाल का विस्तार किया। भारतीय चित्रकला इतिहास का एक बहुत बड़ा हिस्सा झूठ को सच करने के सफल प्रयासों से भरा पड़ा है।

महात्मा गांधी और रबीन्द्रनाथ ठाकुर के विचारों की समानता के बावजूद भारतीय चित्रकारों ने उन्हें समझने का प्रयास नहीं किया और उनकी 'आधुनिकता' कथा चित्रण से मुक्त नहीं हो सकी।

पिछले सौ वर्षों में महात्मा गांधी पर जितने चित्र और मूर्तियाँ बनी हैं उतनी शायद किसी भी अन्य धार्मिक, राजनैतिक नेता या किसी देवी देवता की नहीं बनी होगी। यहाँ डाक टिकटों और करेंसी नोटों की बात अगर छोड़ दें, स्कूल- कॉलेज से लेकर सरकारी कला संस्थाओं द्वारा गांधी जयंती के अवसर पर विभिन्न कला प्रतियोगिताओं और कलाकार शिविरों के माध्यम से अनगिनत चित्र बनाये जाते रहे हैं। साथ ही, महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर प्रतिष्ठित और युवा चित्रकारों ने समान रूप से ऐसे आयोजनों में भाग लेकर हज़ारों चित्र बनाये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसे आयोजनों की सार्थकता के बारे में टिप्पणी करने से बचते हुए यहाँ हम महात्मा गांधी पर बने कुछ महत्त्वपूर्ण चित्रों और मूर्तियों पर चर्चा करेंगे।

महात्मा गांधी और चित्रकार नंदलाल बोस का छापा चित्र

महात्मा गांधी के राजनैतिक जीवन में 'दांडी मार्च' (1930) को एक बेहद महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में सदा याद किया जाएगा। हम सभी जानते हैं कि जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड के बाद कई नेताओं और जनता के एक बड़े तबके का यह मानना था कि इस हत्याकांड के विरुद्ध महात्मा गांधी का रुख जरूरत से ज्यादा नरम था। इस घटना के बाद जब 1922 में गांधी ने असहयोग आंदोलन का ऐलान किया तो लोगों को लगा कि गांधीजी का यह आंदोलन किसी निर्णायक अंत तक जरूर पहुँचेगा किन्तु 12 फरवरी, 1922 को उत्तर प्रदेश के चौरी चौरा में जब प्रदर्शन हिंसक रूप में तब्दील हो गया तो गांधी जी उसी समय एकाएक अपना 'असहयोग आंदोलन' वापस ले लिया। इस घटना से लगभग सभी राष्ट्रीय नेता और आंदोलन में भाग ले रहे ज़्यादातर लोग हतप्रभ रह गए। जिस जोश और समर्पण के साथ यह आंदोलन शुरू हुआ था, गांधी जी के एकतरफा निर्णय ने उस पर पानी फेर दिया था। गांधी जी के इस निर्णय की आलोचना न केवल जवाहरलाल नेहरू ने की थी, बल्कि भगत सिंह ने भी कड़े शब्दों में अपनी प्रतिक्रिया दी थी।

बहरहाल लाहौर में आयोजित 1930 के कांग्रेसी अधिवेशन के दौरान अंग्रेजी शासन के खिलाफ 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' शुरू करने का प्रस्ताव लिया गया था और महात्मा गांधी ने अपने नमक आंदोलन की शुरुआत 12 मार्च, 1930 को की, जिसे हम दांडी मार्च के नाम से जानते हैं। इस यात्रा में महात्मा गांधी के साथ बहुत बड़ी तादाद में लोग जुटे थे। चित्रकार नन्दलाल बोस (1882-1966), जो कि रबीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के बहुत करीब थे; उन्होंने इस आंदोलन के प्रचार में अहम भूमिका निभाई थी। उन्होंने 12 अप्रैल, 1930 को लकड़ी पर खुदाई कर महात्मा गांधी का एक छापा चित्र बनाया था। वैसे इस चित्र का आकार न तो ज्यादा बड़ा है (18.4 से मी. 29.3 से मी) और न ही यह बहुरंगी है, किन्तु निर्विवाद रूप से यह भारत की आजादी की लड़ाई के दौरान निर्मित सबसे महत्वपूर्ण चित्र है (देखें- चित्र 1)। छापा चित्र होने के कारण व्यापक समुदाय तक इसके प्रिंटों की पहुँच सम्भव हो सकी थी।

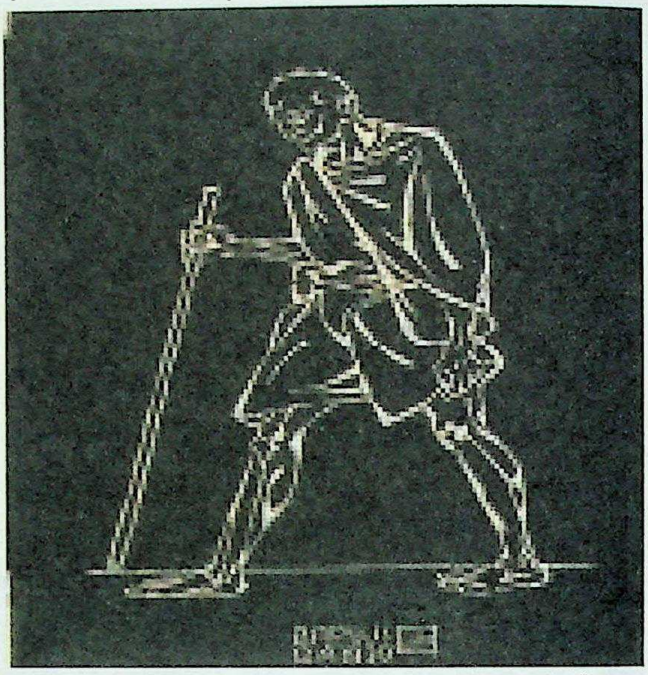

चित्र 1

इस चित्र के माध्यम से चित्रकार नन्दलाल बोस ने गांधी जी की सादगी, आत्मविश्वास और अडिग इरादों वाले व्यक्तित्व को अत्यंत सरलता से प्रस्तुत किया था। बहुत जल्द इस चित्र की प्रतिलिपियाँ देश के कोने कोने तक पहुँच गयीं और गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने की दिशा में संघर्षरत एक राष्ट्र के लिए यह चित्र किसी प्रतीक सा बनता गया था।

बेहद सरल दिखने वाले इस चित्र की शक्ति इसकी संरचना में है। काले-सफेद रंग के इस एकवर्णी चित्र में हम न केवल एक चकित कर देने वाली सरलता से रूबरू होते हैं बल्कि 'वुडकट' माध्यम पर चित्रकार की गहरी पकड़ से भी परिचित होते हैं। सतही तौर पर यह चित्र हमें किसी रेखांकन जैसा ही लगता है किन्तु गौर से देखने पर इसमें विविध प्रकार की रेखाओं का एक बेहद संतुलित प्रयोग दिखाई पड़ता है। महात्मा गांधी की चादर के अंदरूनी हिस्से में, जहाँ छोटी-छोटी टूटी रेखाओं का प्रयोग है, वहीं महात्मा गांधी के शरीर के लिए लम्बी और लयात्मक रेखाओं का प्रयोग किया गया है। चित्र में महात्मा गांधी की आकृति के लिए इन दो प्रकार की रेखाओं के प्रयोग के कारण ही महात्मा गांधी की कमजोर शारीरिक संरचना के बावजूद उनकी भंगिमा में एक अद्भुत दृढ़ता का भाव स्पष्ट तौर पर उभर कर आ सका।

यह चित्र एक त्रिकोणीय संरचना है (पिरामिड जैसा)।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गौर से देखने पर इस चित्र में जो आत्मविश्वास और दृढ़ता नजर आती है, वह इस विशेष संरचना की वजह से भी है। इस त्रिकोण का निर्माण चित्र के आधार की एक सरल रेखा, दाहिने हाथ की लाठी और गांधी जी के बाएँ पैर से हुआ है। चित्र में जहाँ मूलत: छोटी-बड़ी, टूटी-लम्बी लयात्मक रेखाओं का प्रयोग किया गया है, वहीं इसके विपरीत लाठी और आधार रेखा के 'ज्यामितीय' और सीधे होने के बावजूद, इस पर हमारी नजर नहीं ठहरती है। यह इस चित्र की एक अन्यतम विशेषता है जो इस चित्र को कालजयी बनाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे लोग जो महात्मा गांधी को नहीं जानते या जो इस चित्र के ऐतिहासिक महत्व से अपरिचित हैं, उन्हें भी यह चित्र अपने अत्यंत सरल और उत्कृष्ट कला गुणों के कारण एक महत्वपूर्ण कला कृति के रूप में सदैव आकर्षित करता रहेगा।

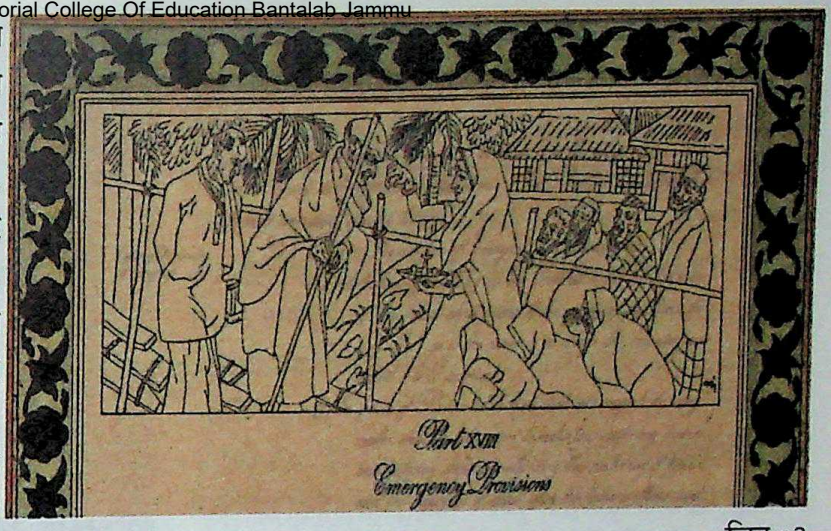

चित्र ०3

यह चित्र 'जनांदोलन में छापा चित्रों (प्रिंटमेकिंग) की महत्वपूर्ण भूमिका' को रेखांकित करता है। साथ ही हमें यह भी बताता है कि एक महान चित्र बनाने के लिए न तो उसका आकार में बड़ा होना अनिवार्य है और न ही कैनवास जैसे माध्यम और रंगों की उपलब्धता ही जरूरी है।

चित्रकार नन्दलाल बोस द्वारा 'बापूजी' शीर्षक से बनाए गए इस वुडकट की एक प्रिंट-प्रति दिल्ली स्थित नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट में संरक्षित है।

महात्मा गांधी के इस छापा चित्र को बनाने के बाद महात्मा गांधी ने नन्दलाल बोस को कांग्रेस के लखनऊ (1935), फैजपुर(1936) और हरिपुरा (1938) अधिवेशनों में मंडपों को न केवल सुसज्जित करने के लिए बुलाया बल्कि उन्होंने अपने व्याख्यानों में कई बार नन्दलाल बोस के काम की तारीफ भी की। प्रख्यात चित्रकार के. जी सुब्रमण्यम का मानना है कि "नंदलाल बोस की ख्याति तब तक बंगाल के एक छोटे से एलीट वर्ग तक ही सीमित थी किन्तु बापू से मिली इस सार्वजनिक स्वीकृति ने उन्हें रातों-रात भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण कलाकार बना दिया।" (The Nandlal-Gand-hi-Rabindranath Connection : K.G. Subramaniyam) आगे चल कर 'भारत के संविधान' के चित्रण और अलंकरण का कार्यभार जब उन्हें मिला तब उन्होंने दो अध्यायों के लिये महात्मा गांधी को चित्रित किया। 'राजभाषा' अध्याय के लिए (देखें- चित्र 2) जहाँ उन्होंने दांडी मार्च के दौरान अपने बनाये हुए छापा चित्र का प्रयोग किया वहीं 'आपातकालीन प्रावधान' नामक अध्याय के लिए उन्होंने

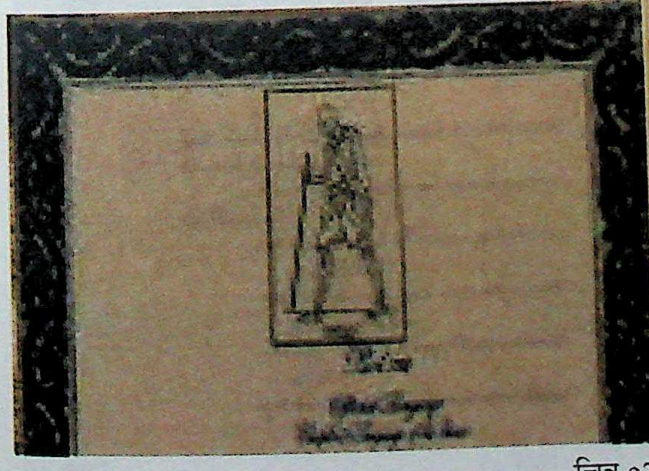

चित्र ०2

चित्र ०4

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नोआखाली में सांप्रदायिक सौहार्द के लिए कार्यरत महात्मा गांधी को चित्रित किया है (देखें- चित्र 3)। संविधान के एक और अध्याय में महात्मा गांधी का महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। इस चित्र में (देखें- चित्र 4) नेताजी सुभाष चंद्र बोस का सैनिक वेश में सलामी लेने का चित्र है जहाँ चित्र के बॉर्डर पर नेताजी द्वारा आज़ाद हिन्द रेडियो पर देश के उद्देश्य से दिए गए भाषण का एक वाक्य लिखा है, ''महात्मा जी- हमारे राष्ट्रपिता, भारत की आजादी के लिए हमारे इस पवित्र युद्ध में हम आपके आशीर्वाद की कामना करते हैं।''

पोस्टरों में महात्मा गांधी

भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के जोर पकड़ने के साथ ही लोकप्रिय या चलित संस्कृति (पॉपुलर कल्चर) में देशप्रेम को केंद्र में रखने वाले तमाम छापा चित्रों का प्रकाशन शुरू हो गया था। इन प्रकाशकों में सबसे महत्त्वपूर्ण शायद कानपुर के श्याम सुन्दर लाल थे। श्याम सुन्दर लाल के पोस्टरों की छपाई कानपुर के कई छापाखानों में होती थी। इस तथ्य से इन पोस्टरों की विपुल माँग के बारे में हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। इन पोस्टरों के लिए उन्होंने कई चित्रकारों को अनुबंध भी किया था जिनमें रूप किशोर कपूर और प्रभु दयाल प्रमुख थे।

कानपुर के अलावा कराची, लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, मुंबई और कलकत्ता से भी बड़े पैमाने पर ऐसे पोस्टर छापे गए। यहाँ यह गौरतलब है कि इन पोस्टरों को मुफ्त बाँटने के लिए प्रकाशित नहीं किया गया था और इनमें से अधिकांश पोस्टरों

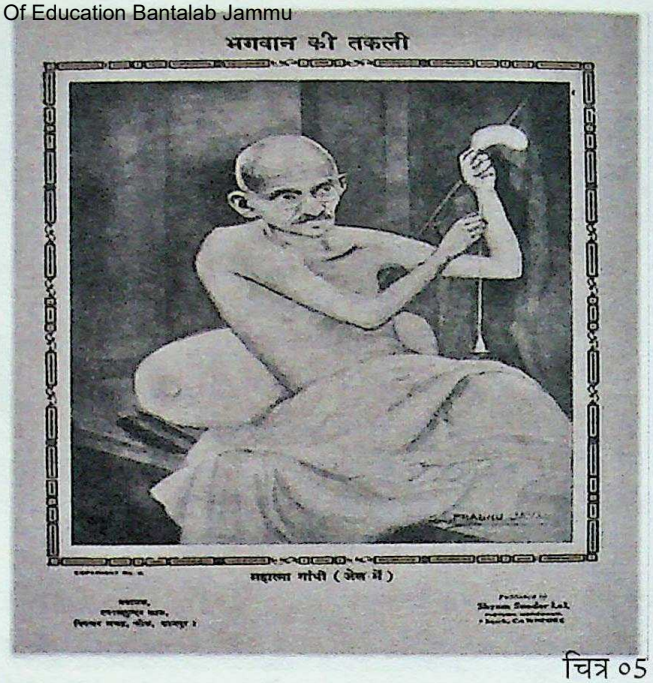

चित्र 05

का कॉपी राइट इसके प्रकाशकों के नाम था। इन पोस्टरों का उपयोग एक व्यक्ति के हाथों से कई व्यक्तियों तक पहुँचाने के साथ-साथ सार्वजनिक स्थानों पर दीवार पर चिपकाने या फ्रेम में जड़ कर घरों की दीवारों पर टाँगने के लिए किया जाता था। ऐसे राष्ट्रवादी पोस्टरों की शृंखला में महात्मा गांधी पर केन्द्रित पोस्टरों का प्रकाशन बहुत बड़ी संख्या में किया गया। गांधी जी पर बने इन पोस्टरों के जरिये देश की विशाल आबादी के बीच गांधी को एक 'महात्मा' के रूप में स्थापित करने की कोशिश साफ दिखाई देती है। इन पोस्टरों में गांधी जी को राम और कृष्ण

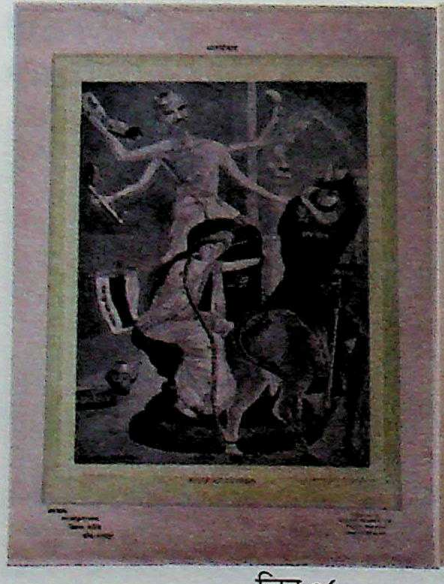

चित्र 06

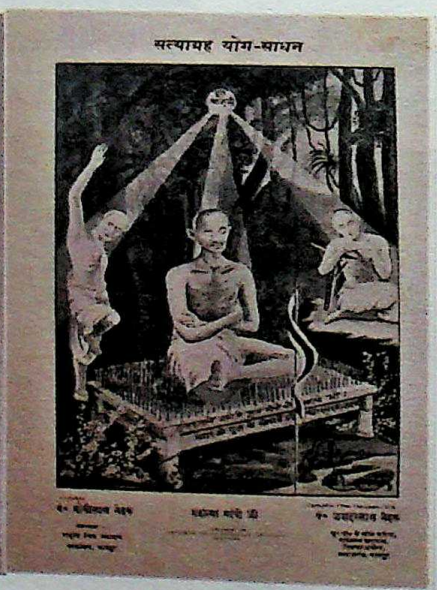

चित्र 07

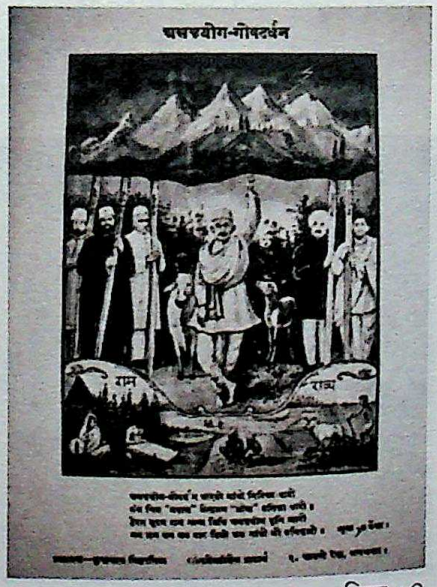

चित्र 08

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के समकक्ष ही नहीं रखा गया है बल्कि उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में भी चित्रित किया गया है। कानपुर के श्याम सुन्दर लाल द्वारा प्रकाशित और चित्रकार प्रभु दयाल द्वारा अंकित इस चित्र में गांधी जी को जेल में तकली कातते हुए दिखाया गया है (देखें- चित्र 5) लेकिन इसे 'भगवान की तकली' शीर्षक देकर एक नया आयाम जोड़ दिया गया। कानपुर के ही एक दूसरे प्रकाशक लाला संत लाल जैन ने और भी नायाब कल्पनाशीलता से गांधी को चित्रित किया। 'कृष्ण गांधी मिलन' शीर्षक से बने इस पोस्टर (देखें- चित्र 6)में नमक आंदोलन से जुड़े गांधी जी को कृष्ण के 'माखन चोर' के सामानांतर 'नमक चोर' के रूप में दिखाया गया है। इसी प्रकार राष्ट्रीय चित्र प्रकाशन कार्यालय नामक संस्था द्वारा प्रकाशित और प्रभु दयाल द्वारा चित्रित 'सत्याग्रह योग साधन' शीर्षक पोस्टर (देखें- चित्र 7) में महात्मा गांधी के साथ-साथ मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू को योग साधना में तल्लीन दिखाया गया है। इसी क्रम में कलकत्ते से प्रकाशित एक पोस्टर (देखें- चित्र 8) में गोवर्धन पर्वत को अपनी ऊँगली पर उठाये हुए गांधी जी को दिखाया गया है। 'भारतोद्धार' शीर्षक एक दूसरे पोस्टर में गांधी जी चतुर्भुज शंकर के रूप में भारत माता को अंग्रेज़ शासक यानी यमराज से मुक्त करा रहे हैं ।

चलित संस्कृति या पॉपुलर कल्चर में महात्मा गांधी को जिस वैविध्य और कल्पनाशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है वैसा आधुनिक काल में विश्व में शायद ही कहीं और हुआ हो। अट्ठारहवीं शताब्दी ईसा पूर्व में मेसोपोटामिया साम्राज्य के सम्राट हम्मूराबी ने जिस न्याय प्रणाली की स्थापना की, उसे उन्होंने पत्थर के फलक पर खुदवा दिया था। इस फलक के शीर्ष पर सूर्य देव के उत्तराधिकारी के रूप में सम्राट हम्मूराबी को दिखाया गया है। ज़ाहिर है कि इस फलक को देखते हुए संहिता में लिखे गए नियम उस निरक्षर जनता की समझ में आए या न आए हों ; ईश्वर और सम्राट के रिश्तों के बारे में कोई गलतफहमी नहीं थी। वास्तव में अशिक्षित और निरक्षर जनता के बीच किसी व्यक्ति को ईश्वर बना कर स्थापित करने का यह बहुत पुराना और आज़माया हुआ नुस्खा है, जिसका प्रयोग बीसवीं सदी के भारत में अत्यंत व्यापकता के साथ करते हुए मोहन दास गांधी को महात्मा गांधी में रूपांतरित किया गया था।

प्रगतिशील चित्रकार चित्तप्रसाद और महात्मा गांधी

महात्मा गांधी को जीवन में अनेक बार जेल जाना पड़ा था, लेकिन 1942 से 1944 तक का उनका पूना कारावास शायद सबसे महत्त्वपूर्ण था। 8 अगस्त, 1942 को 'भारत छोड़ो' आंदोलन की घोषणा के तुरंत बाद महात्मा गांधी , कस्तूरबा गांधी, महात्मा गांधी के सहायक महादेव देसाई और सरोजिनी नायडू को कैद कर पूना के आग़ा ख़ान पैलेस में रखा गया। इसी कारावास के दौरान महादेव देसाई और कस्तूरबा गांधी का निधन हुआ था। महात्मा गांधी इस एकांतवास से पूर्व 6 मई 1944 को पहली बार सार्वजनिक प्रार्थना सभा में शामिल हुए थे। यह घटना बेहद महत्त्वपूर्ण थी और पीपुल्स वॉर पत्रिका की ओर से रिपोर्टिंग के लिए यशस्वी पत्रकार निखिल चक्रवर्ती और चित्रकार चित्तप्रसाद को पूना भेजा गया था। चित्तप्रसाद ने इस अवसर पर पत्रिका के लिए महात्मा गांधी का एक रेखांकन (देखें चित्र-9) बनाया था। बाद में इसी रेखांकन के आधार पर जलरंग से एक रंगीन चित्र (देखें- चित्र 10) भी बनाया था।

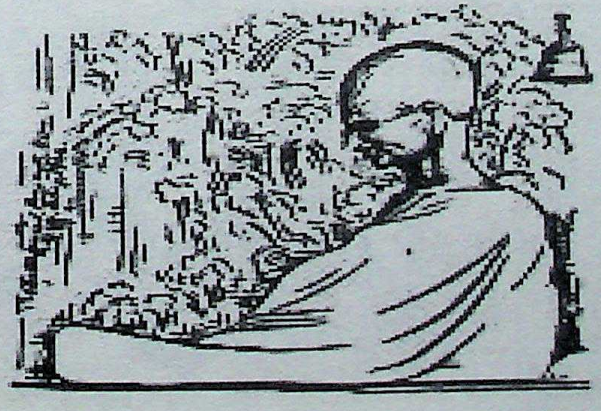

चित्र ०9

चित्र 10

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चित्र 11

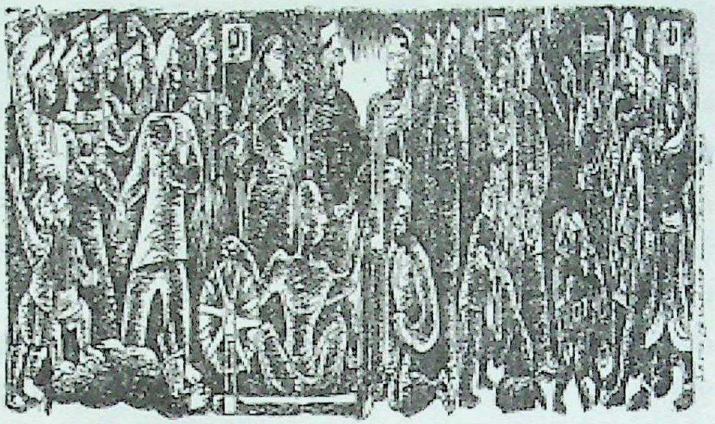

चित्र 12

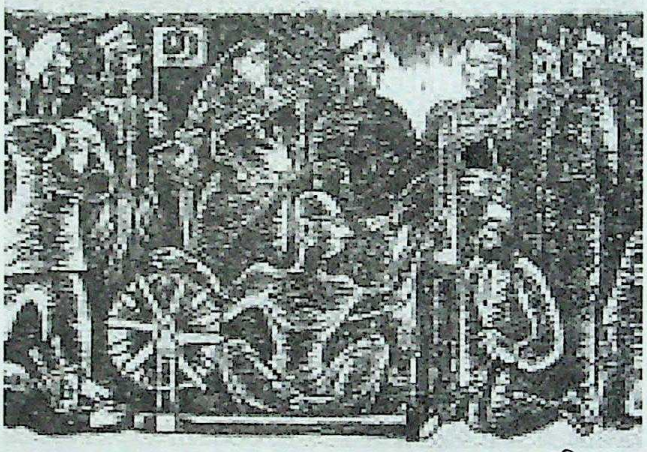

चित्र 13

चित्तप्रसाद अपनी राजनैतिक विचारधारा के चलते अपने चित्रों में काँग्रेस की कटु आलोचना करते रहे हैं, लेकिन महात्मा गांधी के प्रति उनका रुख भिन्न था। दांडी मार्च पर महात्मा गांधी के चित्र (देखें- चित्र 11) के अलावा चित्तप्रसाद ने एक अन्य महत्त्वपूर्ण चित्र में कांग्रेस , मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के बीच बैठे, चरखा कातते महात्मा गांधी को चित्रित किया था (देखें- चित्र 12 और 13 डिटेल्स)।

गांधी पर भारतीय चित्रकारों के चित्र

बीते बरसों में महात्मा गांधी पर हज़ारों चित्र बने हैं और निरंतर बनाये जा रहे हैं। यह तथ्य इस बात की ओर कतई इंगित नहीं करता कि आज के चित्रकार, महात्मा गांधी को जानते समझते हैं या उनसे प्रेरित हैं। पिछले दिनों महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर ललित कला अकादमी और अन्य सरकारी कला संस्थानों ने अनेक कला शिविरों का आयोजन कर महात्मा गांधी को याद करने का अपना सरकारी दायित्व निभाया। इन कला शिविरों में चित्रकारों ने महात्मा गांधी के चप्पल, घड़ी, लाठी, चरखा, चश्मा आदि तत्त्वों को जोड़ -तोड़ कर ठेके पर

चित्र 14

चित्र 15

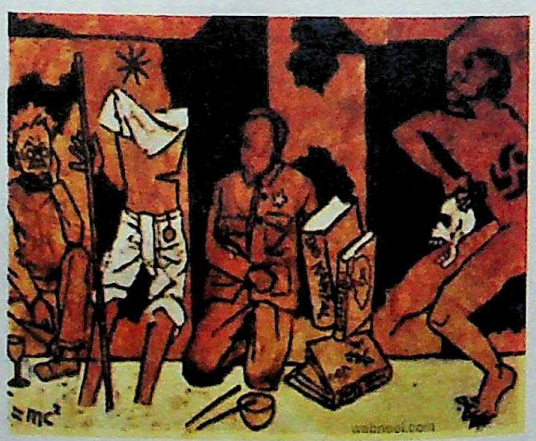

चित्र 16

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चित्र 17

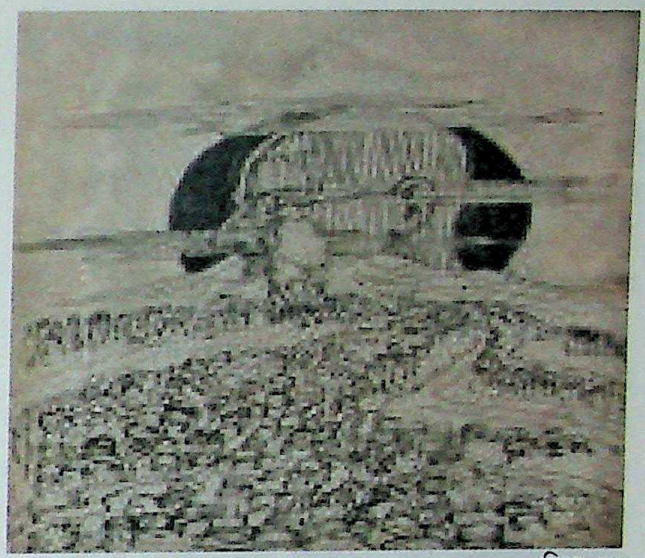

चित्र 18

ऐसी संस्थाओं के लिए मानदेय और यात्रा व्यय के एवज में हजारों चित्र बनाये। एक ओर, जहाँ इन कला संस्थाओं और कलाकारों ने यह नहीं सोचा कि महात्मा गांधी पर चित्र बना कर उन्हें क्या हासिल हो रहा है और दुनिया के किसी देश में अपने दिवांगत नेताओं को याद करने के लिए कला शिविरों का आयोजन कर कलाकारों से चित्र क्यों बनवाया जाता है। क्या साहित्यिक संस्थाओं में कवियों और लेखकों के शिविर आयोजन कर उनसे महात्मा गांधी के जीवन पर कविता या कहानी ठेके पर लिखवाने का चलन है? भारतीय कला संस्थानों के रचनात्मक कार्यकलाप की दृष्टि का यह एक ऐसा उदाहरण है जो अपने आप में हास्यास्पद और कला विरोधी भी है। इसके बावजूद भारत के कई महत्त्वपूर्ण चित्रकारों ने समय समय पर महात्मा गांधी को केंद्र में रखकर चित्र बनाये हैं जिसके कुछ उदाहरण यहाँ देखे जा सकते हैं- चित्रकार हकुशाह द्वारा बनाया गया चित्र (चित्र 14), एस एच रजा (चित्र 15), मकबूल फि दा हुसैन (चित्र 16) और 31 जनवरी 1948 की सुबह, चौराहे पर अखबारों में महात्मा गांधी की हत्या की खबर पढ़ते लोगों को विषय बना कर कृष्ण खन्ना द्वारा बनाया गया चित्र । इन चित्रकारों के अलावा, आजादी के पहले महात्मा गांधी पर जिन चित्रकारों ने चित्र बनाये थे उनमें उपेंद्र महारथी (1908 - 1981) अन्यतम थे (देखें- चित्र 18) ।

उपेंद्र महारथी नन्दलाल बोस के शिष्य थे जिन्होंने बड़ी संख्या में महात्मा गांधी पर चित्र बनाये थे। उन्होंने 1940 में रामगढ़ में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन की मण्डप सज्जा भी की थी।

विदेशी कलाकारों की कृतियों में महात्मा गांधी

अपने जीवन काल में ही महात्मा गांधी कई देशों के नेताओं के लिए प्रेरणास्रोत बन चुके थे। उनके जीवन और उनकी नीतियों ने दुनिया भर के बुद्धिजीवियों, लेखकों और विदेशी चित्रकारों को प्रभावित किया। विदेशी कलाकारों ने उन पर कई चित्र भी बनाये। दक्षिण एशियाई चित्रकारों में मौजूदा पेरिस में रह कर काम कर रहे बांग्लादेश के चित्रकार अहमद शहाबुद्दीन ने महात्मा गांधी पर अपनी विशिष्ट शैली में बेहद प्रभावशाली चित्र बनाये (देखें- चित्र 19 और 20)। पूर्वी यूरोप के कई चित्रकारों और मूर्तिकारों ने अपनी कृतियों में गांधी को

चित्र 19

चित्र 20

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

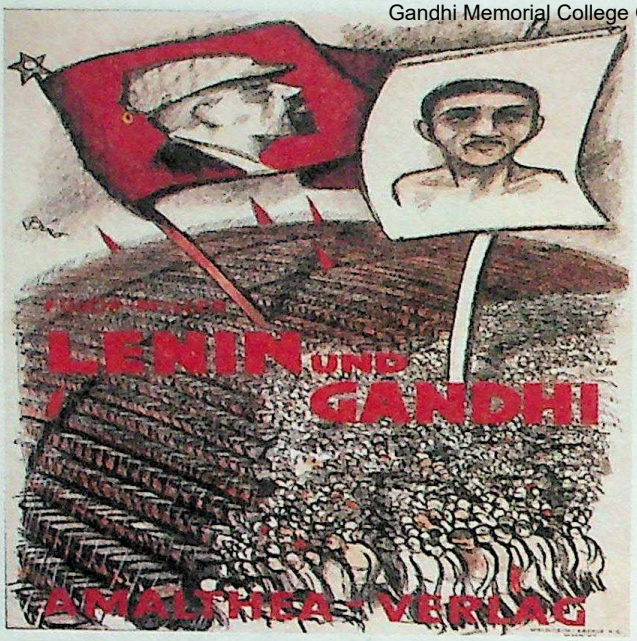

चित्र 21

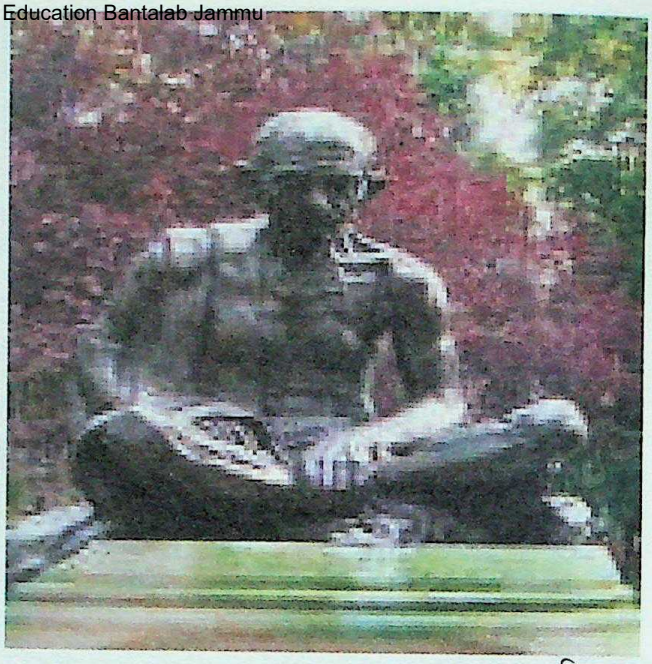

चित्र 22

चित्रित किया है। एक दिलचस्प राजनैतिक पोस्टर में गांधी को लेनिन के साथ देखा जा सकता है। पोस्टर के बाएँ आधे हिस्से में लेनिन की तस्वीर वाले एक लाल झंडे के नीचे विशाल सैन्य दल को मार्च करते दिखाया गया है जबकि महात्मा गांधी के चित्र के नीचे भूखे और अल्पवस्त्र पहने लोगों के जुलूस को दिखाया गया है (देखें- चित्र 21)। पोलैंड की महिला मूर्तिकार फ्रेडा ब्रिलियंट (1903-1999) ने महात्मा गांधी की अनेक मूर्तियाँ बनाई जिनमें लंदन के टविस्टॉक स्क्वायर पर लगी मूर्ति (देखें- चित्र 22) महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार हंगेरी की महिला चित्रकार एलिज़ाबेथ बर्नर (1910-2001) ने अपने भारतीय प्रवास के दौरान शांतिनिकेतन में कला गुरूओं से शिक्षा ग्रहण की थी। वे 1934 में महात्मा गांधी से पहली बार मिली थीं। एलिज़ाबेथ बर्नर को अपना चित्र बनाने के लिए महात्मा गांधी ने केवल आधे घंटे का वक्त दिया था और उसी सीमित अवधि में एलिज़ाबेथ ने महात्मा गांधी का चित्र (देखें- चित्र 23) बनाया था। फ्रेडा ब्रिलियंट की मूर्ति के अलावा इंग्लैंड के पार्लियामेंट हाउस के बाहर ब्रिटिश मूर्तिकार फिलिप जैक्सन की मूर्ति काफी प्रभावशाली है। इसी के अनुरूप राज्य सभा के

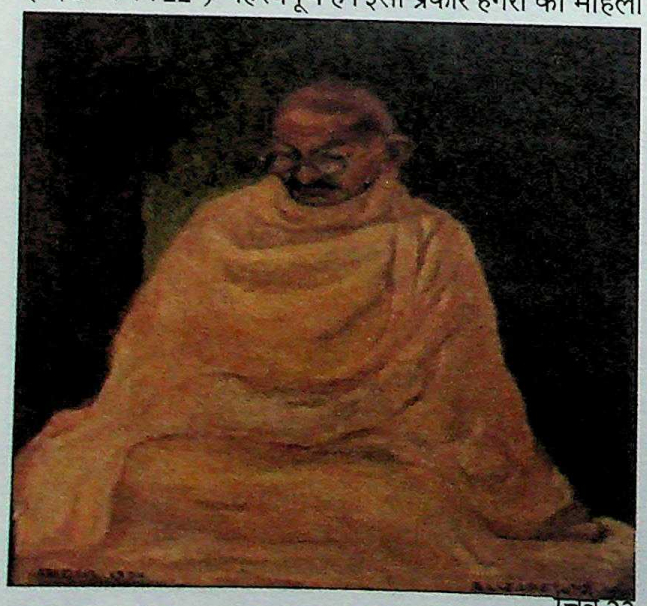

चित्र 23

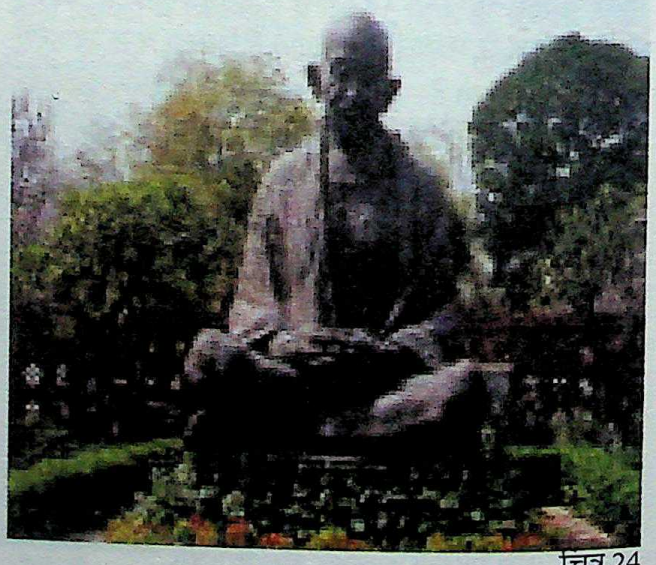

चित्र 24

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

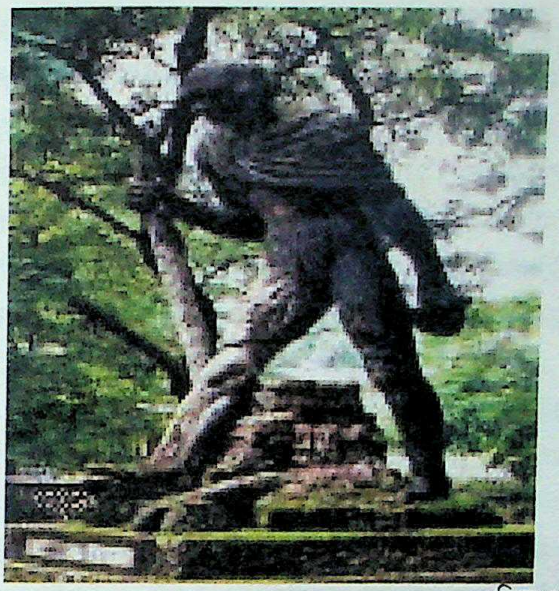

चित्र 25

गेट नम्बर 1 के सामने मूर्तिकार राम सुतार द्वारा बनाई गई महात्मा गांधी की 16 फीट ऊँची भव्य मूर्ति (देखें- चित्र 24) हमें सहज ही आकर्षित करती है। भारतीय मूर्तिकारों द्वारा रचित महात्मा गांधी की मूर्तियों में सबसे चर्चित शायद रामकिंकर की बनाई हुए मूर्ति है। इसे देखते हुए हमें हालांकि नन्दलाल बोस के प्रिंट (चित्र 1) की याद आती है लेकिन नन्दलाल बोस द्वारा बनाया गया गांधी जी का चित्र जहाँ उनके दांडी मार्च पर केन्द्रित था वहीं रामकिंकर बैज ने 1947 में नोआखाली के सांप्रदायिक दंगों के बाद गांधी जी को बनाया था (देखें- चित्र 25)। इस मूर्ति में गांधी जी का सिर सामने की तरफ झुका हुआ है और उनके पैरों के नीचे एक नरमुंड दिखाया गया है। वास्तव में महात्मा गांधी के लिए नोआखाली की यात्रा मानवता के कत्लगाह से होकर गुजरने की ही यात्रा थी जहाँ अल्पमत-बहुमत केन्द्रित राजनीति के हाथों मानवता की हत्या हुई थी।

भारत के लगभग प्रत्येक शहर में महात्मा गांधी की मूर्ति हमें दिख जाती है। इन्हीं में से एक है चेन्नाई के मेरिना बीच पर मूर्तिकार देवी प्रसाद रायचौधुरी द्वारा बनाई गई मूर्ति जिसमें गांधी जी के आत्मविश्वास को बेहद खूबसूरती के साथ दिखाया गया है (देखें- चित्र 26)।

लेकिन इन सब से बिल्कुल भिन्न फेलिक्स टोपोल्स्की (1907-1989) द्वारा बनाया गया महात्मा गांधी का चित्र है जो दर्शकों को आज भी अचंभित करता है। फेलिक्स टोपोल्स्की ने अपनी भारत यात्रा के दौरान महात्मा गांधी के अनेक रेखांकन किये थे। इन रेखांकनों के आधार पर उन्होंने 1946 में एक चित्र बनाया था जिसमें उन्होंने गांधी जी की हत्या होने के मुहूर्त को चित्रित किया था (देखें- चित्र 27)। चित्र में गोली लगने के बाद खून से लथपथ महात्मा गांधी का दाहिना हाथ किसी की तरफ़ इशारा कर रहा है। गांधी जी के इस हाथ के नीचे उन्हें सहारा देने के लिए बढ़े एक महिला के हाथ दिखाई पड़ते हैं।

यह चित्र हालांकि राष्ट्रपति भवन के कला दीर्घा में प्रदर्शित है किन्तु इस चित्र के साथ जुड़ा एक बड़ा सवाल आज भी अनुत्तरित है। टोपोल्स्की ने महात्मा गांधी की हत्या के दो वर्ष पूर्व इस चित्र को बनाया था। क्या टोपोल्स्की को ऐसी हत्या की कोई आशंका थी? क्या इस चित्र की तारीख लिखने में चित्रकार से कोई गलती हुई है?

इन सवालों पर टोपोल्स्की ने अपनी तरफ से कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया था।

मो. 9811120184

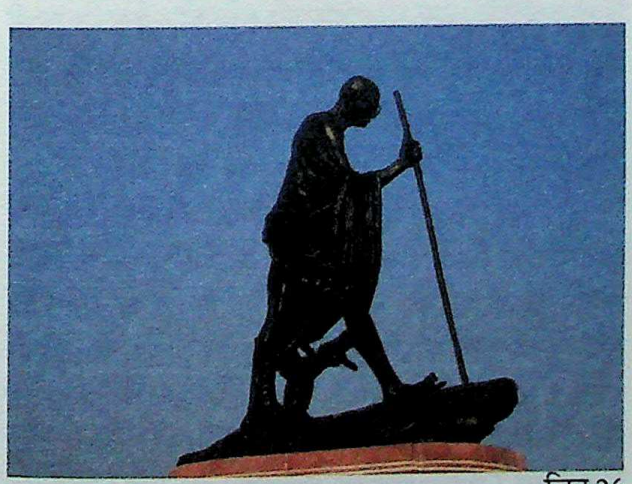

चित्र 26

चित्र 27

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी के परस्पर विरोधी विचार

(हरिपद राय चौधरी की चर्चित कृति : *'दा डॉर्क साइड ऑफ गांधी'* के एक अंश का अनुवाद)

प्रांजल धर

(चर्चित युवा कवि, आलोचक, अनुवाद व मीडिया विशेषज्ञ)

अहिंसा पर आधारित गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने उद्योगों की संवृद्धि का ध्वंस करके ब्रिटिश भारत की आर्थिक दशा को बरबाद कर दिया था। महान आर्थिक महामंदी के प्रभाव के कारण भारत तबाह हो गया था और जनता व्यापक स्तर पर बेरोज़गार हो गयी थी। युद्ध की पुकार ने लोगों के बीच अनिश्चितता का भय उत्पन्न कर दिया था लेकिन गांधी ने इसे अहिंसा आन्दोलन की शक्ल में भारत छोड़ो आन्दोलन का आह्वान करने के लिए एक उपयुक्त क्षण माना। खाद्यान्नों के भयंकर अभाव के कारण मुद्रास्फीति आ गयी। जहाँ अकाल के कारण लोगों का मरना शुरू हो गया था, वहाँ लोगों की दुर्दशा पर विचार किए बिना, गांधी ने यह सोचा कि भारत की स्वतंत्रता के लिए अहिंसा आन्दोलन प्रारम्भ करने का और अहिंसा के नीतिशास्त्र के माध्यम से नाम और यश कमाने का यह उपयुक्त क्षण है। 1942 की अवधि में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। गांधी के मन पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। अकाल के कारण बंगाली लोग अगर मर रहे हैं तो उन्हें मरने दिया जाए। बंगाल की अर्थव्यवस्था के विनाश के कारण बंगाल में नए सूबों का विकास नहीं होगा और अहिंसा की उनकी सफलता सवालों के घेरे से बाहर बनी रहेगी।

बंगाल के प्रति गांधी की पूरी उपेक्षा: सन् 1943 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। बंगाल के अधिकांश हिस्से में लोगों को भोजन तक नहीं नसीब था। सम्बन्धित अधिकारियों से वार्ता के जरिये चावल की आपूर्ति करके इस स्थिति से बचा जा सकता था।

इस अकाल के कारण बंगाल में तीस लाख लोग मारे गए। मरने की यह दर ऐसी थी कि प्रति सप्ताह तीस हजार लोग मर रहे थे। कलकत्ता के घरों और गलियों में लाशों और मर रहे लोगों का अम्बार लग गया था। खाद्यान्न प्रचुर मात्रा में था लेकिन जापानी आक्रमण की घटना के कारण मित्र सेनाओं ने इसे अपने पास भण्डारित कर रखा था। जिस समय कलकत्ता में लोग भूख से मर रहे थे, उस समय गांधी, चावल की आपूर्ति को लेकर कोई भी समझौता किए बिना, अहिंसा के साथ लड़ रहे थे।

पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों की रूपरेखा : गांधी ने विभाजन का स्वागत किया क्योंकि 'अहिंसा' के अन्तर्गत नाम कमाने का उनका छिपा हुआ मिशन पूरा हो रहा था, भारत का प्रधानमन्त्री बनने की नेहरू की इच्छा पूर्ण हो रही थी। पटेल हालांकि प्रारम्भ में कुछ निराश हुए क्योंकि उन्हें लगता था कि वे भारत के प्रधानमंत्री बन जाएँगे, जिसके लिए वे निर्लज्जतापूर्वक आम बैठक (जनरल मीटिंग) के सम्मुख विभाजन का प्रस्ताव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी लाए थे, किन्तु बाद में उन्हें भारत के गृहमंत्री के पद तक प्रोन्नत कर दिया गया था। सब लोग भारत की स्वतंत्रता का उल्लास मना रहे थे लेकिन पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों के बारे में सोचने का समय किसी के पास भी नहीं था। पूर्वी बंगाल के ये शरणार्थी अधिकतर गरीब थे, साधारण खेतिहर थे और उन पंजाबियों की तरह सुसज्जित नहीं थे, जिन्होंने अपनी सुव्यवस्थित शक्ति के कारण, यहाँ तक कि भारत में भी, रहने के लिए महल बना रखे थे।

कांग्रेस के अन्य सदस्यों के साथ-साथ गांधी, नेहरू और पटेल भी 1947 में भारत के विभाजन पर सहमत हो गए। धर्म के आधार पर बंगाल का दो भागों में विभाजन कर दिया गया, मुसलमानों के लिए पूर्वी बंगाल और हिन्दुओं के लिए पश्चिम बंगाल।

पूर्वी बंगाल के शरणार्थी वे लोग थे जिन्होंने बंगाल के विभाजन के बाद पूर्वी बंगाल को छोड़ दिया था। ये शरणार्थी और आप्रवासी अधिकतर बंगाली हिन्दू थे। पश्चिमी पाकिस्तान के साथ बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम के दौरान पूर्वी पाकिस्तान के लगभग एक करोड़ लोगों ने देश से पलायन किया था तथा विशेष तौर पर पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर भारत के क्षेत्र के भारतीय राज्यों में शरण ली थी। लगभग एक करोड़ हिन्दू लोग पश्चिमी पाकिस्तान की सेना के प्रमुख शिकार हुए थे।

सन् 1947 में विभाजन के बाद पश्चिम बंगाल भारत में ही बना रहा और पूर्वी बंगाल नवगठित पूर्वी पाकिस्तान में चला गया। बाद में यह पाकिस्तान से अलग हो गया और बांग्लादेश नामक एक नया और स्वतंत्र देश सामने आया। असम का सिलहट जिला भी पूर्वी पाकिस्तान में समाविष्ट हो गया। ब्रिटिश काल में पूर्वी बंगाल कृषि की संवृद्धि के लिए और पश्चिम बंगाल औद्योगिक विकास के लिए हुआ करता था।

कांग्रेस के राजनीतिक नेता, विशेष रूप से गांधी, अपनी अन्तर्राष्ट्रीय छवि को सँवारने में व्यस्त थे। वे पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की सुरक्षा को लेकर चिन्तित थे। हिन्दू-मुस्लिम दंगों के नाजुक वातावरण में, हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों पर की जाने वाली किसी भी प्रकार की यंत्रणा को रोकने के लिए वे उपवास पर चले गए। पश्चिम बंगाल में शान्ति बनी रहने के कारण ही यह सम्भव हो सका कि वे अपने शान्ति-प्रयासों को बढ़ा सके और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक शान्तिपुरुष के रूप में अपनी पहचान बना सके। किन्तु हिन्दू शरणार्थियों की दुर्दशा बद से बदतर होती चली गयी। कुछ परिवारों द्वारा किए गए कुछ उल्लेखों के जरिये पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों की वास्तविक स्थिति को समझा जा सकता है।

ऐसा ही एक परिवार काजल रॉय का था। उन्होंने अपनी स्थिति को किस प्रकार वर्णित किया है, उसकी एक रूपरेखा यहाँ दी जा रही है। वे लिखती हैं, ''सन् 1947 में हम यहाँ शरणार्थियों के रूप में आए। ईंधन के रूप में हम गाय के गोबर का प्रयोग करते थे, जैसा कि हम आज भी करते हैं। असल में, हमारे लिए कुछ भी परिवर्तित नहीं हुआ था। साठ साल पहले जब हम पूर्वी बंगाल को छोड़कर पश्चिम बंगाल में आए थे तो कैम्प में हमें जो जगह मिली थी, उसे कंकड़ों से चिह्नित किया गया था, 20 वर्ग फुट प्रति व्यक्ति के हिसाब से। अगर जमीन को खोदा जाए, तो वे कंकड़ आज भी मौजूद हैं।''

वे अपनी उस स्थिति का वर्णन कर रही थीं, जिस स्थिति में वे पिछले साठ सालों से कूपर्स कैम्प में रह रही थीं। कूपर्स कैम्प एक ऐसा स्थल है जिसकी आधुनिक भारत द्वारा अत्यधिक उपेक्षा की गयी। सात हजार लोगों से अधिक की जनसंख्या वाले इस स्थल पर रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनके परिवारों का सदस्य है जो ब्रिटिश भारत के विभाजन की दहशत के कारण पाकिस्तान से पलायन कर गए थे। इस विभाजन से मुस्लिम पश्चिमी पाकिस्तान और मुस्लिम पूर्वी पाकिस्तान (दोनों एक दूसरे से 1,600 किलोमीटर की दूरी पर) तथा मुख्यत: हिन्दू भारत का उद्भव हुआ। इसके अतिरिक्त, काजल कह रही थीं कि ''1947 के विभाजन के दौरान जब अपना सब कुछ हम पीछे छोड़ आए थे, तो भारत हमारे लिए एक स्वप्न था। तब मैं पन्द्रह साल की थी। पूर्वी पाकिस्तान में, वर्तमान ढाका के पास हमारी ज़मीनें थीं। गृहयुद्ध के बाद सन् 1971 में पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश बन गया। लेकिन हिन्दू होने के कारण मेरे माता-पिता तब तक बहुत डरे हुए थे, जब तक उन्होंने मुसलमानों को अपना घर सौंप नहीं दिया। इसलिए हम पलायन कर गए। हमने एक नयी ज़िन्दगी, ज़मीन और घरों की आशा की थी। लेकिन भारत में साठ वर्षों ने भी हमें कुछ नहीं दिया, यहाँ तक कि हमें राष्ट्रीयता भी नहीं दी। मेरे माता-पिता की मृत्यु उसी अस्थायी कैम्प में हुई, जिसमें वे भागकर आए थे, और मेरी मृत्यु भी उसी तरह ही होनी है। आपके सामने अभी भी मैं उसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तरह एक शरणार्थी के रूप में बैठी हुई हूँ, जिस तरह मैं बंगाल की खाड़ी को पार करते समय थी। इसे छोड़ने का विकल्प मेरे पास कभी भी नहीं था। मेरे बच्चों और पोतों-पोतियों को जिस शिक्षा की जरूरत थी, उन्हें वह प्रदान करने में मैं असमर्थ रही। यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा पछतावा है।''

1947 की भगदड़ की कहानियों के बारे में कूपर्स कैम्प में किसी बाहरी व्यक्ति से शायद ही कुछ साझा किया जाता हो। कैम्प के सर्वाधिक ठहरे हुए कोनों में से एक कोने में अपने पोते के बगल बैठी हुई विशाखा दास (उम्र 84 वर्ष), जो अब अंधी हो चुकी हैं, ने कहा, ''1947 में हम ढाका से भारत आए थे। हमारे घर को जला दिया गया था और मेरे माता-पिता की ज़मीनों को जब्त कर लिया गया था। मेरी नयी-नयी शादी हुई थी। बंगाल की खाड़ी की यात्रा हमने माल ढोने वाले जिस जहाज़ पर सवार होकर की थी, उस पर मैं अपने विवाह की साड़ी पहनकर बैठी हुई थी। रात में जब हम भागकर भारत आए थे, तो उस समय नाव पर हजारों लोग सवार थे, लोग नाव से पानी में गिर रहे थे और डूब रहे थे। हम देख रहे थे कि तटों के पास घरों को जलाया जा रहा है। जब हमने ढाका को छोड़ा था, तब मुझे याद है कि सड़क के किनारे लाशों को जलाया जा रहा था। मुझे अपने पड़ोस में रहने वाले उस हिन्दू परिवार की चीखें याद हैं, जिसे उनके घर में जिन्दा जलाया जा रहा था।''

''मुझे अपने विवाह के बारे में बहुत याद नहीं है। इतना याद कर सकती हूँ कि नाव पर कुचला जा रहा था... और मैंने अपने पति की आँखों में डर को देखा था। इस स्थिति से पलायन करने के लिए, हमने सोचा कि ईश्वर हमें पुरस्कार देगाए लेकिन तब से हमारी जो जिन्दगी शुरू हुई, वह असल में कोई जिन्दगी ही नहीं है। मेरे पति का देहान्त 1984 में हुआ, एक शरणार्थी की तरह। मैं विधवा हूँ, किन्तु मेरे परिवार को जीवन-निर्वाह के लिए दैनिक मज़दूरी करनी पड़ती है। मेरे पोते को विद्यालय नसीब नहीं हो सका और उसका भविष्य बेकार ही है। मेरे विपरीत, उसके पास एक भारतीय परमिट है किन्तु इस पर कूपर्स कैम्प की मुहर लगी हुई है, अभी भी वह एक शरणार्थी ही है, उसे काम नहीं मिल सकता। उसका भविष्य मेरी सबसे बड़ी चिन्ता है।''

यह इतिहास के उस विशालतम मानवीय विस्थापन का अनुस्मारक है, जो 14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को झटके के साथ शुरू हुआ था। विभाजन के पक्ष में मुस्लिम लीग द्वारा किए जा रहे विरोध प्रदर्शनों के दौरान जो प्राणघातक दंगे 1946 में शुरू हुए थे, उन्होंने विभाजन को छोड़कर प्रत्येक चीज पर विराम लगा दिया।

यह इतिहास के उस विशालतम मानवीय विस्थापन का अनुस्मारक है, जो 14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को झटके के साथ शुरू हुआ था। विभाजन के पक्ष में मुस्लिम लीग द्वारा किए जा रहे विरोध प्रदर्शनों के दौरान जो प्राणघातक दंगे 1946 में शुरू हुए थे, उन्होंने विभाजन को छोड़कर प्रत्येक चीज पर विराम लगा दिया। गांधी ने 'अहिंसा' के अन्तर्गत अपने नाम और यश का अहसास किया। अन्त में, इस पर सहमति हुई कि ब्रिटिश भारत का उस योजना के अनुसार दो देशों में विभाजित कर दिया जाएगा, जिसे भारत के अन्तिम वायसराय लॉर्ड माउण्टबेटन ने बनाया था। विभाजन की सीमाओं का निर्धारण ब्रिटेन करेगा।

इसका परिणाम यह हुआ कि भयंकर रक्तपात के बीच, पाकिस्तान से आने वाले हिन्दुओं और भारत से जाने वाले मुसलमानों के सन्दर्भ में एक करोड़ लोगों के बीच भगदड़ मच गयी। बंगाल के दोनों तरफ लगभग दस लाख लोग साम्प्रदायिक हत्या के शिकार हुए। 'अहिंसा' की छवि की खातिर गांधी ने उपमहाद्वीप में चल रहे इस छिपे हुए नरसंहार को अंजाम देने में कभी संकोच नहीं किया।

कूपर्स कैम्प में रहने वाले लोगों के लिए विभाजन का अन्याय अभी भी जारी है। लोग अभी भी शासकीय सूचनाओं के अनुसार जीते हैं और भारतीय राष्ट्रीयता हासिल करने के लिए उन्हें एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाना पड़ रहा है। यहाँ तक कि उन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोगों को भी पहचान के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, जिनका जन्म यहीं हुआ है। बहुत सारे मूल शरणार्थी पिछले छह दशकों से राज्यहीन बने हुए हैं। पुराने निवासियों में से अधिकांश लोग अभी भी कैम्प छोड़ने से बहुत अधिक डरते हैं क्योंकि उन्हें भय है कि ऐसा करने पर उन्हें निर्वासित कर दिया जाएगा। पंजाब के मामले में, जनसंख्या की अदला-बदली सदैव के लिए एक ही बार में सम्पन्न कर दी गयी थी। किन्तु पश्चिम बंगाल के मामले में, विभाजन के बाद वर्षों तक आने वाले लोगों का ताँता लगना जारी रहा और कभी-कभी अलग-अलग रूपों में, आर्थिक कारण से जनता के कूच के साथ, अभी भी जारी है।

भारतीय नेताओं ने शरणार्थियों के साथ राजनीति खेली : पश्चिम बंगाल की वामपन्थी सरकार ने हमेशा यह चुनावी वादा किया कि अगर एक बार मत हासिल करके यह सरकार सत्ता में आयी तो यह मध्य भारत में स्थित दण्डकारण्य क्षेत्र में बसाए गए सभी बंगाली शरणार्थियों को बंगाल में पुनर्वास करने के लिए अनुमति प्रदान की जाएगी। लेकिन जब यह सरकार सत्ता में आयी, तो अपने वादे को भूल गयी। एक बार ज्योति बसु की पुलिस और सीपीएम कैडरों ने बांग्लादेशी हिन्दू शरणार्थियों पर गोलीबारी शुरू कर दी थी। ये शरणार्थी सुन्दरबन के मैंग्रोव वनों में स्थित एक दूरदराज के इलाके मारिचझपी में रह रहे थे। कुछ शरणार्थियों ने जब वास्तव में वापस आने का प्रयास किया तो उन्हें जबरन रोक दिया गया। किन्तु इनमें से कुछ शरणार्थियों ने वहाँ बसने का प्रयास किया, तब ज्योति बसु की सरकार और उनकी पार्टी ने इन शरणार्थियों की निर्मम हत्या कर दी। फिर जब ज्योति बसु दुबारा सत्ता में आए तो उन्हें एक स्थिति का सामना करना पड़ा। स्थिति यह थी कि जो मुसलमान पहले पूर्वी पाकिस्तान चले गए थे, वे निर्वासित मुसलमानों के रूप में वापस बंगाल आ रहे थे। इन निर्वासित मुसलमानों को बंगाल में बस जाने के लिए ज्योति बसु ने अनुमति दे दी और इस प्रकार भारतीय सेक्युलरिज्म का एक महान उदाहरण प्रस्तुत किया। इस प्रकार भारतीय देख सकते हैं कि अहिंसा की अपनी महान नैतिकता के साथ गांधी महान नेता बन गए, लेडी माउण्टबेटन को महान सलाहकार के रूप में प्राप्त करते हुए नेहरू महान प्रधानमन्त्री बन गए और सेक्युलर वोटों को हासिल करके ज्योति बसु महान मुख्यमंत्री बन गए।

बहुत सारे झटकों के जरिये शरणार्थियों की यंत्रणा : स्वतंत्र भारत में बंगाली शरणार्थियों के केन्द्र हैं जो बंगाली शरणार्थियों के कंसंट्रेशन कैम्प की तरह हैं। यहाँ से निकलकर बाहर कहीं बसने की अनुमति इन्हें नहीं थी। दण्डकारण्य में अनेक शरणार्थी-केन्द्र मौजूद हैं जो बर्बरता के गम्भीर रूपों के साक्षी रहे हैं। उदाहरण के लिए, एक शिशु का सिर काटकर धड़ से अलग कर दिया गया और इस सिर को यह कहकर शिशु की माँ को वापस कर दिया गया, कि अब वह दुग्धपान कराए। कोलकाता के भद्रलोक की सरकार ने शरणार्थी समस्या से निपटने के लिए किसी तरीके की शक्ति को सूत्रबद्ध नहीं किया। किसी ने भी इन बंगाली शरणार्थियों की दुर्दशा की कभी जाँच नहीं की, जिन्हें बंगाल से बाहर जाकर किन्हीं अनजान (और प्रायः शत्रुतापूर्ण) इलाकों में बसने के लिए यह कहकर बाध्य किया जा रहा था कि बंगाल में जगह का अभाव है।

नेहरू, लियाकत समझौते के दिनों से ही नेहरूवादी विरासत ने फण्ड को शातिराना ढंग से इधर-उधर मोड़ देना जारी रखा है। कुछ शरणार्थियों को उड़ीसा के एक दूरदराज के गाँव में बसाया गया, कुछ को इस गाँव से 25 किलोमीटर दूर एक दूसरे गाँव में बसाया गया और इसके बाद एक सड़क का निर्माण किया गया। सड़क के निर्माण पर आने वाले खर्च का भार पुनर्वास-पैकेज पर डाल दिया गया। ऐसी पैंतरेबाजियों के चलते, बंगाली शरणार्थी किसी तरीके का लाभ पा सकने वाले आखिरी लोग थे। कांग्रेस ने अधिकांश मामलों में समस्या को सम्बोधित करने की बजाय उसे बढ़ाया ही क्योंकि बंगाली शरणार्थियों की समस्या की जड़ नेहरू. लियाकत समझौते के कारण ही पैदा हुई थी।

गांधी पाकिस्तान की यात्रा क्यों करना चाहते थे : वे जानते थे कि कानून की प्रैक्टिस करने में वे असफल हो चुके हैं, वे जानते थे कि वे गीता के एक अनुयायी हैं, वे एक हिन्दू सन्त थे, एक हिन्दू फकीर की तरह वे वेशभूषा धारण करते थे, वे मुसलमान को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे, वे खिलाफ त आन्दोलन में शामिल तो हुए लेकिन मुसलमानों को जीतने में नाकाम रहे, गांधी से क्रोधित होकर अली बन्धु मुस्लिम लीग में शामिल हो गए ताकि पाकिस्तान का सृजन किया जा सके और इतना सब होने के बावजूद जब पाकिस्तान का निर्माण हो गया तो गांधी उसी पाकिस्तान की यात्रा करना चाहते थे। यह दर्शाता है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गांधी एक रीढ़विहीन आदमी थे। न तो उनके पास यह क्षमता थी कि तर्क के आधार पर वे किसी को सहमत कर सकें और न ही उनके पास दृढ़ता के किसी दृष्टिकोण के साथ स्थिर रूप से जुड़े रहने की आत्म-क्षमता थी।

अगर वे एकता के राजनीतिक व्यक्ति थे, तो उन्हें सभी धर्मों के सभी लोगों के साथ कार्य करना जारी रखना चाहिए था। कलकत्ता में उन्होंने सिर्फ हिन्दू लोगों को ही साथ लेकर अहिंसा आन्दोलन का प्रारम्भ क्यों किया? कलकत्ता आन्दोलन में मुसलमानों को अपने साथ लाने में वे क्यों असफल हो गए? खिलाफत आन्दोलन से उन्हें क्यों बेदखल कर दिया गया? हिन्दू, मुस्लिम अव्यवस्था के लिए वे उत्तरदायी थे। 1947-48 के हिंसक राजनीतिक सन्दर्भ के संघर्ष में वे प्रमुखतम व्यक्ति थे। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के विध्वंसक थे।

जो हिन्दू और मुसलमान भारत में कई-कई पीढ़ियों से साथ रहते चले आ रहे थे, उनके बीच फूट का क्या कारण था? इसका कारण गांधी थे जो अहिंसा की नैतिकता को लेकर पागल थे क्योंकि अहिंसा के बिना वे अपने आपको एक अग्रणी नेता के रूप में उभारकर सामने नहीं ला सकते थे। वे जानते थे कि उनके पास नेता बनने की कोई योग्यता नहीं थी क्योंकि वे कमज़ोर व्यक्तित्व के आदमी थे तथा कानून की अदालत में उनके पास कोई तार्किक आवाज नहीं थी, यद्यपि इनर टेम्पल, लन्दन से उन्होंने कानून की डिग्री हासिल की थी। किन्तु निरादर के कारण दक्षिण अफ्रीका में उन्हें जनता की जो सहानुभूति हासिल हुई थी, उस सहानुभूति ने उन्हें नेता बनने का प्रलोभन दिया। सहानूभूति की इस ताकत को, ब्रिटिश के खिलाफ आन्दोलन करने के लिए, उन्होंने अहिंसा में बदल दिया। उन्होंने अहिंसा को हिन्दू धर्म से जोड़ते हुए, आन्दोलन में हिन्दू जनता को मूर्ख बनाते हुए आकृष्ट किया। मुसलमान भी उन्हें पसन्द नहीं करते थे क्योंकि वे हमेशा राम-राज्य और हिन्दू-राष्ट्र की बातें किया करते थे।

यह सत्य है कि अपनी सक्रिय अवधि के दौरान गांधी ने ऐसे अनेक इलाकों की यात्रा की, जो दंगों से प्रभावित थे - प्राथमिक रूप से शान्ति बहाल करने के लिए। किन्तु, विभाजन के बाद लाहौर, रावलपिण्डी और कराची जैसे शहरों की यात्रा करने के उनके प्रस्ताव का कोई राजनीतिक मूल्य नहीं था।

यह सत्य है कि अपनी सक्रिय अवधि के दौरान गांधी ने ऐसे अनेक इलाकों की यात्रा की, जो दंगों से प्रभावित थे - प्राथमिक रूप से शान्ति बहाल करने के लिए। किन्तु, विभाजन के बाद लाहौर, रावलपिण्डी और कराची जैसे शहरों की यात्रा करने के उनके प्रस्ताव का कोई राजनीतिक मूल्य नहीं था। संघर्ष के अलग-अलग इलाकों में गांधी ने अपनी उपस्थिति का उपयोग किया लेकिन हर जगह वे अहिंसा की अपनी नैतिकता लागू कर दिया करते थे और इसका कोई भी फलदायी परिणाम नहीं होता था।

गांधी की 23 सितम्बर, 1947 की प्रार्थना सभा : पर एक दृष्टि डालना वास्तविक तथ्यों को समझने के लिए प्रासंगिक है। यह सभा कुरान समेत पवित्र पुस्तकों के पाठ के साथ प्रारम्भ हुई। गांधी के आश्रमों में ऐसा होना कोई असामान्य बात नहीं थी। किन्तु अत्यधिक साम्प्रदायिकताग्रस्त वातावरण में शान्ति और सहिष्णुता के इस्लामी सिद्धांतों का आह्वान करना एक कट्टरपन्थी चाल (रेडिकल मूव) थी। ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी इसके प्रति सावधान थे। यही कारण था कि गांधी ने अपने श्रोताओं से पूछा कि कुरान का पाठ करने में यहाँ किसी को कोई आपत्ति तो नहीं है! किसी ने भी आपत्ति नहीं की।

गांधी ने कहा : "मुसलमानों ने जो किया है, वह अच्छा नहीं है लेकिन इसमें कुरान ने क्या नुकसान किया है अगर ईश्वर का कोई भक्त कोई पाप करता है, तो क्या हम ईश्वर का नाम जपना बन्द कर देंगे? ..... यदि ईश्वर के भक्त यह कहते हैं कि जो कुछ हिन्दुओं ने किया है, वह बुरा है, तो क्या इसका मतलब यह भी है कि गीता खराब है?" *(कलेक्टेड वर्क्स*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऑफ महात्मा गांधी, वाल्यूम 96: 7 जुलाई, 1947 द्र 26 सितम्बरए 1947, पृष्ठ 410।)

इस बिन्दु का विस्तार करते हुए गांधी ने आगे यह भी जोड़ा कि '' मैं लाहौर जाना चाहता हूँ। मैं किसी पुलिस या सेना के साथ वहाँ नहीं जाना चाहता.....मैं वहाँ के मुसलमानों में आस्था और विश्वास रखते हुए जाना चाहता हूँ। वे अगर मुझे मार डालना चाहते हैं, तो उन्हें ऐसा करने दीजिए। ...सरकार अगर मुझे रोकना चाहती है, तो उसे ऐसा करने दीजिए। किन्तु सरकार मुझे कैसे रोक सकती है? अगर वे मुझे रोकना चाहते हैं तो उन्हें मुझे मार डालना पड़ेगा। अगर वे मुझे मार डालते हैं, तो मेरी मृत्यु आपके लिए एक सीख छोड़ जाएगी।'' *(कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वाल्यूम 96 : 7 जुलाई, 1947 - 26 सितम्बर, 1947, पृष्ठ 410।)*

ऐसा लगता है कि गांधी किसी पागल की तरह बोल रहे थे, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था। वे जानते थे कि अहिंसा के माध्यम से उन्होंने राष्ट्र के प्रति क्या गलती कर दी है? इस गलती को सुधारने के लिए वे पाकिस्तान जाने के माध्यम से मरना चाहते थे। 16 अगस्त, 1946 के कलकत्ता नरसंहार के विरोध में हुए प्रदर्शन से पूर्व ही उन्हें मर जाना चाहिए था किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि उन्हें अपनी ज़िन्दगी बहुत प्यारी थी। यह एक दूसरी गलती थी,जो उन्होंने की। अब पहले वाली गलती को भुलाते हुए वे पाकिस्तान जाने के माध्यम से मरना चाहते थे। लेकिन सीधे तौर पर मरने के लिए भी साहस की जरूरत होती है, उनके पास साहस की कमी थी इसलिए अपनी अन्तिम इच्छा को वे, अपनी हत्या से पहले, पूर्ण न कर सके।

उनके कथनों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने कुछ बुरा या नुकसान किया था, वरना वे यह क्यों कहते कि ''अगर वे मुझे मार डालते हैं।'' दोषी मन अपने कुकृत्य को लेकर सचेत होता है। अगर वे मरना चाहते थे, तो ऐसा वे 16 अगस्त, 1946 को कर सकते थे। 16 अगस्त, 1946 कलकत्ता नरसंहार का दिन था, जब मुस्लिम लीग ने यह घोषणा की थी कि अगर उन्हें पाकिस्तान नहीं दिया गया तो वे हिन्दुओं का संहार करना शुरू कर देंगे। लेकिन ठीक उसी दिन गांधी मोर्चे पर नहीं थे। ब्रिटिश प्रस्ताव की व्याख्या पटेल द्वारा आम बैठक (जनरल मीटिंग) में की गयी।

पुस्तक - The Dark Side of Gandhi
लेखक - Hari Pada Roychoudhury
प्रकाशक - Notionpress (India, Singapore, Malaysia)
मूल्य - 310 रुपये, कुल पृष्ठ - 230।

मो. 9990665881

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल

की ऐतिहासिक व महत्त्वाकांक्षी परियोजना

कथादेश

भारत के हिन्दी कथाकारों पर केन्द्रित कथाकोश

लगभग सवा सौ साल के परिदृश्य में लिखी गयीं हिन्दी कहानियों में से लगभग 650 प्रतिनिधि कहानियों को जिल्दबन्द करता यह कथाकोश 18 खंडों में विभाजित है। साथ ही हिन्दी कहानी की सम्पूर्ण विकास-यात्रा का सांगोपांग रेखांकन व निरीक्षण करते 75 से अधिक आलोचनात्मक आलेखों तथा संकलित प्रत्येक कहानी पर स्वतन्त्र टिप्पणियों को भी संगृहीत किया गया है। इसकी उपयोगिता कहानी के शोधार्थियों के लिए तो है ही, कथा-रस के सामान्य आस्वादकों के लिए भी है।

प्रधान संपादक : संतोष चौबे

'कथादेश' के सम्पूर्ण सेट का मूल्य 17,500 रु. है, जिस पर निर्धारित छूट देय होगी।

कथादेश के खंड निम्न समूहों के अनुसार भी क्रय किये जा सकते हैं :

धरोहर (धरोहर, प्रेमचंदोत्तर कहानी-1 व 2)
तीनों खंड एक साथ 2970 रु. (छूट के साथ 2200 रु.)

नई व साठोत्तरी कहानी (नई कहानी-1 व 2 तथा साठोत्तरी कहानी-1 व 2)
चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 2900 रु.)

समकालीन कहानी (समकालीन कहानी-1, 2, 3, 4, 5, 6 व 7)
सातों खंड एक साथ 6930 रु. (छूट के साथ 5200 रु.)

युवा कहानी (युवा कहानी-1, 2, 3 व 4) :
चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 2900 रु.)

(डाक से मँगाने पर डाक खर्च अलग से देय होगा)

अमेजन व आईसेक्ट ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध

'कथादेश' प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन
25-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल-462011
फोन : 0755-4923952, 8818883165

आईसेक्ट लिमिटेड
स्कोप कैम्पस, एनएच-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047
फोन : 0755-2432801, 2432830

ईमेल : aisectpublications@aisect.org, mahip@aisect.org

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalao,Jaipur

गांधी- कार्टूनिस्ट निर्मिश ठक्कर की नजर मे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu